ADHUNIK POURANIK KATHAKAVYOM KA VISLESHANATMAK ADHYAYAN

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

Thesis submitted to
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
for the Degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By
L. MOHANAKUMARI AMMA

Supervising Teacher
Dr. A. ARAVINDAKSHAN

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

1994

C E R T I F I C A T E

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carried out by L.MOHANA KUMARI AMMA under my supervision for Ph.D. and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Dept. of Hindi
COCHIN UNIVERSITY OF
SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN - 682 022.

Dr.A. ARAVINDAKSHAN

SUPERVISING TEACHER

ये दोनों एक दूसरे से उलझकर काव्य के लिए मात्र एक नयी भूमिका प्रदान नहीं कर रहे हैं, बल्कि आधुनिक विसंगति के कई आयामों को प्रक्षेपित भी करते हैं ।

इस शोध प्रबन्ध के छः अध्याय हैं । वे इस प्रकार है :-

1. आधुनिक कविता का रचनात्मक परिदृश्य और पौराणिक कथाकाव्यों की रचनाशीलता ।
2. आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में पुराण का स्वरूप और विधान
3. आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में सामाजिक विसंगति का स्वरूप
4. आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में आत्मसंघर्ष की स्थितियाँ
5. आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में प्रतिफलित राजनीतिक विसंगति का स्वरूप
6. आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों का शिल्प-विधान ।

प्रथम अध्याय में, जो कि इस शोध प्रबन्ध का विषय-प्रवेश है, भारतेन्दु युग से लेकर नई कविता तक की कविताओं में उपलब्ध आधुनिक चेतना का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । प्रत्येक युग का संक्षेप में विश्लेषण प्रस्तुत करके यह भी दिखाने का प्रयास किया गया है कि किन किन आधारभूत तत्वों के आधार पर वह आधुनिक है । इस प्रकार के विश्लेषण से यह सिद्ध करने के लिए सहायता मिल गयी है कि नई कविता का युग

पूर्ववर्ती युगों की तुलना में कितना प्रासंगिक और सार्थक है । इस अध्याय के अंत में नई कविता के दौर के कथाकाव्यों के प्रणयन संबंधी परिचर्चा है । नई कविता के दौर में पौराणिक कथाओं का सन्निवेश प्रकटत: अप्रासंगिक-सा लग सकता है । लेकिन इस अध्याय के अंतिम प्रकरण में यह दिखाने की चेष्टा भी की गयी है कि एक पौराणिक कथा किस प्रकार मिथकीय प्रसंग में रूपांतरित होती है । वस्तुत: यह कहना उचित लगता है, पचास के बाद लिखे गये कथाकाव्यों में मिथकीय तत्व की अन्विति ही अधिक है ।

दूसरे अध्याय में आधुनिक कथाकाव्यों में पुराण के स्वरूप और विधान संबंधी अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । अध्याय के प्रारंभ में पुराण और साहित्य, पुराण की अजस्रधारा के संबंध में अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । यही नहीं कथा-स्वीकृति और कथा-विन्यास की रीतियों के संबंध में भी विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है । जब आधुनिक कथाकाव्यों का मिथकीय प्रसंग प्रमुख हो उठता है तब कथा-विन्यास में नये क्रम आने लगते हैं । इसलिए यह देखना आवश्यक है, इन काव्यों में कथा-विन्यास का कौन-सा विन्यासपरक दृष्टिकोण अपनाया गया है । कथा-विन्यास के विविध आयाम के अन्तर्गत ये पक्ष विचारणीय हुए हैं - व्यक्ति पात्रों का महत्व, अप्रमुख कथा प्रसंग की नई दिशाएँ, अतिमानवीय स्थितियों का त्याग, सामाजिक एवं राजनीतिक विडंबनाओं का प्रक्षेपण आदि । सभी काव्यों में संघर्षरत पात्र समान परिकल्पित एक प्रमुख पात्र अक्सर मिलता है । कथा उसके इर्द-गिर्द घूमती है । "कनुप्रिया" की राधा, "सूर्यपुत्र" का कर्ण, "आग्नलीक" की स "शम्बूक" का शम्बूक, "महाप्रस्थान" का युधिष्ठिर आदि ।

अप्रमुख कथा प्रसंग को लेकर कथा को नये सिरे से विन्यासित करने की रीति कथाकाव्यों में प्राप्त हैं । मुख्य कथा के अंतरगत कई अवांतर-कथाएँ मिलती ही हैं । यह प्राचीन कथा-विन्यास का एक स्वीकृत रूप है । लेकिन आधुनिक कथाकाव्यकारों ने उनमें से अप्रमुख कथा के आधार पर कथा को विकसित किया है जैसे एकलव्य, शबरी, शम्बूक, अश्वत्थामा आदि । कथा की अमानवीय स्थितियों का त्याग भी आधुनिक कथाकाव्यों में हुआ है । पौराणिकता के पुराण तत्व से नहीं बल्कि पुराण के मानवीय तत्व से आधुनिक कवि प्रभावित हैं । इसलिए इन कथाकाव्यों के पुराण पात्र आधुनिक मनुष्य के प्रतिरूप ही है । कथा के विन्यास की इन रीतियों का अध्ययन विवेच्य कथाकाव्यों को निकट से जानने के लिए आवश्यक है ।

तीसरा अध्याय सामाजिक विसंगतियों से संबन्धित काव्यों का अध्ययन है । आज हमारा समाज विसंगत स्थितियों से गुज़र रहा है । अनैतिक एवं अवांछित स्थितियाँ निरंतर उभर रही हैं । जाति प्रथा की विकरालता, शोषण के विभिन्न तंत्र, नारी उत्पीडन आदि ने पुनः आधुनिक समाज को मध्यकालीन स्थिति के निकट ला खडा किया है । पुराण के उन्हीं प्रसंगों को आधुनिक विसंगति के रूप में पुनः प्रस्तुत करके उन्हें गहराने का प्रयास कई कथाकाव्यों में हुआ है । इन काव्यों के आधार पर उनमें निहित सामाजिक अवस्थाओं के आधार पर आज के संकटग्रस्त परिस्थितियों का विश्लेषण इस अध्याय में हुआ है ।

चौथे अध्याय में आत्मसंघर्ष की विभिन्न दिशाओं को कथाकाव्यों के माध्यम से प्रस्तुत करने का कार्य किया गया है । स्वातंत्र्योत्तर युग में व्याप्त मोहभंग की अवस्था प्रबल थी । इस मानसिक अवस्था को अस्तित्ववादी दर्शन से बढावा मिला था । आधुनिक कविता में आत्ममंथन को पर्याप्त स्थान प्राप्त है । उसमें व्यक्ति की खोज का प्रसंग प्रमुख है जिसे हम अस्मिता की तलाश कहते हैं । इस तलाश को अस्तित्ववादी दर्शन के संदर्भ में भी विश्लेषित किया जा सकता है तथा इस व्यक्ति-सापेक्ष दृष्टि को सामाजिक स्तर पर भी विश्लेषित किया जा सकता है । आत्मसंघर्ष की अपनी अस्तित्ववाद और सामाजिक प्रासंगिकता है । हर व्यक्ति अपने अस्तित्व की तलाश में व्यस्त है । अपने जीवन की सार्थकता की चिंता और अर्थतत्व की तलाश सनातन आत्मसंघर्ष की अवस्था है । व्यक्ति सत्ता की तलाश को व्यक्ति पक्ष और व्यक्तिसत्ता की सामाजिकता को पुराण कथाओं के माध्यम से आँकते हुए आत्मसंघर्ष की व्यापकता और गहराई को समझने का प्रयत्न इस अध्याय में हुआ है ।

पाँचवाँ अध्याय राजनीतिक विडंबनाओं के संदर्भ में कथाकाव्यों का अध्ययन है । आधुनिक कविता में राजनीतिक विडंबनाएँ इसलिए प्रमुख हैं कि राजनीति की सत्ता - केन्द्रित दृष्टि अक्सर मानव विरोधी होती है । कथाकाव्यों ने इस प्रसंग को व्यापक पैमाने पर प्रस्तुत किया हैं । व्यवस्था का आतंक और उसके अधीन में घरमराते सामान्य जीवन को आधुनिक कविता ने विषय बनाया है । युद्ध की नृशंसता और अमानवीयता भी आधुनिक कविता का विषय है । कथाकाव्यों में अन्तर्दृष्टी स्तर पर विकसित

दृश्यपट में ये सभी बहुआयामी ढंग से प्रस्तुत हैं । आधुनिक कथाकाव्यों ने राजनीति के किसी न किसी पक्ष को यथोचित विस्तार से प्रस्तुत किया है । कभी-कभी राजनीति की तमाम विडंबनाएँ एक साथ एक ही काव्य में प्रस्तुत होती हैं । इस अध्याय में यहा देखा गया है कि विडंबनाओं के मध्य मानवीय अवस्था की कथा की क्या सार्थकता है । प्रस्तुत अध्याय का विनम्र प्रयत्न यही है ।

छठा अध्याय कथाकाव्यों का शिल्पपरक अध्ययन है । यद्यपि कथा पर आधारित इन काव्यों के लिए कथाकाव्य जैसी संज्ञा दी गयी है, फिर भी इनमें से कुछ काव्य खण्डकाव्य के तत्वों के आधार पर रचित है । विश्वकर्मा, शबरी, महाप्रस्थान, संशय की एक रात, आत्मदान आदि तो खण्डकाव्य के तत्वों के आधार पर रचित कथाकाव्य ही हैं । लेकिन बहुत-से कथाकाव्यों के रूपबन्ध में वैविध्य भी देखने को मिलते हैं । रचनाकारों ने लघुकाव्य, काव्य-नाटक, नाट्य-काव्य, प्रबन्ध-काव्य आदि नाम दिए हैं । जगदीश गुप्त का शम्बूक, नागार्जुन का भस्मांकुर यदि लघुकाव्य है तो अंधायुग, उर्वशी, एक कंठ विषपायी आदि नाट्य-काव्य है । अग्निलीक गीति-नाट्य हैं । रूपबन्ध संबंधी विश्लेषण के पश्चात् मिथकों एवं प्रतीकों के संबंध में विचार व्यक्त किए गए हैं । अन्त में कथाकाव्यों की भाषा संबंधी परामर्श भी है । इस अन्वेषण में यह भी देखने का विनम्र प्रयत्न किया गया है कि प्रयोगपरकता इनमें कहाँ तक है और प्रयोगपरकता को मौलिकता देने का कार्य किस हद तक हुआ है । वस्तुतः यही इस अध्याय की विशेषता है ।

विभिन्न रीतियों को अपनाने के कारण इन काव्यों की अपनी एक कथा-धारा विकसित होती है । प्रबन्धात्मकता की नई रीति ही इनमें उपलब्ध हैं जो आधुनिक संवेदना को गहराने के हेतु स्वीकृत है । इस कारण से पुराण के किन्हीं परिदृश्यों के आधार पर रचित इन दीर्घ कविताओं को कथाकाव्य की संज्ञा दी गई हैं ।

आधुनिक कविता ने जीवन के सभी क्षेत्रों से विषय चुना है और हर स्थिति को बारीकी से प्रस्तुत किया है । यह विदित बात है कि पचास के बाद ही हिन्दी कविता में आधुनिकता की चर्चा ज़ोर पकड़ती है । आधुनिकता को सिद्धांत के रूप में न अपनाकर जीवन के प्रति प्रकट गतिशील दृष्टि के रूप में अपनाते हुए रूढ़ और मूढ़ विश्वासों से मुक्त होते हुए इस दौर के कवियों ने अपनी रचनाओं में जीवन के अनेकानेक झुलसते हुए प्रसंगों को प्रस्तुत किया है । आत्ममुग्धता से मुक्त होने के कारण आधुनिक कविता में विन्यसित अनुभूत्यात्मक धरातल ठोस है ।

इस दौर में लिखे गये कथाकाव्य आधुनिक हैं क्योंकि ये प्रायः कथात्मकता से मुक्त होकर जीवन के किन्हीं गहन क्षणों की अनुभूति को गहराने लगते हैं । आज की जटिलता को ये काव्य दो स्तरों पर विन्यसित करते हैं । एक उसका अपना पौराणिक स्तर है और दूसरा है आधुनिक ।

D E C L A R A T I O N

I hereby declare that the thesis entitled "Adhunik Kathakavyom Ka Visleshanatmak Adhyayan" has not previously formed the basis of the award of any degree, diploma, associateship, fellowship or other similar title or recognition.

Dept. of Hindi

Cochin University of
Science and Technology

Kochi - 682 022.

L. MOHANA KUMARI AMMA.

Date 14-11-1994.

I

प्राक्कथन

पौराणिक कथाओं पर आधारित काव्य कविता के प्रत्येक दौर में लिखे गए हैं । आधुनिक युग में भी कथाकाव्यों की रचना ज़ारी रही है । इस दौर के कथाकाव्य आधुनिक जीवन की जटिलता को सूक्ष्मता के साथ व्यंजित करने में सफल रहे हैं । एक ओर इनमें कथा की पौराणिक व्यापकता है तो दूसरी तरफ़ कथा के हर प्रसंग को प्रतीकवत् करने और उसे मिथकीय आयाम देने का कार्य है । इस दृष्टि से आधुनिक कथाकाव्य संवेदना की गहराई के परिचायक सिद्ध हुए हैं ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का शीर्षक है "आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन" । इस शीर्षक में प्रयुक्त के एक विशेष शब्द का स्पष्टीकरण आवश्यक प्रतीत होता है और वह शब्द है "कथाकाव्य" । आधुनिक युग में लिखे गये सभी काव्य, जो पुराण कथाओं पर आधारित हैं, सिद्धान्तों के तहत लिखे नहीं गये हैं । कुछ काव्य प्रबन्धकाव्य की प्रमुख श्रेणियों में रखने योग्य महाकाव्य या खण्डकाव्य के अन्तर्गत आते हैं । आधुनिक युग में सिद्धांतों का कटघरा धीरे-धीरे टूटना नज़र आता है । यह सही है कि खण्डकाव्य अवश्य इस दौर में भी रचे गये हैं । लेकिन सिद्धांत धर्मिता की वजह से वे निस्तेज नहीं है । इन काव्यों में कथा की स्थिति मज़बूत है । परिवर्तित जीवन परिवेश के अनुकूल पुराण कथाएँ बदल दी गई हैं ; प्रसंग जोडे गये हैं या प्रसंग तोडे गये हैं । कथात्मकता की प्रवृत्ति बारंबार मिलती है । अतः इन काव्यों के लिए कथाकाव्य कहा गया है । कथा-विन्यास की

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के र डॉ. ए. अरविन्दाक्षनजी के निर्देशन में लिखा गया है । उनकी प्रेरणा एवं नुकूल निर्देश मुझे विशेष रूप से सहायक रहे हैं । आधुनिक हिन्दी कविता को ोण से जानने एवं नये संदर्भ में देखने की दृष्टि उन्हीं से मुझे प्राप्त हुई है । इोंने ही आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों के अध्ययन के लिए मुझे प्रेरित ा । उनके प्रति मेरी असीम कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ । मैं हमेशा आभार ूँगी कि उन्होंने आधुनिक कविता की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया

विभाग के अन्य गुरूजनों और शोध छात्राओं के प्रति भी मैं विशेष ृ हूँ जिनसे मुझे प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सहायता मिली है । पुस्तकालय श्रीमती तम्पुरान के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ ।

इस अवसर पर आलपुषा एस. डी. कालेज के हिन्दी विभाग के अध्यापकों प्रति भी आभारी हूँ जिनसे मुझे इस शोधकार्य के लिए परोक्ष रूप से सहायता मिली ।

कोचिन विश्वविद्यालय के अधिकारियों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे ोध कार्य के लिए सुविधा देकर मदद की है ।

टंकण यंत्र की गलतियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ ।

Mohana

मोहनाकुमारी अम्मा. एल.

हिन्दी विभाग
कोचिन विश्वविद्यालय
कोचिन - 22.

तारीख : 14 - 11 - 1994.

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

अध्याय एक — 1 - 41

आधुनिक कविता का रचनात्मक परिदृश्य और पौराणिक कथाकाव्यों की रचनाशीलता

इतिहास में आधुनिक युग - भारतेन्दु युग - द्विवेदी युग का आधुनिक पक्ष - सामाजिक तथा राजनैतिक दृष्टि - द्विवेदी युग में मनुष्य की संकल्पना - छायावादी युग का आधुनिक संदर्भ - कल्पना और सौंदर्य की कविता - वैयक्तिक चेतना पर आधारित मानवतावाद - नवस्वच्छन्दतावादी कविता - प्रगतिवादी कविता - आधुनिकता - जनचेतना का काव्य - प्रयोगवादी कविता आधुनिकता के संदर्भ में - प्रयोगशील नई कविता - नई कविता - नई कविता में आधुनिकताबोध - संत्रास की कविता - नई कविता में मानवीय यथार्थ की अभिव्यक्ति - आधुनिक जीवन की विसंगति और विडंबना का अंकन - मनुष्य की चिन्ता की कविता - नई कविता के दौर में कथाकाव्य - विशिष्ट पात्रों से मनुष्य की चिन्ता का अन्वेषण ।

अध्याय : दो — 42 - 76

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में पुराण का स्वरूप और विधान

पुराण और साहित्य - पुराण का अजस्रधारा का नवीकरण - - व्यक्ति पात्रों का महत्व - अप्रमुख कथा-प्रसंगों का विस्तार

पृष्ठ संख्या

और उसकी नई दिशा - मानवेतर स्थितियों का
त्याग - सामाजिक विडंबना पर केन्द्रीकरण - राजनैतिक
संकट का प्रक्षेपण - मिथक काव्यों में परिणति ।

अध्याय तीन 77 - 131

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में सामाजिक विसंगति का स्वरूप

जाति-प्रथा से उद्भूत समस्याएँ - मूल्य विघटन की समस्याएँ
- नारी की स्वतंत्रता की समस्या ।

अध्याय चार 132 - 168

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में आत्मसंघर्ष की स्थितियाँ

अर्थतत्व की तलाश - सामाजिक विडंबनाओं से घिरे हुए व्यक्ति
का आत्मसंघर्ष - राजनीतिक विसंगतियों का आत्मसंघर्ष -
आत्मसंघर्ष का सांस्कृतिक परिवेश ।

अध्याय पाँच 169 - 202

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में प्रतिफलित राजनीतिक विसंगति का स्वरूप

राजनीति और साहित्य - आधुनिक कविता में राजनीति -
आधुनिक कथाकाव्य और राजनीति - सत्ताशक्ति के रूप में

पृष्ठ संख्या

राजनीतिक परिवर्तन - सत्ता का सही संकेत - सत्ता की अराजकता का प्रतीक - राजनीति और उच्चवर्गीय प्रभुता - सत्ता की शक्ति का विस्तार - राजनीतिक विसंगति का चित्र - अधिकार की अनियंत्रित इच्छा - राज्य लिप्सा की गूढ़ राजनीति - सर्वसत्ता का प्रबल मोह - व्यवस्था की नृशंसता के रूप में राजनीति - व्यवस्था में शासन-प्रियता का स्वरूप - राजनीति में युद्ध की अमानवीयता - युद्ध से ग्रस्त व्यक्तियों का यथार्थ - युद्ध के ध्वंस के चित्र ।

अध्याय : छः 203 - 250

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों का शिल्प-विधान

खण्डकाव्य के तत्व के आधार पर रचित कथाकाव्य - खण्डकाव्येतर रचनाएँ - नाट्यकाव्य - काव्य नाटक - प्रबन्ध काव्य की प्रबन्धात्मकता - मिथकीय तत्व - अस्तित्व संकट का मिथक - मालवीय त्रासदी का मिथक - सनातन प्रेम का मिथक - प्रतीक कल्पना - काम प्रतीक - प्राकृतिक प्रतीक - प्रताड़ित नारी का प्रतीक - दलित चेतना का प्रतीक - पुरुषार्थ के अन्वेषण का प्रतीक - सत्ताधारी शासक का प्रतीक - भाषा -

पृष्ठ संख्या

वैयक्तिक भाषा - भाषा की नाटकीयता -
क्लासिकीय भाषा का आधुनिक प्रयोग ।

उपसंहार 251 - 260

संदर्भ ग्रंथ सूची 261 - 275

अध्याय एक

आधुनिक कविता का रचनात्मक परिदृश्य और पौराणिक कथाकाव्यों की रचनाशीलता

अध्याय - एक

आधुनिक कविता का रचनात्मक परिदृश्य और पौराणिक कथाकाव्यों की रचनाशीलता

इतिहास में आधुनिक युग - भारतेन्दु युग

भारतेन्दु-युग अपने नवीन परिवेश से जुडकर हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक नये युग के आरंभ का संकेत देता हैं । इस युग की आधुनिक चेतना के मूल में जागरण की प्रवृत्ति कार्यरत थी । फलस्वरूप रीतिकालीन साहित्य के रीति-निरूपण तथा श्रृंगार परंपरा से अलग हटने तथा नवीनता से जुडने का आग्रह प्रकट होने लगता है । डॉ. रत्नाकर पांडेय ने ठीक ही कहा है - "भारतेन्दु और उनके मंडल के कवियों ने अपनी काव्य चेतना को एकरस परंपरा से चली आ रही काव्य-रूढियों से मुक्तकर युग की सामाजिक समस्याओं में काव्य का सम्मिलन किया ।"[1] रीतिकालीन रूढियों से मुक्त कर जीवन के यथार्थ की ओर जनमानस को आकृष्ट करना युग की माँग थी । इस कारण से भारतेन्दुयुगीन काव्य में देश की दुर्व्यवस्था का वास्तविक चित्रण मिलता है ; साथ ही अंग्रेज़ी सत्ता की शोषण-व्यवस्था के विरुद्ध एक नयी राष्ट्रीय चेतना की पृष्ठभूमि तैयार करने में भारतेन्दुयुगीन कवि सफ़ल हुए है । भारतेन्दु देशोद्धार के लिए देशवासियों को सजग करना चाहते हैं -

" रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई ।
हा ! हा ! भारत-दुर्दशा न देखी जाई ।।"[2]

प्रतापनारायण मिश्र ने भी सरल ढंग से देश-सम्बन्धी कविताएँ लिखीं । उन्होंने

---

1. हिन्दी साहित्य सामाजिक चेतना - डॉ. रत्नाकर पांडेय - पृ. 163
2. भारत-दुर्दशा - भारतेन्दु - पृ. 22

हिन्दुस्तान का गुणगान करके अपना देश प्रेम व्यक्त करते हुए लोगों को उद्‌बोधन भी किया है -

"चरहु जु सांचहु निज कल्याण, तो सब मिलि भारत सन्तान ।
जजो निरन्तर एक जवान, हिन्दी, हिन्दु-हिन्दुस्तान ।।"[1]

भारतेन्दुकालीन कवियों का काव्यक्षेत्र अधिक विस्तृत रहा है । सामाजिक बन्धनों में आबद्ध जनता के बीच में जागरण की स्फूर्ति लाने के लिए सक्रिय कवि बाल-विवाह का विरोध, स्वदेशी-प्रेम, नारी-जागरण, विधवा-विवाह का प्रोत्साहन, छुआछूत पर व्यंग्य, धार्मिक शोषण से मुक्ति आदि समकालीन समस्याओं के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण रखनेवाले थे । आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज आदि की स्थापना भी इस नवीन आकांक्षाओं के लिए प्रेरक शक्ति बनी । भारतेन्दु की "भारत-दुर्दशा" में भारत के उत्थान और पतन की कहानी मिलती है । भारत की करुणाजनक परिस्थिति उसका प्रधान आधार है । भूमिका में कहा है - "भारतेन्दु ने समकालीन भारतीय सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन को आधार मानकर उसका संगठन किया है और वह भारतीय नवोत्थानकालीन भावना से पूर्णतः ओत-प्रोत है ।"[2] कवि ने अपने समय के समाज के प्रति आस्थावान् होकर भारतीयों को जागरण की ओर उन्मुख करने का प्रयास किया है । छुआछूत पर व्यंग्य करते हुए कहा है -

"बहुत हम ने फैलाये धर्म, बढाया छुआछूत का कर्म"

यह कथन भी सच है कि -"वर्णाश्रम, अशिक्षा-निवारण, बालविवाह, विधवाविवाह, समुद्रयात्रा, गोरक्षा, अकाल, मन्दी, तत्कालिक साम्राज्यवादी युद्धों और

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ नगेन्द्र - पृ. 488
2. भारत दुर्दशा-भूमिका - विश्वविद्यालय प्रकाशन - पृ. 13

करवृद्धि की आलोचना - नई कविता के वे विषय भारतेन्दु ने ही हमें दिये, यद्यपि बदरीनारायण प्रेमघन, बालकृष्ण भट्ट और बालमुकुन्द गुप्त ने इस प्रकार की कविता में विशेष योग दिया ।"[1] इस तरह नये जीवन के प्रभात में प्रवेश करने का साहस आधुनिक काल में सब से पहले भारतेन्दु ने ही किया । अतः रीतिकाव्य और भक्तिकाव्य की परंपरागत कविताओं के सामने नये जीवन की भूमिका प्रदान करना कम साहस का काम नहीं था ।

भारतेन्दुकाल की अन्य प्रवृत्तियों का अध्ययन करते समय पता चलता है कि सामाजिकता से हटकर लिखी गई कविताएँ भी पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं । भक्ति भावना तथा धार्मिक विचारधारा से ओत-प्रोत कविताएँ इसके उदाहरण हैं । क्योंकि रीतिकालीन धार्मिकता का थोडा-सा प्रभाव इस युग के कवियों पर अवश्य पडा है । इसके संबंध में हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि "उन्होंने एक तरफ़ तो काव्य को फिर से भक्ति की पवित्र मन्दाकिनी में स्नान कराया और दूसरी तरफ़ उसे दरबारीपन से निकालकर लोक-जीवन के आमने-सामने खडा कर दिया ।"[2] भक्तिपरक काव्यों में एक प्रकार का समन्वय है । वैष्णव भक्ति के अन्तर्गत राम, कृष्ण, अन्य देवी-देवताओं का वर्णन उपलब्ध हैं । अनेक पौराणिक काव्यों के माध्यम से कवियों ने अपनी भक्तिभावना तथा धार्मिक विचारधारा का परिचय दिया । इस समय रामकाव्य की तुलना में कृष्णभक्ति काव्य की रचना अधिक हुई है । फिर भी यह तो सत्य है कि भक्ति तथा धार्मिक भावना भारतेन्दु युग के लिए इतनी ज़रूरी नहीं थी जितनी नवचेतना युग की । इसलिए नवचेतना भरी साँसें जागरण की दिशा में अधिक बलवती हुई हैं ।

---

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - डॉ. रामरत्न भटनागर - पृ. 21
2. हिन्दी साहित्य - हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - पृ. 242

आधुनिक काल के इस नये परिदृश्य में यह प्रश्न उठता है, क्या भारतेन्दु काल पूर्ण रूपेण आधुनिक दृष्टि से संपन्न है ? इसका संक्षिप्त उत्तर यह है कि भारतेन्दु युग प्राचीनता और नवीनता के संगम स्थल पर स्थित हैं ।

द्विवेदी-युग का आधुनिक पक्ष

द्विवेदी-युग से हिन्दी कविता की वैचारिक संपदा में विकास तथा नवीनता के विविध आयाम देखने को मिलते हैं । एक ओर इसने प्राचीनता से संघर्ष किया तो दूसरी ओर आधुनिक संस्कृति तथा आधुनिकता से अपने आपको जोड़ा भी है । लेकिन यहाँ प्रश्न आधुनिक युग की सामाजिकता या असामाजिकता का नहीं, बल्कि जीवन और उसके परिदृश्य की नीति और समावेश का है । आधुनिक युग के इस दूसरे चरण के सिलसिले में नवजागरण की प्रवृत्ति प्रखरतर रूप से आगे बढ़ी । भारतीय इतिहास में यह समय ब्रिटिश शासन की कूटनीति का काल हैं । विदेशी प्रशासकीय व्यवस्था से पीडित जनता के बीच में असन्तोष एवं क्षोभ की अग्निज्वाला भड़कने लगी । विद्वेष का प्रतिफलन उस समय की रचनाओं में प्रस्फुटित हैं । ये रचनाकार अपने युगकर्तव्य के पालन में दत्तचित्त दीखते हैं ।

इस युग में श्री मैथिलीशरण गुप्त और हरिऔध का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । गुप्तजी देश के नवोत्थान एवं नव जागरण के अग्रदूत माने जाते हैं । उन्होंने अपने काव्य-सृजन द्वारा देश में राष्ट्रीय, सांस्कृतिक एवं सामाजिक जागरण लाने का प्रयत्न किया । भारतेन्दुकाल के समान इस युग में भी कवि देख रहे थे कि पराधीन भारत का अंग्रेज़ों द्वारा शोषण हो रहा हैं । इनकी रचनाओं में पराधीनता से छटपटाती भारतीय चेतना को

जागृत करने की प्रेरणा मिलती हैं । गुप्तजी ने "भारत-भारती" में राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत रचनाएँ प्रस्तुत करके हमारे अन्दर आत्मविश्वास की भावना जागृत करने का प्रयत्न किया है ।

"हम कौन थे, क्या हो गए हैं, और क्या होंगे अभी ।
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी ।"[1]

गुप्तजी मानवता के पुजारी भी है । उन्होंने मनुष्यता की महत्ता दर्शाकर नीतिपरक और आदर्शपरक कविताएँ भी प्रस्तुत की हैं ।

"क्षुधार्थ रंतिदेव ने दिया करस्थ थाल भी,
तथा दधीचि ने दिया परार्थ अस्थिजाल भी ।
उशीनर क्षितीश ने स्वमांस दान भी किया,
सहर्ष वीर कर्ण ने शरीर - चर्म भी दिया ।।
अनित्य देह के लिए अनादि जीव क्या डरे ?
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे ।।"[2]

रंतिदेव, दधीचि, शिबि चक्रवर्ती, कर्ण आदि सब मर्त्य होकर भी अमर्त्य हैं । क्योंकि उनकी अपनी मनुष्यता ही उन्हें अमरता प्रदान करती है । मानव और मानवीय भावनाओं को महत्व देना काव्य सर्जना ही नयी चेतना है ।

पौराणिक काव्यों के आधार पर गुप्तजी ने नवीन जीवन-सन्दर्भों को जोड दिया । साकेत, जयद्रथवध, यशोधरा, द्वापर आदि इसके

---

1. "हम कौन थे ?" - मैथिलीशरण गुप्त - पृ. 2
2. मनुष्यता - अमृतभारती - मैथिलीशरण गुप्त - पृ. 33

उदाहरण हैं । निहत्था पर आघात करनेवाले विध्वंसक शक्ति से एक साधारण साहसी योद्धा यही कहना चाहता है -

"निशस्त्र पर तुम वीर बनकर वार करते हो अहो ।
पाप तुमको देखना भी पामटो ! सम्मुख न हो ।"[1]

"प्रियप्रवास" की राधा और "साकेत" की ऊर्मिला भी आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है । "प्रियप्रवास" की राधा नवजागरण काल की भारतीय नारी का प्रतीक है ।"[2] उसमें प्राचीन और नवीन भावधारा का सार्थक समन्वय है । क्योंकि प्रेम और कर्तव्य का सामंजस्य इनमें दर्शनीय हैं । राधा को कृष्ण के प्रेम का यह विश्वास ही लोक सेवा के लिए प्रेरणा और आत्म-बल प्रदान करता है । वह कहती है कि मेरे प्रियतम ब्रज लौट कर मुझे अपने अंक में बिठाकर मधुर बातें करें । आगे वह कर्तव्य के प्रति सचेत होकर कहती है - यदि मेरे हृदयेश्वर लोक-सेवा में संलग्न है तो कोई बात नहीं -

"प्यारे आवें सु-बयन कहें प्यार से गोद लेवें
ठंडे होवे नयन दुःख हों दूर मैं मोद पाऊँ ।
ये भी हैं भाव मम उर के लौटे ये भाव भी हैं
प्यारे जावें जग-हित करें गेह चाहे न आवें !"[3]

द्विवेदीयुग के इन दोनों कवियों के संबंध में हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है -"खड़ीबोली के जिन कवियों ने आधुनिक सहृदयों को इस काल में मुग्ध किया उनमें सबसे अधिक उल्लेख योग्य है अयोध्यासिंह उपाध्याय

---

1. जयद्रथवध - मैथिलीशरण गुप्त - पृ. 18
2. भारतीय साहित्य में राधा - कल्याणमल लोढ़ा - पृ. 342
3. प्रियप्रवास - हरिऔध - पृ. 253

हरिऔध और मैथिलीशरण गुप्त ।"[1] वस्तुतः द्विवेदीयुगीन चेतना आधुनिक जीवन की ओर प्रवाहमान है । इसलिए विशेष रूप से चिरपरिचित पुराण पात्रों द्वारा मानवता की प्रतिष्ठा, स्त्री-पुरुष की समत्व भावना,[2] बाल्य-विवाह के प्रति विरोध[3] आदि की अभिव्यक्ति हुई है । इसमें रचनात्मक दृष्टि को भी पूरा महत्ता मिली । वस्तुतः द्विवेदी युग की आधुनिकता का यह प्रसंग आज भी मूल्यवान है ।

सामाजिक तथा राजनैतिक दृष्टि

स्वदेशी आन्दोलन ने प्रबल वेग से भारतीय जनजीवन में नया उन्मेष संचारित किया । इससे प्रेरित होकर कवियों ने राष्ट्रीय महत्वाकांक्षाओं को प्रोत्साहन ही नहीं दिया, बल्कि समाज को एक नयी दिशा भी दी । इसी समय बुद्धिजीवियों का एक मध्यवर्ग भी उभर आया जिसके कारण सामाजिक अराजकता, निरर्थक रूढ़ियों एवं धार्मिक आडंबरों पर प्रहारकर बुद्धिवादी दृष्टिकोण का सूत्रपात हुआ । इसी शिक्षित वर्ग ने भारत के गौरवशाली दायित्व के प्रति जन-बोध कराने का नेतृत्व भी किया । पराधीन देश की जनता के दिल में एक नयी चेतना जागृत करने में अधिकतर साहित्यिक रचनाओं का योगदान हैं ।

---

1. हिन्दी साहित्य:उद्भव और विकास - हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - पृ. 270.
2. "है ठीक पुत्रों के सदृश ही पुत्रियों का मान भी,
   क्या आज की-सी है दशा, जो हो न उनका ध्यान भी ।"
   (हम कौन थे ? - मैथिलीशरण गुप्त - पृ. 16)
3. "अल्पायु में हैं तुम सुतों का ब्याह करते किसलिये ?"
   (हम कौन थे? - मैथिलीशरण गुप्त - पृ. 32)

द्विवेदीयुग की कविता राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता है । प्रान्तीयता की संकुचित मानसिकता इसमें नहीं है । इसलिए व्यापक दृष्टिकोण के साथ मातृभूमि के लिए सर्वस्व बलिदान करने की भावना इन कवियों की तूलिका से निसृत हुई । "परतंत्रता के बन्धन तोडकर सृजन स्वतंत्रता की उपासना को महात्मा गाँधी के राजनैतिक मैंच पर आने से पूर्व इन्हीं कवियों ने प्रारंभ कर दिया था ।"[1] अतः देश के कर्णधारों के नेतृत्व में जिस राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ उसी के साथ साथ कवियों का योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है । मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी आदि अपने काव्यों में ओजस्वी-हुंकार प्रकट करके प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से परतंत्रता के बन्धन काटने का सन्देश देते है ।

"यह प्रत्येक देशवासी का सत्कर्तव्य अटल है,
करे देश सेवा में अर्पण उसमें जितना बल है ।"[2]

गुप्तजी की "भारत-भारती" तथा "स्वदेश संगीत" इस दिशा में सर्वथा मूल्यवान् हैं । इनकी रचनाओं में पराधीनता से छटपटाती भारतीय चेतना को काफ़ी सशक्त ढंग से उभारा गया हैं । अतः स्वाधीनता की चेतना को इन कवियों ने प्रोत्साहित किया है । इस तरह भारतेन्दु युग में प्रवाहित राष्ट्रीय एवं सामाजिक जागरण की धाराएँ द्विवेदीयुग के उपयुक्त वातावरण में अत्यंत तेज़ी से आगे बढ़ी । द्विवेदी युग में यह शीघ्रगति से साधारण जन मन तक पहुँच गयी जिसकी भावधारा में एक नयी संवेदनशील चेतना संपन्न थी ।

---

1. हिन्दी साहित्य सामाजिक चेतना - रत्नाकर पांडेय - पृ. 170
2. पथिक - रामनरेश त्रिपाठी - पृ. 56

द्विवेदीयुग में मनुष्य की संकल्पना

पिछले युग की ईश्वरीय कल्पना तथा अमानवीय शक्तियों की आराधना के स्थान पर द्विवेदीकालीन रचनाकारों ने मानवतावादी दृष्टिकोण की पुष्टि की । यह युगानुकूल नवीन प्रवृत्ति हैं । मनुष्य अद्भुत शक्तियों का भण्डार हैं । इन्हीं शक्तियों तथा प्रतिभाओं की प्रतिष्ठा उस युग की माँग भी थी । आलोच्य काल में नवीन प्रयोगों के सन्दर्भ में मनुष्य की संकल्पना अत्यन्त गौरवशाली रही । इतना ही नहीं, मानव में ईश्वर का दर्शन करनेवाले स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव भी इस नये दृष्टिकोण की प्रेरकशक्ति बन गयी । मैथिलीशरण का हृदय भक्त का हृदय रहा है । इसलिए राम को वे अपने परम आराध्य देव के रूप में भजते हैं । पहले राम के रूप में ईश्वर की मानवता का चित्रण हुआ है जबकि "साकेत" में राम के बहाने मानव की ईश्वरता चित्रित की गयी है -

"भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया !
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।"[1]

"साकेत" में उन्हें अवतार के रूप में कम, युग-पुरुष के रूप में अधिक चित्रित किया है ।

साहित्य में मनुष्य की संकल्पना आधुनिक युग की नवजागरणकालीन प्रवृत्तियों में सब से प्रमुख हैं । इसलिए अधिकतर काव्यों के वर्ण्यविषय के मूल में मनुष्य की स्थापना पर बल मिलता है । इस नयी

---

1. साकेत - अष्टम सर्ग - मैथिलीशरण गुप्त - पृ. 146

मानवतावादी दृष्टि के कारण प्राचीन धर्म-भावना में भी परिवर्तन आ गया और मनुष्य की महिमा के गीत गाये जाने लगे । द्विवेदी युग की आधुनिकता को आह्वान तक सीमित रखकर नहीं देखा जा सकता ।

छायावादी युग का आधुनिक - सन्दर्भ

छायावादी कविता हिन्दी साहित्य में अपूर्व उपलब्धियों की कविता है । "छायावाद विशेष रूप से हिन्दी साहित्य के "रोमांटिक" उत्थान की वह काव्यधारा है जो लगभग ईस्वी सन् 1918 से 36 {"उच्छ्वास" से "युगान्त"} तक की प्रमुख युगवाणी रहीं, जिसमें प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी प्रभृति मुख्य कवि हुए ।"[1] यह तो सर्वमान्य है कि प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी - ये चारों छायावाद के चार महान स्तंभ ही हैं । ये कवि छायावादी काव्यधारा को सुसम्पन्न ओजस्वी वाणी प्रदान करके जीवन के मधुर और कोमल भावनाओं की सच्ची अभिव्यक्ति देने में अत्यन्त समर्थ सिद्ध हुए हैं । इनमें अभिव्यक्ति की गहराई मात्र नहीं, गहन मार्मिक अभिव्यक्ति के बीच में एक सांस्कृतिक मनोभावना का उदय भी है जो स्वतंत्र चिंतन पर आधारित है ।

छायावाद में एक प्रकार की स्वच्छन्द प्रवृत्ति है जिसके मूल में मनोहर कल्पना तथा सौंदर्य वैभव कार्यरत है । कल्पना के सहारे जीवन की अनुभूतियों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति करके छायावादी कवियों ने मनुष्य के अन्तरंग का स्पर्श किया । छायावादी कविता का आधुनिक सन्दर्भ यही है ।

---

1. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवरसिंह - पृ. 15

नन्ददुलारे वाजपेयी ने ठीक ही कहा है - "जिसप्रकार मध्ययुग का जीवन भक्तिकाव्य में व्यक्त हुआ उसी प्रकार आधुनिक जीवन की अभिव्यक्ति इस काव्य में हो रही है । अन्तर है तो इतना है कि जहाँ पूर्ववर्ती भक्तिकाव्य में जीवन के लौकिक और व्यावहारिक पहलुओं का गौण स्थान देकर उनकी उपेक्षा की गई थी, वहाँ छायावादी काव्य प्राकृतिक सौंदर्य और सामयिक जीवन परिस्थितियों से ही मुख्यत: अनुप्राणित है ।"[1] अर्थात् छायावाद ने मानव जीवन के सौंदर्य को तल्लीनता के साथ व्यक्त किया है ।

कल्पना और सौंदर्य की कविता

छायावादी कवि के सामने किसी भी प्रकार का सामाजिक बन्धन या उसकी नियमबद्धता नहीं थी । प्रकृति का खुला वातावरण कवि के सामने संपूर्ण मादकता के साथ अपना विलक्षण सौंदर्य का प्रदर्शन कर रहा था । पंत के "परिवर्तन" आदि इसी कोटि की उत्तम कृतियाँ हैं । प्रेम का चित्रण करते समय या प्रकृति का अनावरण करते समय छायावादी कविता में एक प्रकार की मुग्ध भावना मिलती हैं जिसे मानवीय अनुभूति की प्रामाणिकता कह सकते है । कवि ने कल्पना तथा सौंदर्य की अनुभूति को प्रकृति से ऐसा जुडा दी है जैसा अन्यत्र दुर्लभ है -

शिशिर-सा झट नयनों का नीर
झुलस देता गालों का फूल !
प्रणय का चुंबन छोड अधीर
अधर जाते अधरों को भूल ![2]

---

1. हिन्दी आलोचना:पहचान और परख - वाजपेयी का लेखक - डॉ. इन्द्रनाथ मदान - पृ. 32
2. परिवर्तन {तीन लंबी कविताएँ} पन्त - पृ. 53

पन्त अपनी बिंबात्मक भाषा के प्रयोग से जीवन के अनेक सन्दर्भों का पूर्ण शब्द चित्र अंकित करते हैं । "परिवर्तन" उनका एक बेजोड रचना है ।

जयशंकर प्रसाद प्रेम और सौंदर्य के कवि है । "कामायनी" की प्रकृति मानव की सहचरी बनकर मानव की सुन्दर मनोभावना का आभास देती है । इसलिए वे कहते है -

निकल रही थी मर्म वेदना, करूणा विकल कहानी-सी
यहाँ अकेली प्रकृति सुन रही, हँसती-सी पहचानी-सी ।[1]

छायावादी कवि नारी-सौंदर्य का चित्रण भी अत्यधिक मोहक रूप में करते हैं । "कामायनी" की श्रद्धा के सौंदर्य की अभिव्यक्ति प्राकृतिक सौंदर्य से संपृक्त चित्रित करते है -

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघवन बीच गुलाबी रंग ।[2]

इतने मुग्ध सौंदर्य का चित्र छायावादी कविता के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है । कामायनीकार ने "लज्जा" भाव की व्यंजना कितनी समर्थता से की है वह उनकी कल्पना की चरम परिणति है । नारी के संबन्ध में कवि के अपने विचार लज्जा के मुख से कहलाते है -

नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास-रजत-नग-पगतल में

---

1. कामायनी - जयशंकर प्रसाद - पृ. 16
2. कामायनी - जयशंकर प्रसाद - पृ. 56

पीयूष-स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में ।[1]

"लज्जा" सर्ग की ये पंक्तियाँ शायद "कामायनी" की सर्वश्रेष्ठ पंक्तियाँ हैं । यह सौंदर्य की चरम उपलब्धि भी है ।

वैयक्तिक चेतना पर आधारित मानवतावाद

छायावादी कविता आधुनिक व्यक्ति की कविता है । इसमें सामाजिक अभिव्यक्ति से अधिक वैयक्तिक अभिव्यक्ति के लिए प्रमुखता है । वैयक्तिक अनुभूति की यही चेतना प्रसाद ने आँसू के माध्यम से व्यक्त करके प्रेम काव्य की दिशा में उसे एक अपूर्व स्थान प्रदान किया । कवि के लिए जो घनीभूत पीडा थी वह दुर्दिन में आँसू बनकर बरसती है -

"जो घनीभूत पीडा थी
मस्तक में स्मृति-सी छाई
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आई ।"[2]

लेकिन बाद में इस व्यक्तिनिष्ठ मानसिकता की प्रबलता धीरे-धीरे कम होने लगी और जीवन के बाहरंग और अंतरंग वर्णन सामाजिक यथार्थ की ठोस वास्तविकता के साथ अभिव्यक्त होने लगी । कवि की दृष्टि आधुनिक जीवन सन्दर्भों के विविध आयामों की ओर अग्रसर होने लगी । इसी सन्दर्भ में निराला के "राम की शक्तिपूजा", पंत के "परिवर्तन", प्रसाद के "आँसू"

---

1. कामायनी - जयशंकर प्रसाद - पृ. 57
2. आँसू - प्रसाद - पृ. 14

आदि विचारणीय हैं । इनके मूल में नयी स्फूर्ति का संचार उपलब्ध हैं जो मानवतावादी हैं । अतः आँसू के अंत में अपने व्यक्तिगत वेदना विश्वकल्याण की भावना में परिवर्तित हुई हैं ।

"सब का निचोड लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात हिमकन-सा
आँसू इस विश्व-सदन में ।"[1]

पंत "परिवर्तन" के अंत में परिवर्तन को कालातीत सर्वशक्तिशाली तत्व के रूप में स्वीकार करते हैं ।

"तुंग तरंगों से शत-युग, शत शत कल्पांतर
उगल, महोदर में विलीन करते तुम सत्वर ;
शत सहस्र रवि शशि असंख्य ग्रह, उपग्रह, उडुगण,
जलते बुझते है स्फुलिंग से तुम में तत्क्षण,
अचिर विश्व में अखिल, दिशावधि, कर्म, वचन, मन
तुम्हीं चिरन्तन
अहे विवर्तहीन विवर्तन !"[2]

पहले जो परिवर्तन व्यक्तिपरक था वह बाद में विराट बनकर समाजपरक हो जाता है ।

"राम की शक्तिपूजा" संपूर्ण छायावादी काव्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है । इसमें धर्म और अधर्म के शाश्वत संघर्ष का चित्रण है ।

---

1. आँसू - प्रसाद - पृ. 79
2. परिवर्तन (तीन लंबी कविताएँ) - पन्त - पृ. 67

यह कविता निराला की "शक्ति की मौलिक परिकल्पना" है । निराला ने अपनी अनूठी प्रतिभा के द्वारा अलौकिक ईश्वरीय कल्पना को साधारण मानवीय संवेदनाओं तथा संघर्षों से संपृक्त करके इस काव्य की श्रीवृद्धि की है । दूधनाथ सिंह ने कहा है - "राम की शक्तिपूजा" में संशय ऐन लडाई के मैदान में पराजय की आशंका का प्रतिफल है ।"[1] राम का संशय निराशा में बदल गया है -

बोले रघुमणि - "मित्रवर, विजय होगी न, समर
यह नहीं रहा नर-वानर का राक्षस से रण ।"[2]

ऐसा कहते कहते उस रघुकुलमणि के नयनों में आँसू छलककर आये । यह शंका और पराजय की भीति-सहज वैयक्तिक चेतना के अतिरिक्त और क्या है ? इसी तरह पूजा पूर्ण होने के अन्तिम क्षण में जब उसके हाथ में कमल न मिला तो वह एक साधारण व्यक्ति के समान अपनी असमर्थता पर संत्रस्त अनुभव करता है -

"धिक् जीवन जो पाता ही आया है विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध !
जानकी ! हाय उद्धार प्रिया का न हो सका ।"[3]

अंतिम पंक्तियों में महाशक्ति के मुँह से निराला ने राम को "होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन"[4] कहलाया है । निस्संदेह से कह सकते है कि निराला के राम "मर्यादा पुरुषोत्तम" या "प्रज्ञापुरुष" नहीं, नवीन पुरुषोत्तम

---

1. निरालाःआत्महन्ता आस्था - दूधनाथ सिंह - पृ. 142
2. राम की शक्तिपूजा (तीन लंबी कविताएँ) - निराला - पृ. 45
3. राम की शक्तिपूजा (तीन लंबी कविताएँ) - निराला - पृ. 50
4. राम की शक्तिपूजा (तीन लंबी कविताएँ) - निराला - पृ. 51

ही है । राम के मन में उठती हुई पृथ्वी-पुत्री कुमारिका की छवि घने अन्धकार के बीच में खिलनेवाली बिजली के समान अत्यन्त देदीप्यमान है ।[1] उसकी याद आते ही उदास राम के मन में विश्व-विजय की भावना जाग उठती है । देवता होते हुए भी राम में विलक्षण मानवीय संवेदनाएँ हैं । वह आधुनिक मानव का प्रतीक है । निराशा, दुःख, व्यथा, जागरण, उत्सर्ग की अवस्था, संघर्ष, मानसिक द्वन्द्व आदि सभी मानवीय भावनाएँ ऐसे महान पुरुषों में अवश्य हैं ।

व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा के साथ साथ व्यापक मानवतावाद पर भी छायावादियों की दृष्टि पडी । इसी मानवतावाद के पीछे वैयक्तिक चेतना कार्यरत है । "प्रसादजी मनुष्यों के और मानवीय भावनाओं के शेष प्रकृति यदि उनके लिए चैतन्य है तो भी मनुष्य सापेक्ष्य है ।"[2] मानवता के प्रति सुदृढ़ आस्था के कारण ही दुःखान्त होने योग्य काव्य भी कभी-कभी मानवमूल्यों के संरक्षण से आकृष्ट होकर समरसतावाद में परिणत हो गया है ।

नवस्वच्छन्दतावादी कविता

छायावादोत्तर काल में जो व्यक्तिवादी कविता की नयी चेतना हिन्दी काव्य क्षेत्र में अवतरित हुई, वह वैयक्तिक, स्वच्छन्दतावादी, नवस्वच्छन्दतावादी आदि विभिन्न नामों से प्रचलित हुई । इसकी अधिकतर रचनाएँ छायावाद और प्रगतिवाद दोनों के अंतरगत आती हैं । इसकी दृष्टि रोमानी है, लेकिन इसी रोमांटिक भावधारा के बीच में अवसाद से उत्पन्न

---

1. ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत्
   जागी पृथ्वी - तनया-कुमारिका-छवि अच्युत (राम की शक्तिपूजा)
   तीन लंबी कविताएँ - निराला - पृ. 41.
2. हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी - नन्ददुलारे वाजपेयी - पृ. 139

व्यथा तथा उदासी भाव अंत तक व्याप्त है । इस धारा के प्रमुख कवियों में श्री हरिबंशराय बच्चन, दिनकर, अंचल, नरेन्द्रशर्मा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । इनकी काव्यप्रवृत्तियों की ओर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होगा कि वह छायावाद और प्रगतिवाद से संबद्ध है । उनमें निजी अनुभूति की अधिकता के कारण आत्म-संपृक्ति का साक्षात्कार मुखर है ।

इस दौर के प्रमुख कवियों में रामेश्वर-शुक्ल "अंचल", बालकृष्ण शर्मा "नवीन", नरेन्द्र शर्मा, दिनकर आदि की कविताएँ भी विशेष महत्व रखती हैं । अंचल के जीवन और साहित्य का परिचय उन्हीं के शब्दों में, "मध्यवर्गी होने के कारण आरंभ से गाँवों से घना संपर्क होने के नाते मुझे भीषण दुःख, दरिद्रता, अज्ञान, अस्वस्थ गलित नैतिकता और रूढ़ि-पूजा के ऐसे दृश्य देखने को मिले हैं जो बेनज़ीर है । मेरी बहुत-सी कविताओं में इस प्रकार के वर्णन हैं । अनेक कविताओं की प्रेरणा मुझे अपने चारों ओर फैली सामाजिक विषमता और अभावों की वेदना से मिली है ।"[1] इसी वेदना एवं दुःख इस प्रकार फूट निकलती है -

"जीवन में सुख दुःख मिले बहुत,
मन उन से दूर रहा आया,
उन स्वप्नों को, उन सत्यों को,
मन कभी नहीं अपना पाया ।"[2]

इन कवियों में सामाजिक असन्तोष व्यक्तिगत अस्वीकृति का कारण बन जाता है । "बंगाल का काल" में बच्चन अकाल पड जाने के बाद बंग-भूमि की दुर्दशा को

---

1. आधुनिक कवि - भूमिका - अंचल - पृ. 17
2. विश्वास तुम्हीं पर कर पाया - अंचल (कविश्री) - पृ. 25

आँखें बंद करके स्वीकारता नहीं । अन्नपूर्णा रूपी बंग-भूमि में अन्न, जल सब कुछ हैं । लेकिन जिसपर तुम्हें अधिकार हैं उसे माँगे बिना लाखों पुत्र उसी अन्न से वंचित हो जाते हैं -

"अगर न निर्बल
अगर न दुर्बल
तो तेरे यह लक्ष लक्ष सुत
वंचित रहकर उसी अन्न से
उसी धान्य से,
जिसपर हैं अधिकार इन्हीं का ।"[1]

इन पंक्तियों में विद्रोह का स्वर भी गूँज उठा हैं जो प्रगतिवादी कविताओं में सुनायी पडता है । लेकिन इस विद्रोह में वैयक्तिक अनुभूतियाँ मुखर हैं ।

वैयक्तिक चेतना से अभिभूत कविताओं के अलावा इस धारा में कुछ राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यों का सृजन भी हुआ हैं । विदेशी सत्ता से विरोध, जनता के मन में उठी हुई क्रोधाग्नि एवं असन्तोष इनका विषय रहा । दिनकर, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, आदि की रचनाओं में इस तरह की राष्ट्रीय भावना दृष्टिगत होती हैं । चतुर्वेदी और नवीन राष्ट्रीयतावादी दृष्टिकोण में समान हैं । दोनों के मन में पराधीन राष्ट्र की व्यथा, स्वाधीनता सेनानियों का उत्साह, कारागार यात्रा और उनकी विशेषताएँ मिलती हैं । सैनिक के जीवन के एक छोटा-सा सन्दर्भ उभारते हुए कवि कहते हैं -

"क्यों रोते हो, यार, सिपाही, क्यों रोते हो यार ?
क्या घर की चिट्ठी को पढकर जीवन लगा असार ?"[2]

---

1. बंगाल का काल - बच्चन - पृ. 36
2. कविश्री - नवीन - पृ. 55

स्वच्छन्द कवि ने गीतिकाव्यों के साथ साथ कथाकाव्यों की भी रचना की हैं, लेकिन हर एक में उनकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है । आधुनिक सन्दर्भ में यह स्वच्छन्द चिंताधारा सर्वात्मना स्वीकार्य है । ये कवि परंपरा के प्रति आस्था रखनेवाले हैं । यही कारण है कि इनकी रचनाओं में अतीत की गाथाएँ आधुनिकता का मूर्त रूप धारण करके मानवतावाद का दर्शन कराती हैं । इन कथाकाव्यों में प्रमुख हैं "द्रौपदी", "ऊर्मिला", "कुरुक्षेत्र" आदि द्रौपदी की जीवन गाथा अनेक कवियों की कथा रही, लेकिन नरेन्द्र शर्मा को पाँचों तत्वों में जीवन-शक्ति का संचार करनेवाली द्रौपदी मिली । परन्तु नवीनजी को सभी रामायणी पात्रों में दु:खपुत्री परित्यक्ता ऊर्मिला मिली । युधिष्ठिर (आकाशतत्व), भीम (पवनतत्व), अर्जुन (अग्नितत्व), नकुल-सहदेव (जल-थल तत्व) द्रौपदी इन पाँचों तत्वों रूपी पाँडवों की शक्तिमती प्रेरणा बन गयी । इस विषय में कवि का अपना दृष्टिकोण है -"मैं अपने देश-काल और मन-स्थिति का प्राचीन कथाओं पर आरोपण न करके, उनके मर्म-बीज को खोजने का प्रयत्न करूँ । इसलिए मैं ने द्रौपदी को जीवनी शक्ति और पाँडवों को पाँच महातत्वों के रूप में देखा है, न कि प्राचीन काल में बहुपत्नि-प्रथा के प्रचलन के उदाहरण की सामग्री के रूप में ।"[1] वास्तव में द्रौपदी वह प्रज्ञा अथवा चैतन्य की ज्वाला है जो अपनी दिव्य प्रभा से पाँडवों को प्रेरित कर लुप्त तत्वों को प्राप्त करने की क्षमता प्रदान की । लेकिन "ऊर्मिला" के संबंध में नवीनजी कहते है - "मेरी इस "ऊर्मिला" में पाठकों को रामायणी कथा नहीं मिलेगी । इस ग्रंथ में मैं ने विशेषकर मन:स्थर पर होनेवाली क्रियाओं का दर्पण बनाने का प्रयास किया है ।"[2] राम वन गमन के सन्दर्भ में वन यात्रा के विरुद्ध प्रतिषेध का जो स्वर ऊर्मिला द्वारा सुनायी पडा वह जनतांत्रिक व्यवस्था

---

1. द्रौपदी - भूमिका - नरेन्द्रशर्मा - पृ. 10
2. ऊर्मिला-भुमिका - बालकृष्णशर्मा नवीन -

में एक साधारण व्यक्ति का शब्द है -

"कह दो आज पिता दशरथ से, कि यह अधर्म नहीं होगा,
कह दो लक्ष्मण के रहते यह घोर कुकर्म नहीं होगा ।"[1]

इस तरह परंपरागत रामकथा के इस प्रसंग में कवि ने नवीन प्रयोगों को स्वीकार किया है । प्रजातंत्र की शासन-व्यवस्था जिस देश में चलती हैं वहाँ अनीति और अधर्म के विरुद्ध एक साधारण व्यक्ति भी विरोध प्रकट करता है । इस तरह के समकालीन सन्दर्भों को अतीत के कथा-प्रसंगों से जोडकर नयी व्याख्या या नये आदर्श की प्रतिष्ठा में कवि सफल हुए हैं ।

प्रगतिवादी कविता - आधुनिकता

सन् 1935 के आसपास हिन्दी साहित्य में एक नयी सामाजिक दृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ जो प्रगतिवाद के नाम से चर्चित होने लगा । लेकिन छायावाद के समाप्तिकाल के पूर्व से ही व्यक्तिवादी चेतना से हटकर कवियों ने सामाजिक चेतना से अभिभूत होकर नयी काव्यधारा का प्रयोग करना शुरू किया था । अतः 1935 के पहले से ही प्रगतिवादी चेतना की कविताएँ उपलब्ध थी । यह प्रगतिशीलता की प्रवृत्ति है । "जिस प्रकार छायावाद के मूल में छायावादी प्रवृत्ति अनिवार्य थी उसी प्रकार प्रगतिवाद के मूल में प्रगतिशीलता भी ।"[2] लेकिन साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिशील रचनाओं का सृजन जिस धारा में हुआ है उसे प्रगतिवाद कहने में कोई दोष नहीं है । "प्रगतिवादी समाजवादी जब चेतना का साहित्यिक रूप था । उसके पीछे मार्क्सवादी दर्शन की मज़बूत विचारभूमि थी ।"[3]

---

1. ऊर्मिला - नवीन - पृ. 244
2. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह - पृ. 70
3. नया काव्य नये मूल्य - ललित शुक्ल - पृ. 71

जन-चेतना का काव्य

प्रगतिवादी काव्य जन-चेतना का काव्य है । क्योंकि प्रगतिवादी कविताओं में जन-चेतना को सजग करने की शक्ति है । यह नाना प्रकार के सामाजिक बन्धनों को तोडकर एक नई संस्कृति के पक्षपाती होकर क्रान्ति की विचारधारा से प्रभावित हैं ।

प्रगतिवादी काव्यधारा की आधुनिकता के सन्दर्भ में विचार करते समय नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, रामविलास शर्मा, आदि की कविताओं का विशेष महत्व हैं । इनकी रचनाएँ प्रमुख रूप से जन-चेतना से अनुप्राणित हैं । वे वैयक्तिक अनुभव को सामाजिक अनुभवों के रूप में परिणत कर देते हैं । तभी वह जन चेतना का अंग बन जाता है । वे जीवन की जटिल विषमताओं का अंकन करके मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं को प्रस्तुत करते हैं । "बहुत बुरा हाल हैं !! करूँ मैं किस वर्ग में गिनती अपनी ।"[1] पूछते हुए दयनीय पारिवारिक स्थिति को भी दूसरों के सामने स्पष्ट करने में कवि हिचकते नहीं । व्यक्तिगत जीवन की झाँकि संपूर्ण जन जीवन का अंश हैं ।

प्रगतिवादी कवि देश और जनता के कवि है । इसलिए वे एक ओर देश और जनता के प्रति आस्था रखते हैं तो दूसरी ओर दर्द और दुःख के गीत भी गाते हैं । जीवन के ऐसे वैषम्य और दयनीय पक्ष को उभारकर समकालीन जन शब्दों से अपना शब्द मिला देते हैं । बंगाल में जो अकाल हुआ उसका भीषण परिणाम सब जानते हैं । लेकिन अकाल के बाद का दृश्य कविता का विषय बन गया है -

---

1. युगधारा - नागार्जुन - पृ. 12

"कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त "[1]

नागार्जुन की जन चेतना भरी विचारधारा का यही सच्चा प्रमाण है । इसी तरह केदारनाथ अग्रवाल भी मनुष्य के दु:ख, पीडा, संघर्ष, हर्ष आदि सब के कवि हैं । "कहें केदार खरी खरी" की भूमिका में उन्होंने लिखा है - "वह मनुष्य के कवि है । कविता में मनुष्य तथा मनुष्यता के तलाश के कवि है ।"[2] इसलिए मनुष्य जीवन के संघर्ष की ओर कवि मन लगा हुआ है -

"हमारी ज़िन्दगी के दिन
बडे संघर्ष के दिन हैं ?"[3]

जनकवि होने के नाते कवि का कथन सही है - "मैं ने कविता को सरिता के रूप में जनता तक पहुँचाया है । यदि कविता से लगन न लगती तो लक्ष्मी का वाहन बनकर कम पढ़ा मूढ़ महाजन होता और शायद ज़रूरत से ज़्यादा कागज़ के नोटों का संचय करता । कविता ने मुझे इस योग्य बनाया कि मैं जीवन-निर्वाह के लिए उसी हद तक आदमी बना रह सकता हूँ ।"[4] प्रगतिवादी कवि समाज के शोषित वर्ग के प्रति आस्थावान् हैं । समाज में शोषितों एवं दोनों के साथ जो शोषण चलता रहता है उससे ये कवि विचलित नहीं हैं । मज़दूरों के जीवन

---

1. सतरंगे पंखोंवाली - नागार्जुन - पृ. 32
2. कहें केदार खरी खरी - भूमिका - पृ. 11-12
3. हमारी ज़िन्दगी (कहें केदार खरी खरी) -अग्रवाल - पृ. 31
4. लोक और आलोक -भूमिका - अग्रवाल - पृ. 4

चित्र प्रगतिवादियों का प्रिय विषय रहा । वे जो कुछ कहते हैं, लोगों से कहते हैं । इसलिए कवि कहते हैं -

"मैं तुम से, तुम्हीं से, बात किया करता हूँ
और यह बात मेरी कविता है ।"[1]

लेकिन राम विलास शर्मा धरती पर दिन भर श्रम करनेवाले मज़दूरों का चित्र इस प्रकार खींचते है -

"इस धरती पर जो..... श्रम करते हैं
उनके तन के पत्तों में अब सूख गया है
रक्त, रेत पर गिरी हुई जल की बूँदों-सा ।"[2]

श्रमिक लोगों के श्रम के अनुसार वेतन नहीं देते हैं । मज़दूरों के प्रति पूँजीपतियों का यही निर्मम व्यवहार है । अत: मज़दूरों जैसे शोषित वर्ग की समस्या हर युग की समस्या है । दीन-दुखियों के अधिकारों को माँगने या शासकीय अथवा पूँजीपतियों से उन्हें दिलवाने की चाह भी हैं । यह प्रयत्न आधुनिक चिंताधारा से प्रेरित है ।

प्रयोगवादी कविता - आधुनिकता के सन्दर्भ में

हिन्दी कविता में "तारसप्तक" के प्रकाशन से ही "प्रयोगवाद" शब्द प्रचारित हुआ जो बाद में आधुनिक मानसिकता का प्रतिनिधित्व कर एक सशक्त काव्यधारा के रूप में अवतरित हुआ । लेकिन हर नई प्रवृत्ति के समान प्रगतिवाद के समय से ही प्रयोगवादी प्रवृत्तियाँ हिन्दी काव्य जगत

---

1. मैं तुम - ताप के ताए हुए दिन - त्रिलोचन - पृ. 61
2. रूपतरंग - रामविलास शर्मा - पृ. 16

में विकसित होने लगी थी । इसलिए "तारसप्तक" की सभी कविताएँ प्रयोगवादी नहीं है । क्योंकि इसके अधिकतर कवि प्रगतिवादी ही है । अर्थात् जो कवि प्रगतिवादी चिन्तनधारा से संपृक्त होकर नवीन सामाजिक यथार्थवादी चेतना को स्वर दे रहे थे । वे आगे चलकर युगीन प्रवृत्तियों से गहराई से जुडकर "तारसप्तक" में शामिल हो गये । "यद्यपि "तारसप्तक" से प्रयोगवादी चेतना की शुरूआत हुई तो भी "दूसरा सप्तक" के प्रकाशन से ही हिन्दी काव्य के क्षेत्र में प्रयोगवादी काव्यधारा की स्थापना प्रबल रूप से हुई ।"[1] कविता में होनेवाले नये प्रयत्नों तथा नये नये प्रयोगों के कारण इसे प्रयोगवाद जैसा नाम दे दिया गया ।

हर वाद के मूल में नये प्रयत्न हैं । कविता के रचनात्मक परिदृश्य में इस तरह के नये प्रयत्नों तथा नये प्रयोगों की ज़रूरत पडती हैं । प्रयोगवाद भी ऐसी एक काव्य प्रवृत्ति है । "प्रयोग सभी काल के कवियों ने किये हैं, यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही है ।"[2] ऐसा कहते हुए प्रयोगवादी कवियों ने प्रयोग की सार्थकता और "प्रयोगवादी" कहने की निरर्थकता स्पष्ट करने का प्रयास किया है । यह निर्विवाद है कि प्रगतिवादी काव्यधारा की पृष्ठभूमि में खडे होकर आधुनिक जीवन परिदृश्य के आलोक में जिन नये प्रयोगों का प्रक्षेपण हिन्दी कविता में हुआ उसे प्रयोगवाद कहना उचित होगा ।

यहाँ प्रश्न है कि आधुनिक सन्दर्भ में प्रयोगवाद ने आधुनिक मनोवृत्तियों को कैसे जागृत किया ? देश की तत्कालीन परिस्थितियाँ

---

1. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवरसिंह - पृ. 110
2. "तारसप्तक" - अज्ञेय - पृ. 276

क्या ऐसी एक नयी मानसिकता के लिए अनुयोज्य रही हैं ? 1942-43 का समय देश में व्यापक सामाजिक तथा राजनैतिक आन्दोलनों का समय था । दूसरे विश्वमहायुद्ध और बंगाल का काल जनता के लिए असीम दर्द और पीडा का अनुभव था । इस संघर्षपूर्ण संदर्भ में प्रयोगवादी मौन धारण नहीं कर सकते थे । जीवन संघर्ष ने मानव को अधिक बौद्धिक बना दिया था और वैयक्तिक चेतना को जागृत भी किया था । यही नहीं, जीवन की असफलताएँ, निराशाएँ, कुंठाएँ तथा अतृप्तियाँ आदि बन गईं । इन सभी को वाणी देने के लिए नये शब्द की ज़रूरत थी, नये प्रयोगों की आवश्यकता थी ।

"जनाश्वान" में अज्ञेय की वैयक्तिक चेतना सामूहिक चेतना में परिणत हो जाती है -

आततायी, आज तुझको पुकार रहा मैं
रणोधत दुर्निवार ललकार रहा मैं
कौन हूँ मैं ?
तेरा दीन दुःखी पद-दलित पराजित
आज जो कि क्रुद्ध सर्प-से अतीत को जगा
"मैं" से "हम" हो गया ।[1]

जब कवि अपने को "मैं" समझ रहा था तब वह अकेला था । इस अहं-भावना के कारण अशक्त होने की प्रतीति से उसे शोषकों एवं उत्पीडकों का सम्मुख झुकना पडता था । लेकिन आज वह एकाकी नहीं है । "मैं" के स्थान पर "हम" हो गया है, एक समूह बन गया है, इसलिए वह आततायी को ललकारता है । इस तरह प्रयोगवादी कवि वैयक्तिक प्रयोग में विश्वास करता है ।

---

1. तारसप्तक - अज्ञेय - पृ. 280

जब विशिष्ट अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए साधारण शब्द असमर्थ होता है तब कवि उसमें नया, अधिक व्यापक अर्थ भरना चाहता है । इसी व्यापकता के बीच में व्यक्ति-अनुभव से समष्टि-अनुभव तक पहुँचने की समस्या भी उठती हैं । यह प्रयाण प्रयोगवाद के आधुनिकता संबन्धी दृष्टिकोण के अनुकूल ही है ।

प्रयोगवादी कविताएँ मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ चित्र हैं । इनमें मध्यवर्गीय दीनता, हीनता, अनास्था, कटुता, पलायन, अन्तर्मुखी प्रवृत्ति आदि का मार्मिक चित्रण ईमानदारी से किया गया है । इसलिए इसमें अनुभूति की गहराई अवश्य पायी जाती है । यहाँ संवेदना वैयक्तिक चेतना पर आधारित है । ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय जीवन के प्रति प्रयोगवादी कवि सचेत है -

"अधूरी और सतही ज़िन्दगी के गर्म, रास्तों पर
हमारा गुप्त मन
निज में सिकुड़ता जा रहा
जैसे कि हब्शी एक गहरा स्याह
गोरों की निगाहों से अलग ओझल
सिमट कर सिफर हो जाना चाहता हो जल्द !"[1]

मध्यवर्गीय मनुष्य की ज़िन्दगी कितनी अधूरी और सतही है । उसी रास्ते में हमारा गुप्त मन व्यथा और पीडा से सिकुड़ता जा रहा है । आधुनिक मनुष्य की पीडा और विवशता का चित्र कवि ने जिस गहरी संवेदना के साथ व्यंजित किया है वह आधुनिक बोध की मार्मिक व्यंजना ही है । अतएव प्रयोगवादी कवि मनुष्य जीवन के अनुभवों के प्रति जागरूक है । "प्रयोग केवल चमत्कार की अनुभूति नहीं है इसमें युग का ध्येय लक्षित होता है । इसमें

---

1. चाँद का मुँह टेढा है - मुक्तिबोध - पृ. 148

देश काल से संबंधित जीवन की व्यापक मानव जीवन की, ग्रहणशीलता का प्रयास मिलता है ।[1] तात्पर्य यह है कि प्रयोगवाद युगीन प्रश्नों के अनुरूप आधुनिक मनुष्य जीवन का आख्यान करते हैं । मध्यवर्गीय चेतना के प्रति मध्यवर्गीय कवि की मानसिकता का प्रतिक्रिया है । इसी तरह नेमीचन्द्र जैन, भरत भूषण अग्रवाल, गिरिजाकुमार माथुर आदि प्रयोगवादी कवियों में भी नयी चेतना की वास्तविक आकांक्षा है ।

ऊपर प्रयोगवाद के संबंध में जो विचार आये हैं उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रयोगवादी कविताएँ मध्यवर्गीय जीवन के प्रति मध्यवर्गीय कवि की प्रतिक्रिया है । वे साहस के साथ मध्यवर्गीय अन्तर्मुखता तथा ह्रासोन्मुखता का प्रतिपादन करते हैं । अतः इसमें गहरी संवेदनशीलता के नये आयाम परिलक्षित हैं । दरअसल प्रयोगवाद ने कविता के लिए नई भावभूमि प्रदान की जिसपर नई कविता की विशाल तथा व्यापक इमारत खड़ी है ।

प्रयोगशील नई कविता

जब कभी आधुनिकता की चर्चा होती है तो प्रयोगशील नई कविता की बात उठती है । प्रयोगशील नई कविता का तात्पर्य सामान्यतः स्वतंत्रता प्राप्ति के आस पास नई कविता में लक्षित उन परिवर्तनों से संबंधित कविता से है जिन्हें प्रायः दो प्रमुख काव्यप्रवृत्तियों के रूप में देखा गया है । पहले का संबंध प्रयोगवाद से है और दूसरे का नई कविता से ।

---

1. नई कविता के प्रतिमान - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 187

इन दो काव्यसरणियों को इसलिए एक के अंदर देखा गया है कि ये दोनों हिन्दी कविता में नये उन्मेष का द्योतक है । वस्तुतः इन दो काव्यसरणियों को अध्याय में दो अलग अलग वर्गों में रखा गया है । कुछ आलोचकों के अनुसार ये दोनों भिन्न भी हैं । "प्रयोगवादी कविताओं के लिए "नयी कविता" का नाम प्रचारित किया जा रहा है ; लेकिन "नया" विशेषण से नवजीवन की जिस ताज़गी का बोध होता है वह इन कविताओं में नहीं हैं । इनका नयापन केवल पूर्ववर्ती कविताओं से भिन्नता में ही है और हर युग की कविता अपने पूर्ववर्ती युग से कुछ न कुछ भिन्न अथवा नयी होती है ।"[1] लेकिन प्रयोगवाद नई कविता की भूमिका है । नई कविता प्रयोगवाद का विकास है । इस अर्थ में प्रयोगशील नई कविता जैसे शब्द का प्रयोग हुआ है ।

उपर्युक्त बातों से ज्ञात होता है कि प्रयोगशील नई कविता, प्रयोगवाद और नई कविता के बीच की कविता है । इसे प्रयोगवाद से नई कविता की ओर की प्रस्थानमूलक कविता भी कह सकते हैं । प्रयोगवादी कवियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गया और वे स्वयं "वादी" रहने के लिए तैयार भी नहीं थे । मात्र यही नहीं "वाद" के विरुद्ध नारा लगाना भी शुरू हो गया था ।

प्रयोगशील जीवन दृष्टि में सत्य का अन्वेषण है । "वाद" के विरोधी कवि स्वयं उस सत्य के अन्वेषण में आगे बढ़ता है । इस सत्य की तलाश के हेतु कई प्रयोगवादी कवियों की प्रयोगशीलता नई कविता को स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाते हैं । अज्ञेय का प्रयोगशील व्यक्तित्व परंपरा की

---

1. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह - पृ. 111

टकराहट से नयी संवेदना को नये रूपों में अभिव्यक्त करता रहा है ।

"अभिनव द्रोण किन्तु कहता है
वत्स धीर, धरो-चाप, साधो तीर
धरती को विद्ध करो-अमृत-सा कूप जल यहीं फूट निकले ।"[1]

यह स्वीकृति नई कविता की पृष्ठभूमि तैयार करने में अत्यधिक सहायक रही । इस नये मोड के संबंध में एक मत यह है कि -"प्रयोगवाद बदलते हुए मूल्यों को सशक्त अभिव्यक्ति न दे पाया, क्योंकि उसमें प्रयोगशीलता का आग्रह अधिक और कविता का आग्रह कम था, इसलिए सन् 50 से प्रयोगवाद से नयी कविता की ओर प्रस्थान माना जा सकता है ।"[2] वस्तुतः स्वाधीनता प्राप्ति के आसपास हिन्दी काव्यधारा में हुए नये गतिशील एवं गुणात्मक परिवर्तनों का आविर्भाव नई कविता के विकास में अधिक प्रेरणादायक जान पडा । इसलिए दोनों के बीच गहरा संबंध भी व्यक्त है, पर ऐतिहासिक दृष्टि से एक दूसरे का विकसित रूप ही है ।

नई कविता

1950 के बाद हिन्दी कविता के क्षेत्र में नई कविता की चर्चा ज़ोर पकडती है । इसके विकास तथा पुष्टि करने में 1953 ई. में प्रकाशित "नये पत्ते" और 1954 ई. में प्रकाशित "नयी कविता" नामक पत्रिकाएँ प्रमुख रही हैं । लेकिन एक तथ्य सर्वस्वीकृत है कि प्रयोगवाद नव-लेखन की भूमिका है । आधुनिक भावबोध की संवेदनात्मक स्थिति ने नई कविता को

---

1. इन्द्रधनु रौंदे हुए - अज्ञेय - पृ. 33-34
2. नयी कविता में मूल्यबोध - शशि सहगल - पृ. 48

सुस्थिर किया । लक्ष्मीकांत वर्मा ने ठीक ही कहा है - "नयी कविता कोई आन्दोलन नहीं ; वह एक साहित्यिक प्रवृत्ति है जिसमें आज का भावबोध अधिक व्यंजना के साथ अभिव्यक्ति पाता है ।"[1] अतः नयी कविता मनुष्य की नयी अभिव्यक्ति को विकसित करनेवाली कविता है । उसकी मूल भावना सामाजिक एवं सांस्कृतिक हैं ; उसमें यथार्थ का सही सन्निवेश है । नयी कविता तर तक व्याप्त यथार्थबोध के साथ साथ आधुनिकता की अवधारणाएँ भी मिलती हैं ।

नयी कविता जीवन के प्रति आस्था की कविता है । जीवन मूल्यों के प्रति नयी कविता का दृष्टिकोण नकारात्मक नहीं, बल्कि स्वीकारात्मक है । जीवन सत्य कवि के लिए आत्म-सत्य बन जाता है । इसलिए जीवन के प्रति आस्थावान् रहना कवि-धर्म हो है ।

नयी कविता ने पराजित मध्यवर्गीय मनःस्थिति की विसंगतियों का यथार्थ चित्र का अंकन किया है । स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारत में भी अवसरवाद, भ्रष्टाचार, मूल्यों का विघटन आदि अमानवीय व्यवहार मानव जीवन को त्रस्त कर रहे थे । उस सन्दर्भ में सामाजिक चेतना भी बदल गयी । इसी के संबंध में मुक्तिबोध ने कहा है - "नई कविता के क्षेत्र में भी दो दल तैयार हो रहे हैं - एक वह दल है जो उच्च मध्यवर्ग का अंग है ; दूसरे वे हैं जो निचले गरीब मध्यवर्ग से सम्बन्धित है ।"[2] इन दोनों के वैचारिक अनुभव नई कविता में विद्यमान है ।

---

1. नई कविता के प्रतिमान - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 2
2. नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध - मुक्तिबोध - पृ. 15

नयी कविता वैयक्तिक और सामूहिक चेतना से अभिभूत भी है । व्यक्तिगत अनुभूतियों के सुन्दर पक्ष मात्र नहीं, जीवन के दुरूह, जटिल एवं विवश अनुभवों की अभिव्यक्ति भी है । यहाँ स्वाभाविक रूप से कुंठाएँ पैदा हो जाती हैं । इसलिए कुंठित मानसिकता का सतत् चित्र नई कविता में वाँछनीय हो सकता है -

हम सब के दामन पर दाग़
हम सबकी आत्मा में झूठ
हम सब के माथे पर शर्म
हम सब के हाथों में टूटी तलवारों की मूठ ।[1]

यह पराजित पीढ़ी के निराशाग्रस्त स्तर है जो हर व्यक्ति में पाये जाते हैं ।

यथार्थ जीवन में व्यक्ति चेतना अधिक प्रबल है । अधिकतर आधुनिक कवियों ने इस तथ्य को स्वीकार किया है । "व्यक्तिनिष्ठता नई कविता में एक प्रवृत्ति के रूप में उभरी है ।"[2] अज्ञेय बार बार स्वतंत्र व्यक्ति की अवधारणा पर बल देकर रचनात्मकता की शक्ति संजोने का प्रयास करते है -

छोटी सी है, पर सागर
मेरी भी एक कहानी है ।[3]

वे व्यक्ति से समाज की ओर यात्रा करते हैं । नई कविता की दिशा में अतिशय वैयक्तिकता सामूहिकता में भी बदल जाती है । यह नयी प्रवृत्ति,

---

1. सात गीत वर्ष - धर्मवीर भारती - पृ. 20
2. नया काव्य नये मूल्य - ललित शुक्ल - पृ. 225
3. पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ - अज्ञेय - पृ. 17

नयी चेतना, सामूहिक कल्याण में परिणत होती है । अतः वैयक्तिक तथा सामूहिक भावचित्रों का योजना नये कवि के लिए अनिवार्य है ।

नयी कविता की इन प्रमुख विशेषताओं के कारण आधुनिक जीवन की संवेदना प्रखर रूप में अवतीर्ण हैं । इसी संवेदना के मूल में बुनियादी रूप से समसामयिक परिस्थितियों का प्रभाव भी है । इसलिए अनुभूति की सच्चाई और यथार्थवादी दृष्टि नई कविता की मूल प्रवृत्ति ही है । इन दोनों तत्वों के समावेश के कारण नवीन जीवन चेतना की पहचान और परख नई कविता में लक्षित है ।

नयी कविता में आधुनिकताबोध

नयी कविता नितांत आधुनिक है । आधुनिकताबोध इसकी प्रमुख प्रवृत्ति है । नयी कविता ने आधुनिकता को न केवल स्वीकारा बल्कि उसे व्यापक सन्दर्भों में समझा भी है । उसका चिंतन मनुष्य के मात्र वर्तमान के प्रति नहीं, भविष्य के प्रति भी है । आधुनिक कवि व्यक्तित्व की स्थापना पर बल देते हैं । कुँवर नारायण वैयक्तिकता के पक्षधर हैं । वे मनुष्य की अस्मिता और अकेलेपन को उसके भीतर के प्रकाश को महत्व देते हैं -

"मानव जिसे केवल पूजता है,
आँक लेगा वह पनप कर
विश्व का विस्तार अपनी अस्मिता में
सिर्फ उसकी बुद्धि को हर दासता से मुक्त रहने दो ।"[1]

---

1. चक्रव्यूह - कुँवर नारायण - पृ. 122

आधुनिक कवि भीड़ के कायल नहीं । वे यह समझते हैं कि जो व्यक्ति की चिंता है वह सामाजिक चिंता में परिणत होंगी । व्यक्ति के माध्यम से सामाजिक आशय का प्रचार अनिवार्य है । नरेश मेहता भी इसका अपवाद नहीं -

क्योंकि बाहर जाने के पूर्व
व्यक्ति भीतर की यात्रा संपन्न करता है
जितना टूट जाना होता है
उतना ही स्वत्व में पैठना होता है ।[1]

व्यक्तिगत अनुभूतियाँ सामूहिक अनुभूतियों में बदलती हैं कवि यह जानता है कि "अकेला" कवि अपूर्ण है । उसे भीतर की यात्रा संपन्न करके बाहर आना ही चाहिए । अतः व्यक्तिवादिता से सामूहिकता की ओर का यह प्रयाण नई कविता की उतनी उपलब्धि है । बदलती हुई पारिस्थिति के अनुसार जीवन को समझने की कोशिश इस आधुनिकता में निहित है । इसे आधुनिक कवि ने स्वीकार किया है ।

लेकिन स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है, आधुनिकता का क्या तात्पर्य है ? नयी कविता में आधुनिकताबोध किसे कहते हैं ? लक्ष्मीकांत वर्मा ने "नयी कविता के प्रतिमान" में आधुनिकता के संबंध में लिखा है - "आधुनिकता वास्तव में देशकाल के बोध का परिचायक है । अपनी प्रकृति में आधुनिकता मानव प्रगति द्वारा जोडे गये ; जीवन के नये अर्थ और नये परिवेश की स्वीकृति है ।"[2] आधुनिकता सिर्फ नयी कविता में नहीं हर प्रवृत्ति के मूल में है । जब यह नयी प्रवृत्ति जीवन के नये धरातलों की पहचान

---

१. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 54
२. नयी कविता के प्रतिमान - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 248

करके नये अर्थ और नये सन्दर्भ प्रदान करती है तब इसमें आधुनिकता का सन्निवेश हो जाता । इसके लिए ऐतिहासिक दृष्टि की ज़रूरत है । आधुनिकता इतिहासप्रसूत दृष्टि है ।

आधुनिकता में प्राचीनता की पूर्ण उपेक्षा नहीं है । मनुष्य को अपने वास्तविक युगबोध का परिचय देना है । अपने विगत सांस्कृतिक समृद्धि को आत्मसात् करते हुए दायित्वशील और सक्रिय बनता है । आधुनिकता में इस अर्थ में परंपरा की स्वीकृति भी है । परंपरा और आधुनिकता जैसे बुनियादी प्रश्न से नये कवि शंकाकुल नहीं है । यह निर्विवाद है कि आधुनिकता में अतीत, वर्तमान और भविष्य का सन्निवेश है ।

संत्रास की कविता

नयी कविता अपनी अभिव्यक्ति तथा उपलब्धि की दृष्टि से प्रयोगशील कविता से आगे की कविता है । मुक्तिबोध ने ठीक ही कहा है - "हमारे पाठक यह जान लें कि नई कविता, कविता है, प्रयोग नहीं । अगर आपको इसमें अधकचरापन दिखाई देता है, तो यह नई कविता की प्रारंभिक अवस्था का ही लक्षण है, जैसाकि वह छायावाद में भी था कि अन्य साहित्यिक प्रणालियों की प्रारंभिक अवस्था में हो सकता है ।"[1] वास्तव में नई कविता कविता ही है ; मनुष्य की कविता है । इसमें मनुष्य-जीवन की अनुभूति की व्यंजना गहन स्तर पर हुई है । मानव जीवन में व्याप्त पीडा, संत्रास और अन्य मानसिक यातनाओं की अभिव्यक्ति भी नये कवि का अभीष्ट है । "अँधेरे में" कविता के द्वारा मुक्तिबोध मध्यवर्गीय व्यक्ति की अस्मिता की खोज

---

1. नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - मुक्तिबोध - पृ. 34

को एक नाटकीय रूप देते हैं । अस्मिता की तलाश में कवि सक्रिय है -

खोजता हूँ पठार..... पहार..... समुन्दर
जहाँ मिल सके मुझे
मेरी वह खोयी हुई
परम अभिव्यक्ति अनिवार
आत्म-सम्भवा ।[1]

"अँधेरे में" कविता की ये पंक्तियाँ व्यक्ति की अस्मिता की खोज की ओर संकेत कर ली हैं । अस्तित्व की खोज आधुनिक व्यक्ति की सबसे बडी समस्या है । इसमें कोई आध्यात्मिकता की भावना नहीं है । देश की राजनीतिक परिस्थिति के वास्तविक परिवेश से परिचित व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की खोज में भटकता रहता है । अस्मिता की तलाश नई कविता की नयी चेतना ही है ।

नयी कविता में मानवीय यथार्थ की अभिव्यक्ति

नयी कविता के दौर में मानवीय संवेदना की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है । बौद्धिक तथा तार्किक विवेचनात्मक दृष्टिकोण के सहारे जब आधुनिक मनुष्य अपने समसामयिक परिस्थितियों से लडते हैं तो नई कविता उसकी अवधारणा एवं अवतारणा में उसी के अनुसार कथ्य भी स्वीकार करती है । "नई कविता की दृष्टि यथार्थपरक है । इसलिए यह ज़िन्दगी की वास्तविक स्थितियों का साक्षात्कार करते हुए उसके ब्यौरों को उकेरते हुए अपने दायित्व से बच निकलने की कोशिश नहीं करती ।"[2] यह कथन

---

१. चाँद का मुँह टेढा है - अँधेरे में - मुक्तिबोध - पृ. 317
२. कविता और संघर्ष चेतना - यश गुलाटी - पृ. 66

सत्य सिद्ध हुआ है । क्योंकि नई कविता मानवतावादी विचारधारा से ओतप्रोत है और मानव मूल्यों को प्रश्रय देती है । मानवीय संवेदना के संप्रेक्षण के लिए नयी कविता के कवि के समक्ष राष्ट्रीय ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय विषय और समस्याएँ भी हैं । इसलिए निसंदेह से कह सकते हैं कि नयी कविता का युग बडा-बडी भावनाओं तथा आदर्शों की परिकल्पना का युग है । जीवन के प्रत्येक पक्ष के, और उसके उतार-चढाव की अभिव्यंजना भी प्रस्तुत है -

यह विशद जीवन कि जो आकाश-सा
या कि निर्झर-सा चपल लघुतार है ।
क्या पूर्ण है ? क्या तृप्ति पाता शीघ्र है,
वह ग्रीष्म-सा है या मदिर-मधुमास -सा ।[1]

विशालकाय आकाश तथा चंचल निर्झर के समान परस्पर विरोधी वस्तुओं द्वारा की गयी मनुष्य जीवन का चित्र उदात्त ही है । जीवन के ऊँचे स्तर से नीचे उतारकर उसे यथार्थ धरातल पर ला खडा करना नई कविता की नवीनतम विशेषता ही है ।

आधुनिक जीवन की विसंगति और विडंबना का अंकन

आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विसंगतियाँ और विडम्बनाएँ हैं । लक्ष्मीकांत वर्मा ने कविता में विसंगति और विडंबना की ज़रूरत को रेखांकित किया है - "आज हम विसंगतियों (एबसर्डिटी) के बीच जी रहे है । यह विसंगति आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है - परिवार से लेकर समाज तथा संपूर्ण देश में ।"[2] तात्पर्य यह है कि आजकल जिस समाज में हम जीते हैं वहाँ

---

1. चाँद का मुँह टेढा है - मुक्तिबोध - पृ. 158
2. नयी कविता के प्रतिमान - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 306

इन विसंगतियों तथा विडंबनाओं को भोगे बिना हम अपना जीवन चक्र पूरा नहीं कर सकते । इस दुनिया में हम निर्वासित हो जाते हैं, हम तिरस्कृत हो जाते हैं और अजनबी भी बन जाते हैं । साथ ही साथ साधारण से साधारण मनुष्य की दुनिया जानी-पहचानी भी है । उसमें व्यक्ति, समुदाय और पूरे युग की आत्मा की पहचान है -

> तुम्हें रोटी नहीं दे सकता, न उसके साथ खाने के लिए गम
> न मैं मिटा सकता हूँ ईश्वर के विषय में तुम्हारा भ्रम ।[1]

इन अवस्थाओं के प्रति व्यक्ति का मन विद्रोह करके अपने अस्तित्व की सार्थकता के लिए संघर्षरत है ।

मनुष्य की चिन्ता की कविता

इन्द्रनाथ मदान के अनुसार "नयी कविता का उद्देश्य जीवन की नवीन परिस्थिति, उसके नवीन स्वरों एवं धरातलों को व्यक्ति सत्य की दृष्टि से अभिव्यक्ति देता है ।"[2] उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि अपने पूर्ववर्ती वैचारिकता से भिन्न एक प्रकार की नयी संवेदनात्मक स्थिति नई कविता में मिलती है । यह नयापन नये मूल्यों, नये भावबोध और नये शब्द-क्रम के अन्वेषक है । "नयी" शब्द नये युग का नहीं, नये परिप्रेक्ष्य का द्योतक है । नया परिप्रेक्ष्य मनुष्य से संबंधित है । अतः नई कविता मनुष्य की चिंता की कविता है । मनुष्य को केन्द्र में रखकर तमाम कविताएँ लिखी गई हैं । मनुष्य आज जिन रिक्त और विषम परिस्थितियों का सामना करते हैं या भोग रहे हैं

---

1. आत्महत्या के विरुद्ध - रघुवीर सहाय - पृ.
2. आधुनिक कविता का मूल्यांकन - इन्द्रनाथ मदान - पृ. 87

उसको नई कविता ने अपनी कथा बनायी है । अंतर्मन की यहाँ चेतना नयी कविता में प्रतिफलित है ।

नई कविता के दौर में कथाकाव्य

नई कविता अतीत की उपेक्षा नहीं करती, वरन् वह अतीत में वर्तमान का प्रक्षेपण कर भविष्य की ओर उन्मुख है । इसी यात्रा के बीच में नये कवि अक्सर पौराणिक कथाओं का आख्यान भी आधुनिक युगीन संदर्भ के अनुरूप प्रस्तुत करते हैं । ये पुराण काव्य सच्चे अर्थ में पौराणिक नहीं, परिवर्तित युग-सापेक्ष आधुनिक काव्य ही हैं । किसी भी कथा पर रचित काव्य को, चाहे वह पुराण, इतिहास या उपनिषद् की हो, कथाकाव्य कहना अधिक संगत प्रतीत होता है । जब ये कथाकाव्य पुराण कथा की आधार-शिला पर अपने को आधुनिक जीवन-संदर्भ से जोड़ते हैं तो यह आधुनिक कविता की रचनाशीलता का परिचय भी देते हैं ।

नई कविता का युग पुराण काव्यों का युग नहीं हैं, लेकिन पुराणों का पुनराविष्कार और पुनर्व्याख्या तो अवश्य हुई है । मूलकथा में समग्र परिवर्तन उपस्थित करके नई संवेदना से युक्त कर दिया है । इसमें मनुष्य का प्रतिपादन है, उसकी जीवनानुभूति हैं, उसकी मानसिकता का प्रतिफलन है । ऐसा काव्य पौराणिक नहीं है । वस्तुतः नई कविता के दौर में इस तरह के अनेक आधुनिक कथाकाव्यों की सर्जना हुई हैं, जिनमें आधुनिक मनुष्य की कथा संप्रेषित है । इस तरह परंपरा और आधुनिकता का संयोग अधिकांश नये कवि चाहते भी हैं ।

अतीत सिर्फ परंपरा नहीं है, उसमें नवीनता भी है । वह एक संस्कार भी है जिसकी स्वीकृति नये सन्दर्भ में नये प्रसंग के रूप में लागू हो सकता है । तब वह एक नयी संस्कृति बन जाती है । यह नयी संस्कृति हमारे वर्तमान के लिए स्वीकार्य भी है । यहाँ कथाकाव्यों के पुनर्लेखन का समस्या उठती हैं । यह पुनर्लेखन है और पुनराविष्कार है । इस तरह नई कविता के ये कथाकाव्य आधुनिक जीवन की कथा बनकर निकली है । यह यात्रा सार्थक है । यह इसलिए कि यात्रा आगे की ओर है । इन कथाकाव्य सदैव हमारे अतीत को झकझोरता नहीं, बल्कि हमारे वर्तमान को झकझोरता है ।

विशिष्ट पात्रों से मनुष्य की चिन्ता का अन्वेषण

पहले सूचित किया गया था कि नई कविता मनुष्य की चिन्ता की कविता है । जब नई कविता के प्रसंग में कथाकाव्यों का पुनर्लेखन आधुनिक दृष्टि के अनुरूप शुरू हुआ तब उन काव्यों में मनुष्य की चिन्ता का अन्वेषण भी दिखाई पड़ने लगा । यह नयी मानसिकता की तलाश है । इन आधुनिक कथाकाव्यों की तमाम कथाएँ रामायण और महाभारत की हैं जो आज तक बेजोड हैं । कई बार कवि पुराण तथा इतिहास के चरित्रों और घटनाओं के माध्यम से आज के जीवन के विघटित मूल्यों, विस्थापित व्यक्तित्वों पर गहरा प्रहार करते हैं । इसकी सांदर्भिकता यही है ।

आधुनिक काव्य में पुराण कथाओं के विशिष्ट पात्रों की अवतारणा की प्रवृत्ति है । यह प्रवृत्ति जीवन्त साहित्य की सजीवता का परिचायक है । 1950 के बाद परिवर्तन की जो नई दिशाएँ कविता के क्षेत्र में व्याप्त हैं उन्हीं के कारण इन पौराणिक पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी व्यक्तित्व का नूतन पक्ष उपलब्ध हैं । राम, कृष्ण, पाँडव, अभिमन्यु,

भीष्म, दुर्योधन, कर्ण आदि पुरुष पात्र और कुन्ती, द्रौपदी, सीता, गाँधारी, राधा आदि स्त्री पात्र ऐसे पात्र हैं जिनकी संवेदनात्मक अभिव्यक्ति आधुनिक मनुष्य के अनुकूल है । उदाहरण स्वरूप कृष्ण को लें तो स्पष्ट होगा कि जिस कृष्ण को प्रजा ने ईश्वरीय चेतना से अभिभूत किया था, जिस कृष्ण को व्यास ने दिव्य रूप में चित्रित किया था, वही कृष्ण इन काव्यों में आधुनिक बौद्धिक विवेक के प्रकाश में चित्रित किया गया है । प्राचीन अलौकिक रूपों को नवीन विवेक के रंग से परिष्कृत किया गया है । महाभारत युद्ध से जो कृष्ण हमारे सामने है वह ईश्वर नहीं, मानव है । उसमें शक्ति है, आत्मविश्वास है, धर्म-अधर्म के प्रति सोचने की क्षमता है । वह एक सफल राजनीतिज्ञ भी है ।

विशिष्ट पात्रों द्वारा आधुनिक व्यक्ति की चिन्ताओं तथा मानसिक संघर्ष का अंकन नई कविता के संदर्भ में लिखित इन आधुनिक कथाकाव्यों का प्रमुख लक्ष्य है । मनुष्य की चिन्ता का स्वर इन कथाकाव्यों में इसलिए तीक्ष्ण है कि वे अतीतगाहा नहीं है । कथाकाव्य भी आधुनिक रचना है । कथा-चिन्ता उसके कलेवर की विशेषता है । कथाकाव्यों के कवि वास्तव में जीवन की जटिलताओं को शब्दबद्ध कर रहे हैं । इसलिए नई कविता के अधिकतर कवियों ने ऐसे कथाकाव्य प्रस्तुत किये हैं ।

वास्तव में आधुनिक युग के कवि अपने परिवेश के प्रति अधिक सजग एवं सक्रिय है । सामाजिक तथा राजनैतिक समस्याओं की ओर भी कवि की दृष्टि अवश्य पड़ती है । ध्वस्त मानव जीवन की कथा हर युग की देन है । आधुनिक युग में महाभारत की कथा की प्रामाणिकता

इसलिए है कि वह जीवन्त साहित्य सृष्टि है । दुर्गा भागवत का कथन ठीक ही है - मानवता के पैरों तले की धरती खिसकती जा रही है और संपन्नता के क्षणों में विनाश के बादल सारी संस्कृति को डुबो देने के लिए उठ रहे हैं - इस स्थिति की तुलना पुराण कथाओं के मात्र एक प्रसंग से ही की जा सकती है । वह प्रसंग है भारतीय युद्ध का ।[1] आजकल के टूटे रिश्तों, मूल्यों एवं विसंगतियों के चित्रण करने में महाभारत युद्ध के अलावा कौन-सा दृश्य उपयुक्त होगा ? जीवन की तमाम विभीषिकाओं के चित्र इसके विभिन्न परिदृश्यों में सुलभ हैं । अतः कथाकाव्यों द्वारा हम अपने गरिमामय अतीत को नहीं बल्कि वर्तमान को पुनर्मूल्यांकित देखते हैं ।

---

1. व्यासपर्व - दुर्गा भागवत - पृ. 2

अध्याय दो

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में पुराण का स्वरूप और विधान

अध्याय - दो

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में पुराण का स्वरूप और विधान

पुराण और साहित्य

पुराण का प्राचीनतम अर्थ है प्राचीन आख्यान । प्राचीनता इसका गुण है, किन्तु वे नित्य नवीन भी हैं । पुराणों का महत्व निरूपित करते हुए अनेक विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि पुराणों ने न केवल संस्कृत साहित्य को प्रभावित किया है, अपितु संपूर्ण भारतीय साहित्य को भी प्रभावित किया है । कल्याणमल लोढा ने "भारतीय साहित्य में राधा" शीर्षक ग्रंथ में अपना मत यों व्यक्त किया है । प्रसंगवश यह विचार यहाँ उद्धरणीय है - "भारतीय साहित्य के प्राचीन मध्य और वर्तमान युग में हमें राधा के विविध-प्रसंगों के जो रूप प्राप्त होते हैं, वे इसके प्रमाण हैं । राधा का जीवन और व्यक्तित्व ऐतिहासिक हो या न हो, लोकमन और जीवन में वह धर्म, दर्शन, साहित्य की अक्षय निधि बन गया - उसकी अमूल्य मंजूषा ।"[1] अतः आख्यान की यह सुदृढ़ परंपरा अनादिकाल से लेकर अब तक भारतीय साहित्य के क्षेत्र में निरंतर अग्रसर हैं । इन काव्यों में स्वीकृत विषयवस्तु के केन्द्र में मुख्यतः तीन ग्रंथ उल्लेखनीय हैं - भागवतपुराण, वाल्मीकी रामायण और महाभारत । कृष्णचरित संबंधी अधिकतर काव्य भागवत-पुराण पर आधारित है । रामायण और महाभारत के समान ही श्रीमद्भागवत की श्रेष्ठता का उल्लेख आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने किया है - "श्रीमद्भागवत समस्त पुराणों में अधिक प्रसिद्ध और सारे भारत में

---

1. भारतीय साहित्य में राधा - कल्याणमल लोढा - पृ. 6

समादृत है । इसमें जो कवित्व है वह बहुत ही ऊँचे दर्जे का है । रामायण और महाभारत की भाँति इसने भी भारतीय साहित्य को बहुत दूर तक प्रभावित किया है ।"[1] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायण और महाभारत के समान भागवत का प्रभाव भी भारतीय साहित्य पर प्रचुर मात्रा में पडा है । भागवत पुराण का आख्यान भी इस तरह के पौराणिक काव्यों की सर्जना के मूल में प्रेरणादायक बना है ।

भारत एक धर्म प्रधान देश होने के कारण भारतीय साहित्य के विकास में धार्मिकता का योगदान रहा है । इसलिए परवर्ती काल में पुराण धार्मिक साहित्य के रूप में भी स्वीकृत हैं । हमें यह स्वीकार करना पडता है कि सामान्य अर्थ में पुराण धर्मकथाएँ हैं । उनमें भक्ति-संकल्प जुडा हुआ है । पुराणों के इसी अवतारवाद की संकल्पना ने भक्ति के विकास में अपनी पृष्ठभूमि तैयार की है । "अवतारों से ही लीला का विस्तार होता है, जिसका श्रवण और मनन भक्ति का प्रधान साधन है । अवतारों की विविध लीलाओं के फलस्वरूप ही विविध नामों का उदय होता है जिनका कीर्तन और जपशक्ति के लिए आवश्यक साधन है । यही कारण है कि मध्ययुग के प्रायः सभी संप्रदायों ने किसी न किसी रूप में अवतारों की कल्पना की है ।"[2] इस कथन से यह व्यक्त होता है कि पुराणों में अनेक प्रकार के "अवतार संकल्प" सम्मिलित हैं । प्रमुख पुराणों में इन ईश्वरीय चेतना से युक्त अवतारों की विस्तृत कथाएँ मिलती हैं । उन कथाओं को मानवीय भावों और आकांक्षाओं से संपृक्त करके प्रस्तुत करने का कार्य भी किया गया है । अवतारवाद संबंधी

---

1. हिन्दी साहित्य की भूमिका - आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - पृ. 60
2. हिन्दी साहित्य - डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - पृ. 92

इन कल्पनाओं में भक्तिकाव्य के अन्तर्गत राम-भक्ति धारा की अपेक्षा कृष्ण-भक्ति साहित्य का महत्व हैं । यद्यपि ये पुराण-कथा है फिर भी मानव जीवन के चित्रपट का प्रतिपादन करके आदर्शात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करनेवाला समृद्ध साहित्य भी है । श्री राजगोपालाचारी ने महाभारत को मानव जीवन की कथा बतानेवाला साहित्य कहा है - "महाभारत केवल एक महाकाव्य नहीं, महान स्त्री-पुरुषों की कहानी बतानेवाला एक रोमान्स है जिनमें कुछ दैविकता भी है । यह स्वयं एक पूरा साहित्य हैं जिसमें जीवन के नियम है, सामाजिक और नैतिक तत्वचिन्तन है तथा मानवीय समस्याओं पर ऊहात्मक चिन्तन है जिनके कोई प्रतियोगी नहीं ।"[1] स्पष्ट है कि पुराण का यह भी एक नया आयाम है ।

भक्तिदर्शन पर आधारित काव्यों के साथ साथ पौराणिक कथापात्रों को लेकर भी अनेक रचनाएँ मिलती हैं । इन अवतारों में अधिक प्रचलन शिव-पार्वती को प्राप्त है । तुलसीदास ने मानस के पश्चात् "पार्वतीमंगल" लिखकर भक्ति क्षेत्र में शिव और पार्वती की प्रतिष्ठा की है । लखपति ने "शिवविवाह" लिखकर शिवशक्ति की भक्तिभावना का प्रचार किया । कभी-कभी ऐसा होता था कि भक्तों के प्रति भी काव्य रचना भक्ति साधना का एक भाग है । "प्रह्लाद चरित्र, ध्रुवचरित्र, हनुमन्नाटक आदि भी इनमें प्रमुख हैं । अतः कहा जा सकता है कि पुराणों के पीछे भक्तिभावना का

---

1. The Mahabharata is not a mere epic, it is a romance, telling the tale or heroic men and women, and of some who were devine, it is a whole literature in itself containing a code of life, a philosophy of social and ethical relations and speculative thought on human problems that is hard to rival.

(Ramayana - C. Rajagopalachari - page - 6)

सशक्त प्रभाव रहा है । क्योंकि साधारण मनुष्य के हृदय में राम, कृष्ण, शिव जैसे देवताओं की कथा समा गयी है । डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त का कथन सही है - जनता की धार्मिक चित्तवृत्ति को जागृत करने के लिए उन्होंने अवतारों महापुरुषों एवं भक्तों के आदर्श चरित का गान श्रद्धापूर्ण शब्दों में किया है जिससे पाठकों के हृदय में सच्ची भक्ति का उद्‌बोधन होता है ।"[1] यह एक प्रकार से पुराण का साहित्य में रूपान्तरण है । भक्तिकाव्यों की स्थिति यही है । पर इतना ज़रूर है कि ये काव्य मूल पौराणिक कथा या कथास्रोतों से भिन्न अपने नये रूपों के साथ विद्यमान है । इसे पुराणों का साहित्यिक संस्करण भी कहा जा सकता है ।

आधुनिक युग में इन काव्यों के भक्तितत्व को अस्वीकार किया गया और उसे मानवीय तथा स्पृहणीय समझा गया । मालतीसिंह की यह तुलना ठीक है -"सूर ने कृष्ण का वर्णन लीला अवतारी दिव्य पुरुष के रूप में किया था । उनका गोपियों के प्रति तथा गोपियों का उनके प्रति का प्रेम सामान्य कोटि का न होकर "महाभाव" था जबकि इस युग के कवियों ने उन्हें इस परंपरा से विच्छिन्न करके सामान्य नायक-नायिका तथा उनके प्रेम को सामान्य लौकिक स्तर के प्रेम के रूप में स्वीकार किया ।"[2] सूरदास की बाललीला तथा कृष्ण-गोपियों के प्रेम चित्रण यदि दिव्य रूप से आप्लावित है तो आधुनिक कवि की दृष्टि इन सब में निहित मानवीय संवेदनाओं पर टिकी मानवीयता पर है । मानव जीवन के विभिन्न परिदृश्य उनके लिए प्रमुख है । संक्षेप में कह सकते हैं कि पौराणिक साहित्य की एक अजस्र धारा

---

1. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त - पृ. 237
2. आधुनिक हिन्दी काव्य और पुराण कथा - मालती सिंह - पृ. 21

देश काल की सभी सीमाओं को लाँघती हुई आधुनिक काल की विस्तृत जलराशि में नई धारा का आभास दे रही है ।

पुराण की अजस्र धारा का नवीकरण

विश्व के प्रमुख काव्यों की परंपरा के संबंध में विचार करते समय यह भली-भाँति ज्ञात होता है कि कथाकाव्यों का मूल स्रोत पुराण या इतिहास ही है । इसका कारण यह है कि पुराण या इतिहास हमारी धरोहर है । इस संदर्भ में यह प्रश्न उठता है कि आधुनिक कथाकाव्यों के सृजन के मूल में पुनः इन पौराणिक कथाओं को क्यों आधार बनाया गया है ? जिन महान चरित्रों की कथा का आख्यान पुराण या इतिहास में सविस्तार मिलता है, उन्हीं कथाओं को आधुनिक काल के कवियों ने अपना विषय बनाया है । लेकिन आधुनिक कवि का दृष्टिकोण पौराणिक दर्शन को या इतिहास दर्शन को यथावत् प्रस्तुत करना नहीं है । वह इन गृहीत कथाओं को या तथ्यों को आधुनिक दृष्टि से अनुभव करता है और उसे आधुनिक जीवन के किन्हीं परिदृश्यों के संदर्भ में प्रक्षेपित करना चाहता है । साहित्य में पुराण कथाओं की स्वीकृति के संबंध में "पुराण कथा कोश" के प्राक्कथन का यह कथन विचारणीय है - "पुराण भारतीय समाज की सांस्कृतिक धरोहर है, अतः अनादिकाल से लेकर अब तक पुराण कथाओं का भारतीय समाज में प्रचलन रहा है तथा साहित्य में इनका निरन्तर प्रयोग होता रहा है । भारतीय साहित्य में पुराण कथाओं के प्रयोग के स्वरूप में युगीन परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन तो अवश्य हुआ परन्तु इनकी साहित्य में व्याप्ति सर्वथा विद्यमान रही है ।"[1] परिवर्तित परिवेश के अनुसार पुराण कथाओं में

---

1. पुराण कथा-कोश - रामशरण गौड - पृ. 6

निहित जीवन-मूल्यों का पुनर्विश्लेषण और पुनर्मूल्यांकन होता रहता है । यह एक प्रकार से हमारी परंपरा के प्रति आस्था और परंपरा से छूटने की इच्छा है । आस्था और अतृप्ति जीवन के लिए आवश्यक है । यह एक प्रकार का द्वन्द्व है । इस द्वन्द्व में स्वीकृति और अस्वीकृति है ; अतीत और वर्तमान भी हैं । साथ ही भविष्य की रचना भी हैं । आधुनिक युग में इस प्रवृत्ति को अधिक बल मिला ।

हिन्दी के आधुनिक कवियों ने भी पौराणिक साहित्य से प्रेरणा पाकर अनेक कथाकाव्यों की रचना की हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ऐसे अनेक कवि हुए जो सांस्कृतिक विचारधारा से प्रभावित एवं प्रोत्साहित होकर मानव जीवन के उत्कर्ष के लक्ष्य में काव्यरचना में रत रहे हैं । "पृथ्वीराज रासो" से लेकर "कामायनी", "कुरुक्षेत्र" तक के कथाकाव्यों की यह श्रृंखला कभी छिन्न नहीं हो पाई हैं । "प्रियप्रवास", "वैदेही वनवास", "साकेत", "यशोधरा", " कामायनी", "कुरुक्षेत्र", "जयद्रथवध" आदि आधुनिक युग में स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व प्रणीत काव्य हैं । अतः इनका विषय अधिकतर राजनीतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से संबंधित होकर मूलकथा के अनुरूप ही चित्रित है ।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी ऐसे अनेक कथाकाव्यों का सृजन हुआ है जिनमें कवियों की नयी दृष्टि आकलित है । "रश्मिरथी", "संशय की एक रात", "अन्धायुग", "कनुप्रिया", "एकलव्य", "उर्वशी", "प्रवादपर्व", "सूर्यपुत्र", "आत्मजयी", "शम्बूक", "एक कंठ विष पायी", "अग्निलीक", "एक पुरुष और" आदि प्रमुख कथाकाव्यों की सर्जना यह साबित करती है कि पुराण कथाओं की परंपरा किसी न किसी रूप में अबाधगति से चलती आ रही है । पर इन काव्यों ने यह भी सिद्ध किया कि इन अतीत

कथाओं में आत्मसंघर्ष, सामाजिक तनाव, राजनीतिक विडम्बना और नैतिक सवालों के लिए पर्याप्त प्रक्षेपण प्राप्त है । वह उनके लिए अतीत नहीं रहा, वह अपने वर्तमान के लिए एक नया सन्दर्भ सिद्ध हुआ । इसी नवीनता ने ही उन्हें पौराणिक कथाओं की ओर उन्मुख किया । इस तरह आधुनिक जन-जीवन से संपृक्त करने में ये नये काव्य सहायक रहे हैं ।

पौराणिक कथाओं की अपनी एक विशिष्टता भी है । उनमें जीवनोन्मुख प्रसंग पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं । पौराणिक कथा-परिवेश से वलयित होने के बावजूद ये प्रसंग मानवीय जीवन से संपृक्त हैं । आधुनिक कविता ने इसी अटूटता का ग्रहण किया हैं । पुराण कथाओं के मानवीय पक्षों को, जहाँ कथागति और उसका विन्यास साधारण है आधुनिक कवियों ने स्वीकार किया है । उन्होंने उन प्रसंगों को या तो विस्तृत किया या ग्रहण किया है और उसे पूर्ण रूपेण मानवीय बनाया । आधुनिक संवेदना संश्लिष्ट अनुभूति की अभिव्यक्ति की परिणति है । अनुभूति तभी संश्लिष्ट हो जाती है जब उसका अनुभव संसार भी संश्लिष्ट है । आधुनिक कथाकाव्यों में अनुभवों की संश्लिष्टता पर भी बल दिया गया है । कथाभूमि कथाश्रित अवश्य है । परन्तु उसमें जीवन की वास्तविक भूमि की खोज रहती है जो कि अधिक जटिल और संश्लिष्ट है ।

व्यक्ति-पात्रों का महत्व

नई सामाजिक चेतना के मूल में व्यक्ति चेतना की प्रमुखता है । व्यक्ति अथवा "लघुमानव" की प्रतिष्ठा आधुनिक युग की प्रमुख दृष्टि भी है । नई कविता में एक ओर सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति का प्रतिपादन हुआ है तो दूसरी ओर मानव व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा भी सचेष्ट है ।

इसे व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा कहें तो गलत नहीं होगा । लक्ष्मीकांत वर्मा ने कहा है - "नयी कविता में मानव व्यक्तित्व को उभारने और उसमें आत्मविश्वास और आस्था के साथ सामाजिक दायित्व की भावना भरने के अंकुर विद्यमान है । इन्हें कोई भी प्रचार कुंठित नहीं कर सकता, कोई भी विवाद इन उगते अंकुरों के साहस को रोक नहीं सकता । क्योंकि उनका पक्ष यथार्थ का है, उनकी दृष्टि में कौतूहल है और उनकी साँसों में संघर्ष की वह धड़कन है जो प्रत्येक क्षण के दायित्व को निभाने की वाणी मुखरित करती है ।"[1]

यथार्थ के धरातल पर खड़े होकर ही मनुष्य जीवन के कटु अनुभवों का सामना करता है । यह यथार्थ इतना सामान्य नहीं है कि जिसे आसानी से समझा जा सकें । इस यथार्थ की असंख्य अन्तर्धाराएँ हैं संभवत: इसके लिए नये कवियों ने कुछ पुराण के प्रसंगों को लिया, जिनमें यथार्थ के कई आयामों को व्यक्त करने की पूरी गुँजाइश थी । इस कथा-प्रसंग का एक कथा-संदर्भ है, इसका एक दार्शनिक संदर्भ हैं, इसका एक सामाजिक संदर्भ है, इसका एक आधुनिक संदर्भ भी है । इस प्रकार बहु आयामी सन्दर्भों से युक्त पुराण-प्रसंग नई कविता में नई चेतना का साहित्यिक माध्यम बन गया है । यह कवियों की नई खोज है । यथार्थ को सही मायने में प्रस्तुत करने का नया मार्ग भी है ।

व्यक्ति किसी न किसी परिवेश में अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा चाहता है । व्यक्तित्व की स्थापना के बिना व्यक्ति जीवन

---

1. नयी कविता के प्रतिमान - लक्ष्मीकांत वर्मा - पृ. 292

सार्थक नहीं होता । इसलिए आधुनिक युग की इस नयी चेतना को कवि ने आत्मसात् कर लिया है । अतः आधुनिक कवि ने अपनी रचनाओं में व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा को लक्ष्य करके कुछ प्रमुख पुराण पात्रों को आधुनिक व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया हैं । ऐसे कथाकाव्यों में एक ही व्यक्ति को अधिक महत्व देते हैं । प्रमुखरूप से एक पात्र को केन्द्र में प्रतिष्ठित करके उसके मानसिक व्यापारों तथा उसकी धारणाओं के सहारे कथा का प्रस्तुतीकरण आधुनिक कवि का लक्ष्य है । इस दृष्टि से देखें तो मालूम हो जाएगा कि प्रत्येक कथाकाव्य के केन्द्र में कोई न कोई व्यक्ति प्रमुख रहता है । उन कथाकाव्यों में प्रमुख हैं - "सूर्यपुत्र", "कनुप्रिया", द्रौपदी", "अग्निलीक" आदि । उपेक्षितों को प्रमुख स्थान देनेवाले नवजागरण काल के कवियों की दृष्टि आधुनिक कवि से भिन्न है । वह जब कभी एक पात्र को प्रमुखता देता है तो वह आधुनिक सन्दर्भ में परिकाल्पत और आत्मसात्वीकृत हैं । भारती का "कनुप्रिया" को लें । चिरन्तन प्रेम-भाव के आधार पर राधा परिकल्पित है । पर यही चिरन्तन भाव - प्रेम का - प्रेयसी का - कनुप्रिया में तीव्र होता है और धीरे धीरे व्यक्ति चेतना के अनुकूल विकसित होता है । राधा अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व चाहती है । इसलिए वह मात्र प्रेमिका नहीं बनना चाहती, वह सृजन - संगिनी भी बनना चाहती है । यहाँ प्रकृति (राधा) और पुरुष (कृष्ण) का मिलन है । वह कनु के समस्त सृष्टि-संकल्पों, इच्छाओं और अस्तित्व का अर्थ बनना चाहती है -

ओ अरे स्रष्टा
तुम्हारे संपूर्ण अस्तित्व का अर्थ है
मात्र तुम्हारी सृष्टि
तुम्हारी संपूर्ण सृष्टि का अर्थ है
मात्र तुम्हारी इच्छा

और तुम्हारी संपूर्ण इच्छा का अर्थ है
केवल मैं ! केवल मैं ! ! केवल मैं !!![1]

"सूर्यपुत्र" का अध्ययन करने पर ऐसा लगता है कि कर्ण वास्तव में "सूर्यपुत्र" ही बनना चाहता है। जाने-अनजाने ही हमेशा कर्ण सूर्य की आराधना में तल्लीन होता है। सूर्य से बीच-बीच में अपने मन की व्यथा और आत्मपीडा के संबंध में अधिकार के साथ कहता है जैसे पुत्र अपने पिता से। कर्ण को काल्पानिक भावभूमि से उतारकर यथार्थ की ओर लाया गया है। यही कारण है कि काव्य के आरंभ में सूर्य और कुन्ती का मिलन एक साधारण स्त्री-पुरुष के मिलन जैसा चित्रित हुआ है। कवि जान बूझकर ही "सूर्यपुत्र" की संज्ञा से कर्ण का परिचय देना चाहता है। इन्द्र के शब्दों द्वारा कवि अपने इस लक्ष्य की पूर्ति में सफल हुए है -

सूर्य का स्वभाव ठीक इसमें उतर आया हैं
जो देकर भुलावा प्रकाश का सारे विश्व को
जला रहे है ब्रह्मांड युगों से ।
कल देखूँगा उनके पुत्र का मिथ्या अहं
और छद्म दानी रूप ।[2]

इसके अलावा सूर्य के मन में पुत्र के प्रति वात्सल्य, इन्द्र को कवच-कुंडल देने पर पुत्र की प्राण-रक्षा की आकांक्षा और संशय आदि सब कर्ण के व्यक्तित्त्व को और प्रखरतर बनाते हैं। यही कारण हैं सूर्य ने - "माँग लेना वज्र या अमोघ शक्ति अपनी प्राण रक्षा को" कहा है। यहाँ स्पष्ट रूप से विदित है कि कर्ण

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 44
2. सूर्यपुत्र - जगदीश चतुर्वेदी - पृ. 107

राधेय नहीं, सूतपुत्र भी नहीं, वह "सूर्यपुत्र" ही है । जगदीश चतुर्वेदी के इस मिथक काव्य में कर्ण को इतनी प्रमुखता मिली है कि कर्ण और सूर्यपुत्र जैसे शब्दों के ताने-बाने में वस्तुतः कविता को इच्छित दृष्टि स्वतः मिलती है ।

स्त्री कथापात्रों में "कनुप्रिया" की राधा के अलावा "द्रौपदी" की द्रौपदी और "अग्निलीक" की सीता भी दृढ़ व्यक्तित्व के अधिकारी बनकर आयी है । द्रौपदी पाँचों पाँडवों की पत्नी बनकर उनके सुख दुःख में समभागी रही । लेकिन नरेन्द्र शर्मा ने उसे पाँच तत्वों (पाँडव) की जीवनीशक्ति के रूप में स्वीकार किया है । द्रौपदी-स्वयंवर से लेकर वह पाँडवों की शक्ति रही ; उनकी प्रेरणा रही और स्वत्वों के अधिकार की रक्षा के लिए उत्प्रेरित कर अपने लक्ष्य की पूर्ति पर पहुँच गयी -

द्रौपदी जीवनी शक्ति,
सौंप दी गयी पाँच तत्वों को
या कहा नियति ने पार्थ !
कहो अब प्राप्त लुप्त सत्वों को ।[1]

"अग्निलीक" की सीता भी आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें मानवीय आयामों के विविध पक्ष मौजूद हैं । वह मानवीय अनुभूति के प्रति सचेत रहकर अपने व्यक्तित्व की सुरक्षा करना चाहती है । इसलिए परित्यक्ता सीता अंत में लव-कुश की अभ्यर्थना और वाल्मीकी की अपेक्षा करने पर भी भूमिजा बनकर चली जाती है -

---

1. द्रौपदी - नरेन्द्र शर्मा - पृ. 21

लोग कहते हैं कि मैं धरती से जन्मी थी,
तो अब वही धरती मुझे अपनी गोद में समाये
वही मेरी अंतिम शरण हो ।[1]

वस्तुतः आधुनिक कथाकाव्यों के प्रमुख पात्र आधुनिक व्यक्ति ही है । उन पात्रों को आधुनिक पुरुष और नारी के रूप में प्रतिष्ठित किया है । इस तरह प्रमुख पात्रों को महत्व देते हुए उनके व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा में आधुनिक कवि जागरूक है । व्यक्ति को केन्द्र में रखकर जिन कथाकाव्यों की सर्जना की गयी हैं उनमें पात्र की महत्ता है । पात्र के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा है ।

अप्रमुख कथा प्रसंगों का विस्तार और उसकी नई दिशा

पुराण कथा में मुख्य कथा के साथ कई अवांतर कथाएँ भी मिलती हैं । यह प्राचीन कथा-विन्यास का एक स्वीकृत रूप है । आधुनिक कथाकाव्यकारों ने कथा को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया हैं । अतः कुछ कथाकाव्यों में मूलकथा का थोडा-सा अंश या किसी अवांतर कथा की स्वीकृति है । प्रायः मुख्य कथा की किसी अप्रमुख शाखा के आधार पर कथा-विन्यास होता है । उदाहरण के लिए रामायण के गौण पात्र "शबरी" को नरेश मेहता ने काव्य की नायिका पद देकर एक सार्वजनिक समस्या को प्रस्तुत किया है । "त्रेतायुग की वर्णव्यवस्था से मुक्ति पाने के लिए शबरी जो पावन कर्म और तपस्या करती है वही समाज के अछुत हरिजन की भी समस्या है

---

1. अग्निलीक - भरत भूषण अग्रवाल - पृ. 54
2. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि - मुरारीलाल शर्मा सुरस - पृ. 122

महाभारत की कथा के अन्तर्गत एकलव्य की कथा को प्रमुख स्थान देते हुए भी मुख्य कथा के साथ उसका सीधा संबंध नहीं है । विशालकाय कथा के बीच एकलव्य की कथा सामान्य है । लेकिन मुख्य कथा के साथ या एक कथा को पुनः प्रस्तुत करते समय वह काव्य इतना जीवन्त हो जाता है कि महाभारत की कथा के भीतर निहित वर्णाश्रम प्रथा का एक नया पक्ष हमें मिलने लगता है । आधुनिक कवि के लिए यही मुख्य है । उसी प्रकार शम्बूक की कथा को लें । उसमें भी मानवीयता का भाव प्रखर हैं जबकि रामायण कथा के सन्दर्भ में शम्बूक की कथा एकदम अप्रमुख है । जिस घोर और तीक्ष्ण समस्या के रूप में शम्बूक को देखा गया है, उसमें राम का पावनत्व भी प्रश्नाधीन होता है । "अंधायुग" में अश्वत्थामा को जो प्रमुखता मिली है, वह भी इसी प्रवृत्ति का परिचायक है ।

आधुनिक कथाकाव्यों के सामने प्रमुख और अप्रमुख जैसा कोई पार्थक्य नहीं है । आधुनिक कथाकाव्यों के प्रणेता आधुनिक कवि ही है । इनकी दृष्टि आधुनिक जीवन से उद्भूत है । पुराण के प्रति उनका आत्मसमर्पण आनुषंगिक तत्व मात्र है । वस्तुतः कवि का इच्छित आदर्श क्या है, यही मुख्य है । एक बृहद् काव्य के अन्दर से आधुनिक कवि एक अप्रमुख प्रसंग लेता है तो स्पष्ट है कि वह इसमें अपनी मानवीय दृष्टि का आरोप कर रहा है । साथ ही अमानवीकरण का विरोध भी कर रहा है ।

कथा-विन्यास की इस नई रीति के अन्तर्गत ये अप्रमुख पात्र भी व्यक्ति बनने लगते हैं । फिर उनका अलग व्यक्तित्व पूरे काव्य में छा जाने लगता है । शबरी, शम्बूक, अश्वत्थामा जैसे पात्रों का वैशिष्ट्य सामने आता है । इनमें शबरी और शम्बूक दोनों अपनी जन्मजात

निम्नवर्गीयता को कर्म-दृष्टि के द्वारा वैचारिक ऊर्ध्वता में परिणत करते है । सामाजिक मूढता तथा परिवेशगत विसंगतियों से अपने आपको बचाने के लिए स्वतंत्र व्यक्तित्व चिन्तन पर ध्यान देना पडता है । यह ठीक है कि इसके लिए व्यक्ति को परिवेश और सत्ता से संघर्ष भी करना पडता है । यह संघर्ष भी कथाकाव्यकार का इच्छित परिदृश्य है । कथाकाव्य का यह संघर्ष मानवीय संघर्ष का परिचायक है । नरेश मेहता ने शबरी की करुणापूर्ण कथा को नये आलोक में प्रस्तुत करके उसे आधुनिक सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है -

त्रेता युग की व्यथामयी
यह कथा दीन नारी की,
राम कथा से जुडकर
पावन हुई, उसी शबरी की ।[1]

शबरी के समान शम्बूक भी रामायण कथा में एक गौण पात्र है । शम्बूक-वध के आधार पर जगदीश गुप्त ने "शम्बूक" कथाकाव्य का प्रणयन करके उस पात्र को अमर कर दिया है । "इससे शम्बूक को एक प्रखर एवं जागरूक व्यक्तित्व मिल सका है, मुझे ऐसा लगता है ।"[2] कवि का कथन सत्य ही है कि "शम्बूक" की रचना करके कवि ने उस अप्रमुख पात्र को भी अन्य महान रामायणी पात्रों के समकक्ष बना दिया है । राम के राजसी व्यक्तित्व के सामने शम्बूक एक प्रश्नचिह्न है । सत्ता के सामने जब कभी कोई प्रजा प्रश्न करता है तो वह सत्ता के लिए आशंका का कारण बन जाता है । फिर भी कवि राम के महत्व पर कोई क्षति पहुँचाये बिना ही शम्बूक को

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 1
2. शम्बूक - कवि-कथन - जगदीश गुप्त - पृ. 9

एक प्रखर व्यक्तित्व देने में समर्थ है । राम के महान व्यक्तित्व के सामने शम्बूक भी अपने व्यक्तित्व की स्थापना पर आस्थावान् है -

"सभी पृथ्वी-पुत्र हैं तब जन्म से
क्यों भेद माना जाय
जन्मजात समानता के तथ्य पर
क्यों खेद माना जाय ।"[1]

कवि ने "हरिजन" के बदले भूमिपुत्र शब्द का प्रयोग किया है । राजा हो या प्रजा हो सभी जन्मजात समानता रखते हैं । व्यक्ति के आचरण और संस्कार उसकी दिव्यता और उच्चता के परिचायक हैं । इसलिए शूद्र होने पर भी शम्बूक अपने कर्म की श्रेष्ठता के कारण विशेष व्यक्तित्व के योग्य बन गया है ।

"अंधायुग" के गाँधारी और अश्वत्थामा भी ऐसे पात्र हैं जिनका चरित्र इस कथाकाव्य द्वारा अधिक उदात्त और उज्ज्वल हुआ है । "अंधायुग" के विविध कथ्यगत आयामों में इन दोनों चरित्र के आगे बाकी सब फ़ीका पड जाते हैं । नयी कविता मनुष्य में विश्वास करती है । मनुष्य की नियति का अधिनायक स्वयं मनुष्य ही है । युधिष्ठिर के एक अर्द्धसत्य के कारण अश्वत्थामा प्रतिहिंसा तथा पाशविक वृत्तियों का साकार मूर्ति बनकर पाँडव-शिविरों को भस्म कर देता है । आधुनिक समाज में व्यक्ति अनेक अर्द्धसत्यों से घिरा हुआ है । झूठ से भी खतरनाक हैं कई अर्द्धसत्य । एक कमज़ोर व्यक्ति की मानसिकता का आवेग अश्वत्थामा को इतना क्रूर बनाता है कि अंत में पाठकों की पूरी सहानुभूति अश्वत्थामा पर केन्द्रित हो

---

1. शम्बूक - जगदीश गुप्त - पृ. 49

जाती है । पश्चात्ताप से विवश, मणि खोनेवाले, जख्म से पीडित अश्वत्थामा इस काव्य का एक प्रमुख पात्र बन जाता है ।

गाँधारी का चरित्र भी प्रतिशोध की ज्वाला में जलता रहता है । धर्म-रक्षा के नाम पर किये हुए अधर्म की नीति उसे स्वीकार्य नहीं । सौ पुत्रों को खोयी हुई माँ के हृदय की व्यथा कृष्ण को शाप देने के लिए बाध्य करती है । उससे मातृत्व हनन सहा नहीं पाता । वह शाप देती है -

> प्रभु हो
> पर मारे जाओगे पशुओं की तरह [1]

जीवन भर तपस्विनी बनकर सारे पुण्यों के बल लेकर ही वह शाप देती है -

> मैं तपस्विनी गाँधारी
> अपने सारे जीवन के पुण्यों का
> अपने सारे पिछले जन्मों के पुण्यों का
> बल लेकर कहती हूँ [2]

भारती ने गाँधारी को भी एक प्रमुख पात्र के रूप में चित्रित किया है । गाँधारी का अपना व्यक्तित्व है । व्यक्ति अपने आत्मसत्य की अभिव्यक्ति कर सकता है । अतः पुराण प्रसंग में गाँधारी अप्रमुख पात्र होकर भी "अंधायुग" में प्रमुख पात्र बन जाती है ।

---

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 78
2. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 77

अप्रमुख पात्रों और प्रसंगों को प्रमुख मानने के पीछे उन्हें नायक-नायिका बनाने की इच्छा नहीं, उनके व्यक्तित्व की स्थापना की इच्छा ही बलवती है । उनके व्यक्तित्व की प्रखरता के माध्यम से कवि आधुनिक जीवन की जटिलता का सन्निवेश अपनी काव्य-कृति में करता है । कथाकाव्यों में पात्रत्व के लिए मुख्य स्थान प्राप्त हैं, व्यक्तित्व के लिए ही प्रमुखता प्राप्त है ।

मानवेतर स्थितियों का त्याग

आधुनिक युग बौद्धिकता का युग है । बौद्धिक दृष्टि से ओत-प्रोत होने के कारण कविता का सत्य ठोस और यथार्थ है । यथार्थ दृष्ट का महत्व अधिक है क्योंकि उसके अन्तर्गत यथार्थ के अन्तःस्वर को तथा उसके विभिन्न आयामों को शब्दबद्ध करने का प्रयास रहता है । बौद्धिक दृष्ट कविता में अन्वेषण की मुद्रा प्रतिष्ठित करने में सहायक होती है । साथ ही साथ सन्देहग्रस्तता का एक नया बीज उसमें अंकुरित होता है । वस्तुतः सन्देहग्रस्तता में प्रश्न करने का स्वर अधिक मुखर है । अर्थात् मनुष्य सापेक्ष यथार्थ से अलग कोई भी यथार्थ आधुनिक कवि की दृष्टि में स्पृहणीय नहीं है ।

छायावादी दौर में कवि दृष्टि वायवीय रही है । इसके अलावा आध्यात्मिकता का संस्पर्श भी रहा है । आध्यात्मिक दौर ने मानव संबंधी अवधारणा अर्थात् मनुष्य के ठोसपन को नष्ट कर दिया है । आधुनिक कविता में यह दृष्टि बदल गई है । इसका प्रमुख कारण आधुनिक युग की जटिलता ही है । जटिल स्थितियों का सामना वायवीय ढंग से असंभव है । यही जटिलता हमारी यथार्थ स्थिति है उसे सौंदर्यमंडित करके, उसे अभौमता प्रदान करके या उदात्तीकृत करके प्रस्तुत नहीं किया जा सकता । आधुनिक

कविता की सौंदर्यदृष्टि की बुनियाद में बौद्धिकता ही काम करती है । बौद्धिकता का जो सौंदर्य दर्शन है वह मात्र हृदयगत नहीं है क्योंकि बौद्धिकता कोई आरोपित अवस्था नहीं है । बौद्धिकता उस अर्थ में वैज्ञानिक दृष्टि भी नहीं है जिसकी सतह पर हर बात के रोये-रेशे को अलग करते हुए अंतिम निर्णय लेने की प्रवृत्ति है । इस अर्थ में बौद्धिकता का संबंध हमारी परंपरा से है, परंपरा से अर्जित मूल्यों से है । कुलमिलाकर जीवन संबंधी समग्र दृष्टि से है । वास्तविक बौद्धिक दृष्टि असल में एक नई सौंदर्य-दृष्टि है ।

कहा जा चुका है कि आधुनिक कविता का सत्य मनुष्य का समीपवर्ती सत्य है । उसमें अवास्तविकता के लिए कोई स्थान नहीं । जीते-जागते मनुष्यों को जब कविता में बिंबित किया जाता है तब उसे ठोस अनुभूतियों से युक्त भी होना पड़ता है । इस कारण से ही आधुनिक कविता में मानवेतर सत्य को कोई स्थान प्राप्त नहीं है । विध्वंस सब से पहले आधुनिक युग में हुआ है । संभवत: इस कारण से ही अज्ञेय ने अपनी कविता में यह लिखा -

"ईश्वर एक बार का कल्पक
और सनातन क्रान्ता है"[1]

वस्तुत: उस युग की मानसिकता भी इसके अनुरूप विकसित हुई है । ईश्वरीयता का त्याग धर्मविरोधी दृष्टि नहीं है, बल्कि मनुष्य विरोधी दृष्टि के खिलाफ़ की ही एक कार्रवाई है । धार्मिकता का भी लोप इस दौर में हुआ है । क्योंकि धार्मिकता कभी-कभी रूढ़ियों में परिणत होती है । रूढ़ि का त्याग मनुष्य सापेक्ष दृष्टि के विकास के लिए आवश्यक है ।

---

1. कितनी नावों में कितनी बार - अज्ञेय - पृ. 30

मानवेतर स्थितियों के त्याग में रचनात्मक दृष्टि इसीलिए सन्निविष्ट रहती है कि उसमें सरलीकरणों का निषेध है । मानवीयता के इतिहास को सही परिप्रेक्ष्य में उपलब्ध कराने के लिए उससे संबंधित अनुभूतियों को सरलीकरण से बचना पड़ता है । सरलीकरण का दोष यह है कि वास्तविकता के स्थान पर अवास्तविकता को अधिक महत्व देता है । इसलिए बौद्धिक दृष्टि के संदर्भ में सरलीकरण का कोई महत्व नहीं हैं । इसका दूसरा दोष यह है कि यह अतिरंजना का कायल है । ऐसे सरलीकृत मानवेतर दृष्टि के विकसित होने की संभावना को आधुनिक कविता ने तोडा है ।

जब हम आधुनिक कविता को मनुष्य सापेक्ष अनुभूतियों के निकट अनुभव करते हैं तो वह एक आकांक्षा मात्र नहीं है । असल में वह एक मूल्यपरक दृष्टि है । मूल्यविघटन के दौर में मूल्यान्वेषण की यात्रा एक अनिवार्य शर्त है । जीवन के जिन जिन संदर्भों में मूल्य विघटित होते नज़र आते हैं वहाँ यह देखा जा सकता है कि कोई न कोई मानव विरोधी पक्ष विद्यमान है । इस कारण से आधुनिक कवियों ने मूल्यविघटन को विषय के रूप में स्वीकार किया जबकि ये मूल्य स्थापना के पक्षधर है । लेकिन मूल्य-स्थापना की अपनी इच्छा को मुखर करने का कार्य आधुनिक कविता में संभव नहीं है । अतः मूल्यान्वेषण एक रचनात्मक अनुभव के रूप में आधुनिक कविता में उपलब्ध हैं ।

पौराणिक कथाकाव्यों के संदर्भों में कवियों की एक बहुत बड़ी दिक्कत यह है कि कथाओं के पात्र मानवेतर शक्तियों से संपन्न हैं । नवजागरणकालीन कवियों के समान आधुनिक कवि भी अपने कथासंदर्भों या पात्रों को यथावत् प्रस्तुत नहीं कर सकता है । आधुनिक कवियों में पौराणिक

वातावरण को बनाये रखने की इच्छा भी नहीं है । पौराणिकता के पुराण तत्व से नहीं बल्कि पुराण के मानवीय तत्व से या उससे भी बढ़कर जीवन तत्व से आधुनिक कवि प्रभावित है । इसलिए पुराण कथाओं की अभौमता को अपनी बौद्धिक दृष्टि के बल पर वे नष्ट कर देते हैं । महामानवीयता के लिए आधुनिक कविता में कोई महत्व नहीं है । इसलिए आधुनिक कथाकाव्यों के पुराण पात्र आधुनिक मनुष्य के प्रतिरूप ही है । इस संदर्भ में "अंधायुग" का कृष्ण, "विश्वकर्मा का सूर्य, "अग्निलीक" के राम और सीता, "कनुप्रिया" की राधा आदि चरित्र उदाहरणीय हैं । आधुनिक पौराणिक काव्य में इनकी महामानवीय कल्पना के स्थान पर मानवीय कल्पना की गयी हैं । ये पुराण पात्र आधुनिक व्यक्ति ही है । "अंधायुग" के कृष्ण प्रभु या परात्पर होने के बावजूद एक सच्चा इंसान है । उसके मन को अठारह दिनों के भीषण युद्ध का परिणाम सताता रहता है । उसकी पीडा अश्वत्थामा के जख्म की पीडा से भी प्रखर हैं । पुत्रहीना संतप्त गाँधारी के सामने प्रभु कृष्ण एक साधारण पुत्र बनकर विनम्र हो जाता है -

"माता !
जब तक मैं जीवित हूँ
पुत्रहीना नहीं हो तुम ।
प्रभु हूँ या परात्पर
पर पुत्र हूँ तुम्हारा
तुम माता हो ।"[1]

माँ-पुत्र की इस ममता के आगे शेष सब नतमस्तक हो जाते हैं । यहाँ कृष्ण के प्रभुत्व गलगलकर मानवत्व में परिणत हो जाता है । उसका मन एक साधारण

---

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 79

पुत्र की भाँति माँ को सांत्वना देने को आतुर है । इस संदर्भ में भारती ने कृष्ण को परब्रह्म के रूप में नहीं, एक आधुनिक मानव के रूप में स्वीकार किया है जो जटिल परिस्थितियों के बीच में पाता है - "अंधायुग का कृष्ण केवल प्रभु अथवा परब्रह्म हा नहीं हैं, बल्कि देवत्व एवं मानवत्व की संधिरेखा पर खडा वह आधुनिक जटिल मानव भी है जो परिस्थितियों से प्रेरित होकर सत्य का रक्षा करते हैं तो सत्य का त्याग भी, मर्यादा का वहन करते है तो मर्यादा का ग्रहण भी ।"[1]

"अग्निलीक" में सीता और राम के चरित्र को भी मानवीय आयामों में देखने का कार्य किया गया है । परित्यक्ता होने पर सीता की जो कारुणिक दशा है उसी के संबंध में राजपुरुष का जो कथन है, उसके द्वारा राम और सीता के मानवीय पक्ष प्रकट होता हैं । सीता की अवस्था पर सब दुःखी है, इससे भी बढ़कर है राम का दुःख -

"हमने क्या खोया है मात्र एक छत्र-छाया !
लेकिन उन्होंने
अपने प्राणों की प्रेयसी, अपने जीवन की संगिनी
अपनी अर्धांगनी खोयी है ।"[2]

प्राणों की प्रेयसी, जीवन-संगिनी, अर्धांगिनी आदि की सार्थकता मनुष्य जीवन में ही है । यह मानवीय कल्पना है । सांसारिक जीवन के मोह में मत्त मानवीय व्यक्ति आबद्ध नहीं होता । यहाँ राजा होने के नाते प्रजा तत्परता को महत्व देकर अपने वैयक्तिक जीवन और सुख-वैभव होम करनेवाला राम

---

1. "अंधायुग" एक सृजनात्मक उपलब्धि - सुरेश गौतम - पृ. 32
2. अग्निलीक - भरत भूषण अग्रवाल - पृ. 59

आधुनिक मानव है । अंत में सीता अपनी आँखों के सामने ही भूमि में समा जाती है । पत्नी-वियोग से दुःखी राम अपनी राजसी प्रौढ़ता, धर्म-संरक्षण प्रजा-तात्पर्य आदि सब बातों के प्रति चिंताकुल है । क्योंकि वे कहते है -

पर मैं ईश्वर नहीं हूँ
मानव हूँ
मिट्टी से बना एक सेवक हूँ प्रजा का[1]

यहाँ राम का ईश्वरत्व पूर्ण रूप से नष्ट होकर मानवत्व में बदल गया है ।

सूर्य को ऊर्जा के रूप में ही देखा गया है । इस कारण से उसे स्वर्गोलीय पिंड के रूप में परिकल्पित नहीं किया गया है । वह चेतना से युक्त अभौम शक्ति का स्रोत है । ऐसे सूर्य को विश्वकर्मा की पुत्री प्रज्ञा के पति बनाकर उसे गार्हस्थ्य जीवन में बाँधने का प्रयास मानवीय दृष्टि का परिणाम है । एक सहज मानव के समान सूर्य को प्रस्तुत किया गया है -

सूर्य सदा तुम्हारी उषा के पीछे चलता है
मानव ज्यों युवती के[2]

इस प्रसंग में सूर्य का चरित्र मानवीय संवेदनाओं से युक्त एक पूर्ण पुरुष का प्रतिनिधित्व करता है ।

"सूर्यपुत्र" का सूर्य भी शलाका पुरुष बनकर कुन्ती का सर्वस्व बन गया है । चतुर्वेदी ने युवा राजकुमार के रूप में चित्रित करके "सूर्य" का मानवी रूप प्रस्तुत किया है -

---

1. अग्निलीक - भरत भूषण अग्रवाल - पृ. 61
2. विश्वकर्मा - प्रभाकर माचवे - पृ. 93

"चिर युवा सूर्य ने झाँका अपने अतीत में
तमाम राजनीतिक ऊहापोहों के बीच वर्षों से व्यस्त रहे
भूल गये अपने यौवन की वह पुकार
तमाम कर्तव्यों के बीच जो सदा ताजी रहती है
प्रतिपल सालती है
कचोरती है !
कुरेदती है !"[1]

अतः पुराण पात्र इन आधुनिक कथाकाव्यों में आधुनिक मनुष्य बन जाते हैं । बौद्धिक चेतना के इस युग में मनुष्य का महत्व है ; मनुष्य की प्रतिष्ठा है ।

सामाजिक विडम्बना पर केन्द्रीकरण

सामाजिक विडम्बना एक सच है । आज की विडम्बनापूर्ण स्थिति का सार्थक तथा सशक्त निर्वहण अनेक आधुनिक काव्यों का प्रतिपाद्य बन गया है । मर्यादा, आस्था व्यक्तिगत अनुभूति आदि की महत्ता समाज के लिए स्पृहणीय है । "अंधायुग के प्रहरियों का जीवन गलियारे में बीतने के कारण मर्यादा, आस्था, शोक आदि से अपरिचित है ।"[2] इसके संबंध में नामवरसिंह ने कहा है - "कवि के अनजाने ही यह काव्य खण्ड स्वयं कवि द्वारा अन्त में स्थापित मर्यादा और आस्था की निरर्थकता नहीं, तो विडम्बना को उद्घाटित कर देता है ।"[3] जो नहीं होना था वही हुआ ।

---

1. सूर्यपुत्र - जगदीश चतुर्वेदी - पृ. 6
2. "हम ने मर्यादा का अतिक्रमण नहीं किया,
   क्योंकि नहीं थी अपनी कोई मर्यादा" {अंधायुग - भारती - पृ. 23}
3. कविता के नये प्रतिमान - नामवरसिंह - पृ. 187

आधुनिक कथा-काव्यों के रचना विधान में विडम्बनाजन्य स्थितियों को इसलिए प्रमुख स्थान प्राप्त है कि आधुनिक कवि विडम्बना जन्य किसी कथा-प्रसंग पर अधिक बल देता है । वह उसका वाँछित लक्ष्य है । कथा-विस्तार उसका लक्ष्य नहीं है । क्योंकि कथात्मकता उसकी कवि दृष्टि का अंग नहीं है । इसलिए पुराण कथाओं में प्राप्त विडम्बनाओं को वे प्रमुखता देते हैं । मूल्यहीनता का कोई भी प्रसंग विडंबना का उदाहरण हो सकता है । जैसे "कनुप्रिया" में युद्ध को प्रेम के साथ रखकर देखा गया है । एक व्यक्तिमूल्य है दूसरा सामाजिक ध्वंस । सामाजिक ध्वंस की अर्थ-प्रतीति इस एक व्यक्ति मूल्य के सामने अधिक तीव्र होती है । "वास्तव में नयी कविता की जो प्रमुख भावभूमि है उसमें मुख्य प्रश्न है सर्वांगीण मानवीय विघटन का मुकाबला करने का ।"[1] विघटन व्यक्ति और समाज के बीच का होता है । लेकिन जीवन मूल्यों की पुनःस्थापना मुख्य चेतना है । विघटित मूल्यों के बीच में नयी कविता मूल्यों के अन्वेषण और पुनःप्रतिष्ठा की ओर अग्रसर है ।

जाति-व्यवस्था या वर्ण-व्यवस्था हर युग की समस्या है । वह हमारी संस्कृति की निरंकुश दृष्टि की परिणति है । "सूर्यपुत्र" में कवि ने समाज की इस चिरंतन समस्या को उभारकर कर्ण के संघर्षमय जीवन से जोड़ा दिया है । कर्ण के सामने अपनी निम्नजातीयता ही सब से बड़ी चुनौती है । वह समस्या कर्ण के मन को चूर चूरकर नष्ट करती है । अस्त्र-प्रयोग प्रदर्शन स्थल में अर्जुन के ये शब्द उसकी अवहेलना को पर्याप्त है -

तो आओ, परीक्षा दो शौर्य की
पर पहले परिचय दो स्वयं का, कुल का [2]

---

1. मानव मूल्य और साहित्य - धर्मवीर भारती - पृ. 176
2. सूर्यपुत्र - जगदीश चतुर्वेदी - पृ. 48

राजनीति के अनुसार वीर वीर के साथ, राजपुरुष किसी दूसरे राजपुरुष के साथ द्वन्द्व युद्ध करते हैं । युद्धारंभ के पहले अपना नाम, कुल, माता-पिता सब का परिचय देना है । निम्नजाति में पला हुआ "सूतपुत्र" कैसे कौन्तेय अर्जुन के साथ युद्ध करें । यह कर्ण और अर्जुन के बीच की समस्या नहीं है । यह व्यक्ति और समाज के बीच की गठित समस्या है । अतः विडम्बना के कई आयाम ऐसे प्रसंगों में विकृत होते दिखाई देते हैं ।

आधुनिक कविता में सामाजिकता का परिदृश्य सुस्पष्ट है । इसलिए व्यक्तिपात्रों (प्रमुख एवं अप्रमुख) के मूल्यों के आमने सामने खडा करके सामाजिक मूल्यहीनता के प्रसंग लाये जाते हैं । तब तक तनाव उत्पन्न होता है । वस्तुतः यह तनाव आधुनिक कविता का मुख्य अंश है । कथाकाव्यों में तनाव को काफी प्रधानता दी गई हैं । इसका कारण विडंबनाजन्य विसंगतियों की पड़ताल ही हैं । आधुनिक जीवन की वास्तविकताओं की गहराई में जाते हुए वे इन सामाजिक विडंबनाओं को दर्शाते हैं । वस्तुतः दर्शाते नहीं, अनुभव कराते हैं ।

राजनैतिक संकट का प्रक्षेपण

कथा-काव्यों के कथा-विन्यास में राजनीतिक संकट का प्रक्षेपण भी प्रमुख है । सामाजिक विडंबना के समान राजनीतिक संकट ने मनुष्य के जीवन को तहस-नहस किया है । इसलिए वह आधुनिक कवि की विषयसीमा के अन्तर्गत आनेवाला प्रमुख मुद्दा है । पर सवाल यह है कि इस विन्यास-विधि से कथा-काव्यों में किस प्रकार का गुणात्मक परिवर्तन आता है । असल में राजनीतिक संकट का प्रक्षेपण कथ्य की एक नई दिशा है ।

पर उसका सही प्रक्षेपण हो तो सिर्फ कथ्य की नवीनता तक ही सीमित नहीं होता है । काव्य का पूरा कलेवर बदल जाता है । उस पर विचार करने के पहले राजनीतिक संकट की पृष्ठभूमि पर विचार करना भी संगत प्रतीत होता है ।

राजनीति वस्तुतः प्रजानीति ही है । लेकिन जब उसे सीमित अर्थ में ग्रहण किया जाता है तो वह राजनीति ही रहती है ; अर्थात् सत्ता की नीति बन जाती हैं । पुराने ज़माने से राजनीति से प्रजानीति के बहाने सत्ता की राजनीति की भूमिका ही अदा की है । संकट की शुरूआत इसी संदर्भ में होती है । सत्ता में अधिकार और प्रभुत्व के अलावा भ्रष्टाचार और अनैतिकता का इतिवृत्त भी जुडा रहता है । सब कुछ मिलकर जीवन को संघर्षमय बना देते हैं । संकट की यही वजह हैं । फिर अगर कहीं इसके कारण टकराहट हो तो सामान्य जीवन के ऊपर प्रचंड नृत्य का आरंभ होने लगता हैं । अर्थात् राजनीति अपनी वास्तविकता दिखाना शुरू करती है । इतिहास इन सब बातों का साक्षी है ।

कवियों ने जब कभी राजनीति को विषय बनाया, तब इस संघर्ष को प्रथम स्थान दिया है । क्योंकि उनकी दृष्टि में सत्ता से मुक्त या अधिकार से वंचित, सामान्य जीवन जीनेवाला व्यक्ति ही प्रमुख है । वह उसी का पक्षधर है । कवि के नाते वह उसी का पक्षधर हो सकता है । आधुनिक कवियों ने इस द्वन्द्व को कथा-काव्यों में विभिन्न कथा-प्रसंगों के माध्यम से प्रस्तुत किया या अन्य कविताओं में प्रभुत्व की अवांछित शक्ति को विभिन्न बिंबों एवं प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया । ये सब कथ्यगत नवीनताएँ हैं ।

जैसे अपर्यवत् सूचित है कि इस नई कथारीति के माध्यम से कथा-विन्यास में परिवर्तन आता हैं । पहला है कविता की वैयक्तिकता । राजनीति का वैयक्तिक सन्दर्भ अप्रमुख नहीं हैं । इस कारण से आधुनिक कथाकाव्य राजनीतिक संकट की उपस्थिति में वैयक्तिकता का रचनात्मक आभास देता है । दूसरा है पात्रों का द्वन्द्व । वैयक्तिकता को सही रचनात्मक दिशा देने के हेतु अन्तर्द्वन्द्व का समावेश आवश्यक हैं । इन दो विशेषताओं से कथाकाव्य तीव्रानुभव का शिखर-काव्य बन जाता है । यही नहीं इस कारण से बराबर पुराण का संस्पर्श स्वतः नष्टप्रायः भी होता है । पात्रों के नामों, कथा की स्थितियों के बने रहने के बावजूद हमें पुराण की छुअन प्रतीत नहीं होता । यही उसकी प्रमुख विशेषता है ।

बीसवीं शती के सब से बडी समस्या है "युद्ध या शांति ?" कवियों ने युद्ध और शांति के सनातन प्रश्नों पर विचार करते हुए पौराणिक कथा-संदर्भ के साथ उसे जोड दिया है । "अंधायुग", "संशय की एक रात", "रश्मिरथी", "एक कंठ विष पाई" आदि का नाम उपर्युक्त दृष्टि से सार्थक हैं । युद्ध का प्रश्न नरेश मेहता के राम को "संशय की एक रात" में झकझोरता है । युद्ध की अनिवार्यता राम के मन में बार बार युद्ध के संबंध में सोचने का सन्दर्भ प्रदान करते हैं ।

"लक्ष्मण
इतने प्रश्न
शंका और कुशंकाएँ
मुझे घेरे हुए हैं ।
इन उपकार के बदले

कृतज्ञित हूँ
किन्तु अपनी दृष्टि में ही
मैं अपात्री लग रहा हूँ ।"[1]

अनेक प्रश्नों से घिरे हुए व्यक्ति के रूप में आनेवाला राम का व्यक्तित्व संशयी व्यक्तित्व हैं । यह संशयी व्यक्तित्व आधुनिक व्यक्तित्व का मानवीय पक्ष ही है । इसलिए उसके मन में यह प्रश्न उठता है कि बिना युद्ध के शान्ति संभव नहीं है क्या ? वह रक्तपात के बिना शान्ति की स्थापना चाहता है । लेकिन अंत में व्यक्तिगत समस्या न्याय तथा निर्णय की प्रतिष्ठा करने में सामाजिक समस्या बन जाती है । सामाजिक कल्याण की सुरक्षा के लिए युद्ध अनिवार्य हो जाता है । "एक कंठ विष पायी" में भी सर्वहत द्वारा युद्ध के उपरान्त की दयनीय स्थिति का सच्चा आभास मिलता है -

सारे नगर में ताज़ा
जमा हुआ रक्त है
और सडा हुई लाशें हैं
मुडी हुई हड्डियाँ हैं
क्षत-विक्षत तन हैं ।
और उन पर भिन्नाते हुए
चीलों और गिद्दों के झुण्ड
और मक्खियाँ हैं ।[2]

यह दृश्य हर युद्ध के बाद अवश्य दिखाई पडता है । कंकालों, लाशों एवं

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 20-21
2. एक कंठ विषपायी - दुष्यंत कुमार - पृ. 48

क्षत-विक्षत शरीर और उनके बीच में घूमनेवाले गिद्ध और चील आदि युद्धोपरान्त भयानक स्थिति की ओर संकेत करते हैं । इस तरह का भीषण दृश्य आधुनिक व्यक्ति को युद्ध के प्रति वितृष्णा भाव जागृत कराने में सहायक बन जाता है । यह प्रश्न युग-सापेक्ष भी है । इन तमाम भीषणताओं के बीचों बीच हमें अधिकार की यंत्रणा का एक बिंब भी मिलता है जो काव्य को समकालीन बनाने में अनिवार्य है । राजनीतिक संकट के पीछे सदैव अधिकार की यंत्रणा का कोई न कोई पक्ष रहता है ।

मिथक-काव्यों में परिणति

आधुनिक कथाकाव्य अन्ततः मिथककाव्यों में परिणत होते हैं । यह उसकी रचनात्मक परिणति है । मिथक की संक्षिप्त चर्चा इस संदर्भ में आवश्यक है ।

मिथक-कथाएँ प्रमुख रूप से अलौकिक, अद्भुत, काल्पनिक कथाएँ हैं । लेकिन 19 वीं सती तक आते आते यह धारणा बदल गयी । वैज्ञानिक तथा बौद्धिक दृष्टिकोण के विकास के कारण इन कथाओं में भी नवीन संरचनाओं का उदय हुआ । धीरे धीरे "मिथ" के पर्यायवाची शब्द के रूप में "मिथक" का प्रयोग होने लगा । "हिन्दी में "मिथ" के लिए कल्पकथा, पुराकथा आदि अन्य शब्दों का भी प्रयोग हुआ, किन्तु अब "मिथक" ही एक प्रकार से रूढ़ हो गया है ।"[1] सामान्य रूप में मिथक शब्द से यह ज्ञात होगा कि यह कोई प्राचीन परंपरागत प्रचलित काल्पनिक कथाएँ हैं जिनपर

---

1. मिथक और साहित्य - डॉ. नगेन्द्र - पृ. 7

आधुनिक मनुष्य पूर्ण रूप से विश्वास नहीं रख सकता । लेकिन आधुनिक काल में ज्ञान के नवीन क्षेत्रों के विकास के साथ मिथकों की मूल्यवत्ता की तलाश भी होने लगी । इसलिए मिथक कथाओं के अर्थ में भी नये भावबोध के नवीन आयामों की पहचान होती हैं । यह नयी संरचना मिथक काव्यों की परिकल्पना का नया पक्ष ही है ।

"मिथक"के स्वरूप के संबंध में यह निर्विवाद रूप से स्वीकृत है कि मिथक एक सार्वभौम कल्पना है । यह मानव के व्यक्तिगत और समष्टिगत अनुभूतियों की मंजूषा हैं । इस मंजूषा के अन्तर्गत जीवन में घटित घटनाओं और स्थितियों का वर्णन कथात्मक रूप में प्रस्तुत है । इसलिए मिथकीय कथाओं में मानवीय और अमानवीय जीवन-संदर्भों की व्याख्या मिलती हैं । "सामान्य रूप में मिथक आदिम मानव द्वारा सृजित वे कथाएँ हैं जिनका संबंध देवताओं के कृत्यों, सृष्टि तथा मानव की उत्पत्ति आदि अनेक तत्वों से हैं, पर विशिष्ट अर्थों में मिथक विशेष चिन्तन की माँग करता है ।"[1] अर्थात् मिथक की व्याख्या हम विभिन्न रूपों में कर सकते हैं ।

भारतीय संस्कृति में पुराणों का महत्व सर्वाधिक है । इन पुराण कथाओं या पुराख्यानों की संपदा वैदिक साहित्य से लेकर आज तक के साहित्य में बिखरी पडी हैं । इन कथाओं में भी अनेक महान पुरुषों की जीवनगाथाएँ, ऐतिहासिक सत्य घटनाएँ, तथा प्राकृतिक प्रतीकों का चित्रण उपलब्ध हैं । अतः मिथक संपूर्ण मानव जाति की प्राचीनतम एवं श्रेष्ठतम सांस्कृतिक धरोहर हैं । मनुष्य जाने या अनजाने ही मिथकीय कथा के अधिक

---

1. मिथक एक अनुशीलन - मालती सिंह - पृ. 13

निकट पहुँचते हैं । मिथकों का क्षेत्र उतना ही विस्तृत हैं जितना मानव का अन्तर एवं बाह्य जगत ।

पुराण सामान्यतया प्राचीन एवं मध्यकालीन धार्मिक, ऐतिहासिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक चेतना की जीवन्त स्मृतियाँ हैं । पुराण में तार्किकता और बौद्धिकता का अभाव है । उसमें परंपरागत कल्पित कथाएँ कही गयी हैं जिनका प्रचलन होता रहता है । लेकिन मिथक समकालीन जन-जीवन की अर्थवत्ता की खोज से जुडा रहता है । मिथकीय परिकल्पनाएँ जीवन की मूल अनुभूतियों से जुडी संकल्पनाएँ हैं । "पुराण साहित्य की रचना, मिथक की धर्मनिरपेक्षता का एक प्राचीन उदाहरण है । तथापि पुराण साहित्य स्वयं कुछ मिथकीय तत्वों को आत्मसात् करते है ।"[1] पुराण भी मिथक का एक प्रमुख अंग है जिसके अभाव में मिथक विकलित नहीं होता । "पुराण न केवल धार्मिक, बल्कि राजनैतिकार्थिक जीवन के मुख्य आधार रहे हैं और इन्होंने जातीय मिथकों का विकास किया है ।"[2] वस्तुत: मिथक एक सांस्कृतिक विरासत है । अत: पौराणिक काव्य मिथक काव्यों में बदलकर मानव जीवन की नयी आकांक्षा का स्पर्श करते हैं ; पुराण काव्य मिथक काव्य में परिणत होते हैं ।

---

1. The formation of epic literature is an early example of secularization of myth. Nevertheless epic literature itself can resume certain mythical functions.
(Encyclopaedia Brittanica. Vol:12 - p - 802)
2. मिथक और आधुनिक कविता - शंभुनाथ सिंह - पृ. 26

पुराण पात्र भी इस नयी संकल्पना के कारण मिथक पात्र बन जाते हैं । पुराणों में कृष्ण, राम, शिव जैसे देवताओं को जो अलौकिक दैविक परिवेश प्राप्त हैं वह आधुनिक युग में सच्चे और यथार्थ मानवीय प्रतीकों के रूप में मिथकीय पात्र बन जाते हैं । धार्मिक आस्था से जिन व्यक्ति पात्रों की कथा ग्रहित हैं उन्हीं कथाओं को बाद में नवीन भावों से विभूषित करके विस्तृत किया जाता है । यह कहना उचित होगा कि जब किसी भी समय पर देश का संपूर्ण चेतना जागृत होकर साहित्य के माध्यम से नयी अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं तब मिथकीय कथाएँ जन्म लेती हैं । अतः नई अभिव्यक्ति के स्तर पर मिथक पुराण कथाओं की पुनरावृत्ति नहीं, उसकी पुनर्रचना हैं ।

आधुनिक कथाकाव्यों के पात्रों एवं घटनाओं का प्रस्तुतीकरण मिथकीय पात्रों और घटनाओं की प्रतीकात्मकता के द्वारा हुआ हैं । मिथकीय पात्र आधुनिक व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता हैं ; उसकी संवेदनाएँ आधुनिक मानव की संवेदनाएँ बन जाती हैं । यह कथा विन्यास में आयी हुई नई संकल्पना है । "संशय की एक रात" के राम का संशय युगीन संदर्भ में प्रासंगिक हैं, राम के मन में उठा संशय आधुनिक मानव का संशय है । उसी तरह "महाप्रस्थान" में युधिष्ठिर का मन परिताप और पापबोध से विवश हो जाता है । इन दोनों कथाओं में जिन मिथकों की स्वीकृति की गयी है उसी के संबंध में रामकमलराय कहते है - "युद्ध की बर्बरता और अमानवीयता की कल्पना से राम के मन में युद्ध के पूर्व संशय उत्पन्न होता है उसे युधिष्ठिर के मन को युद्धोपरान्त हिमालय यात्रा के क्षणों में युद्ध से जुड़ी सारी स्मृतियाँ झकझोरती रहती है ।"[1]

---

1. नरेश मेहता: कविता की ऊर्ध्वयात्रा - रामकमलराय - पृ. 84

"अंधायुग" में विविध पात्र ऐसे हैं जो मिथकीय व्यक्तित्व के प्रतीक हैं - धृतराष्ट्र, गांधारी, अश्वत्थामा, युयुत्सु, कृष्ण, वृद्धयाचक, प्रहरी आदि । धृतराष्ट्र विवेकशून्य और ज्ञानहीन शासक का मिथक है जिसके कारण भीषण युद्ध का जन्म हुआ है -

"मेरा स्नेह मेरा घृणा मेरी कीर्ति मेरा धर्म
बिलकुल मेरा ही वैयक्तिक था
उसमें नैतिकता का कोई बाह्य मापदण्ड था ही नहीं ।"[1]

इसलिए धृतराष्ट्र के अन्धत्व पूरे युग का प्रतीक है । यह हर युग में हो सकता है । इस तरह "अनुभवहीन ज्ञान" के प्रतीक विदुर और भविष्यवक्ता वृद्धयाचक भी मिथक है । सन्दर्भवश विदुर की मानसिकता पराजय स्वयं स्वीकार करती है -

जीवन भर रहा मैं निरपेक्ष सत्य
कर्मों में उतरा नहीं ।[2]

राधा मात्र एक पात्र नहीं । वह प्रेम का मिथक बन गई है । राधा की हर अनुभूति प्रेम से उद्दीप्त है । इस मिथक के साथ कृष्ण का मिलन युग्मरस का मिथक है जो कनुप्रिया में अधिक झंकृत हुए है -

यह कैसे बताऊँ तुम्हें
कि चरम साक्षात्कार के ये अनूठे क्षण भी
जो कभी कभी मेरे हाथ से छूट जाते हैं
तुम्हारी मर्म-पुकार जो कभी-कभी मैं नहीं सुन पाती

---

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 18
2. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 21

तुम्हारी भेंट का अर्थ जो नहीं समझ पाती
तो मेरे साँवरे लाज मन की भी होती है[1]

चरम साक्षात्कार के अनूठे क्षण भी मन की लज्जा के कारण राधा के हाथ से छूट जाते हैं । शारीरिक लज्जा के साथ साथ आन्तरिक लज्जा भी कभी-कभी प्रेमी के पास पहुँचने में देर लगाती है । प्रेम में लज्जा, भय, उदासी, गोपन आदि सभी मानसिक अवस्थाओं की प्रमुखता हैं जो प्रेम को अत्यंत उदात्त एवं अलौकिक बना देती है । प्रेम की संपूर्ण सार्थकता में ये सभी स्थितियाँ अनिवार्य हैं ।

कथा-विन्यास में प्राकृतिक तत्वों की स्वीकृति एक नयी संरचनात्मक रीति है । आकाश और पृथ्वी, सूर्य और चन्द्र, नदियाँ, हरितवृक्ष आदि ऐसे अनेक तत्व हैं जिसके साथ मानव साक्षात्कार के क्षणों की अनुभूतियाँ संजोने का प्रयास करता है । "संसार के विभिन्न मिथकीय परंपराओं का यदि अध्ययन किया जाए तो इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुँचा जा सकता है कि उनमें से पचहत्तर प्रतिशत मिथकीय अवधारणाओं के मूल में प्रकृति ही हैं ।"[2] प्राकृतिक तत्वों तथा उपकरणों की अवतारणा के बिना मिथक का चयन पूर्ण नहीं हो सकता । उदाहरणस्वरूप कह सकते हैं कि 'कनुप्रिया' में राधा के कृष्ण के प्रेम-संवेदन की अनुभूति यमुना की स्वच्छ धारा से जुड़ी हुई है । मंथर गति से प्रवाहित जल की धारा में राधा अपने प्रेमानुभूतियों के क्षणों को पहचानने का प्रयत्न करती है । यमुना के नीले जल में घण्डों तक निहारती हुई राधा कृष्ण के चारों ओर के आलिंगन का अनुभव करती है -

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 25
2. मिथक:एक अनुशीलन - डॉ. मालती सिंह - पृ. 42

मानो यह यमुना की साँवली गहराई नहीं है
यह तुम हो जो सारे आवरण दूर कर
मुझे चारों ओर से कण-कण रोम-रोम
अपने श्यामल प्रगाढ़ अथाह आलिंगन में
पोर-पोर कसे हुए हो[1]

कदम्ब वृक्ष भी "कनुप्रिया" में मिथक बन गया है । यह भी मानना उचित होगा कि जिस कदम्ब वृक्ष के नीचे आज राधा अस्त-व्यस्त होकर बीते हुए मधुर क्षणों की याद में डूबी हुई है -

"यह जो मैं गृहकाज से अलसाकर अक्सर
इधर चली आती हूँ
और कदम्ब की छाँह में शिथिल अस्त व्यस्त
अनमनी-सी पड़ी रहती हूँ[2]

वह कदम्ब वृक्ष मिथकीय परिवेश से युक्त हो जाता है । मिथकीय अवधारणा के मूल में प्रकृति की उपस्थिति है ।

कथाकाव्यों की उपरोक्त विन्यास-रीतियाँ रचना को एक साथ आधुनिक भावबोध और महाकाव्यात्मक आयाम प्रदान करती हैं । कथाकाव्यों की रचना भूमि आधुनिक है । वह आधुनिक युग की नई रचनात्मक दिशा भी है, पर उसकी अवधारणात्मक स्थिति पुराणों के संस्पर्श से युक्त होती है ; मिथकीय बोध से संयुक्त होती है और हमारी आस्था को जगाती है । रचना-विधान अंतिम विश्लेषण में रूपकथा की दिशा का पर्याय है । पर यहाँ ये विधान असल में उसके कथ्य की संभावनाओं को प्रासंगिक बनाने में सक्षम हुए है

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 16
2. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 17

अध्याय तीन

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में सामाजिक विसंगति का स्वरूप

अध्याय - तीन

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में सामाजिक विसंगति का स्वरूप

प्रत्येक युग की काव्यधारा समसामयिक स्थितियों का स्पर्श करती है । सामाजिकता से मिलकर ही आधुनिक कविता अपना कृतिकर्म निभाती है । आधुनिक कविता ने सामाजिकता को गहराई से लिया है । पूर्ववर्ती-युग की तुलना में आधुनिक कविता के सामने अनेक चुनौतियाँ रही हैं । समय और समाज का बदलाव सामान्य नहीं रहा । उसे सब से पहले सरलीकरणों से बचना था ; कठिन समय से जुडना था । इस कारण से आधुनिक कविता के रूप और भावस्तर पर भिन्नताएँ मिलती हैं । आधुनिक कविता इसी कारण से अपने कृतिकर्म के प्रति अधिक दायित्वपूर्ण भी है । डॉ. नगेन्द्र का मत सही है - "वह हिन्दी काव्यधारा की उपलब्धि है - भावबोध, चिन्तन और शिल्प सभी दृष्टियों से उसने जीवन को उसके गहरे और विविध रूपों में रूपायित किया है ।"[1] नयी कविता की ऐसी विशिष्टता के पीछे उसकी गहरी सामाजिक संसक्ति का दृश्यपट है । उसमें निरंतर परिवर्तित होते हमारे मूल्य हैं, हमारे सामाजिक जीवन के विभिन्न प्रकार के बिखराव हैं, तथा आधुनिक मनुष्य की बिगडती आकांक्षाएँ हैं ।

आधुनिक कविता का समाज अतिविस्तृत होते हुए भी कविता में समाज का स्वरूप या सामाजिक आकांक्षाएँ सपाट नहीं है । स्थितियों को गहराने के लिए आधुनिक कविता में सूक्ष्मदर्शी स्थितियों एवं संकेतों का सहारा लिया गया है । सामाजिक अन्तर्विरोध को दर्शाना

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र - पृ. 65

मात्र कवियों का उद्देश्य नहीं है । सामाजिक अन्तर्विरोध को व्यापक अनुभव के रूप में बदलने के लिए विडम्बनापूर्ण स्थितियों को कवियों ने विषयवस्तु के रूप में स्वीकार किया है । उनमें एक प्रमुख विषयवस्तु पौराणिक संदर्भ है । किसी पौराणिक कथा को, पौराणिक सन्दर्भ को, किसी पौराणिक पात्र को आधार बनाकर अनेक नई काव्यकृतियाँ इस दौर में लिखी गयी हैं । उन्हें कथाकाव्य भी कहा जा सकता है क्योंकि इनमें कथा का पक्ष प्रबल रहता है । कथा का स्वरूप चाहे जो हो, कथा की अन्तर्धारा उसको सशक्त करती है । परन्तु समान्तर ढंग से कथा के भीतर सामाजिक विसंगतियों को विन्यासित किया जाता है । कथा की नींव पर सामाजिक विसंगति का स्थापत्य खडा किया जाता है । अतः इस दौर में लिखे गये कथाकाव्य सामाजिक विसंगतियों के दस्तावेज़ हैं । प्रायः यह पौराणिक बिंब के रूप में होते हैं । यह इस बात को प्रमाणित करते है कि - "साहित्य चिर नवीन है और चिर पुरातन भी ।"[1] इस कथन के आशय को इस प्रकार लेना होगा कि साहित्य में आधुनिकता और परंपरा का एक अंश हमेशा रहता है । परंपरा यहाँ पारंपरिकता के रूप में न होकर आधुनिकता के वाहक पक्ष के रूप में है । पौराणिक कथाकाव्यों के संदर्भ में इन दो घटकों का सम्मिलन नई कविता की एक प्रीतिप्रद प्रवृत्ति है ।

नई कविता में जीवन के समस्त पक्षों का प्रक्षेपण नयी चेतना को आत्मसात् करते हुए सामाजिक विघटन और विसंगतियों के बीच एक नयी तलाश है । इस तलाश में कवि अपने आपको एक समाज सापेक्ष व्यक्ति मानकर सभी व्यथाओं को भोगकर मानव-मूल्यों की खोज में संलग्न

---

1. काव्यविमर्श - गुलाबराय - पृ. 287

रहता है । मूल्यविघटन के पक्ष को, विसंगतियों के विविध आयामों को, सामाजिक परिप्रेक्ष्य में बारीकी के साथ देखते हुए आधुनिक कवियों ने मनुष्य की चिन्ता को व्यक्त किया । मनुष्य की चिन्ता की अभिव्यक्ति से सामाजिक विडंबनाएँ अत्यन्त प्रखर होती हैं ।

विसंगति आज के जीवन की वास्तविकता है । कवि अपनी वास्तविक स्थिति से न पलायित हो सकता है न तटस्थ । इसलिए विसंगति का बोध गहन रहता है । मुक्तिबोध ने ठीक ही कहा है - "हम जीवन के प्रति अधिकाधिक प्रामाणित होते जा रहे हैं । हमारी कल्पना हमें नीलगगन के अथाह शून्य में भटकाती नहीं, वरन् जीवन को उसके यथार्थ स्वरूप में ग्रहण कराते हुए उस ओर उठा ले जाती है ।"[1]

कथाकाव्यों में विसंगतियों के विभिन्न पक्षों का प्रतिपादन वैचारिक धरातल पर हुआ है । आज के युग में विघटित मानव मूल्यों के बीच, टूटे हुए आपसी संबंधों के बीच, असंतुलित जीवन-बोध के बीच मनुष्य अपने व्यक्तित्व की तलाश में है । कथाकाव्यों की कथाओं के माध्यम से जीवन के जिस रूप को कवि दिखाता है उसमें समय की निजता का एहसास है । इसका कारण है - "परिवेशगत बोध जिसकी पहचान गहरे आत्मिक धरातल पर करता है और जो उसे सताता है, तिलमिला देता है और अन्तर्जगत में उथल-पुथल मचा देता है ।"[2] अतः वह निजस्थिति एक सामाजिक सत्य में परिणत होती है । कथा-संदर्भ उसे अधिक विस्तृत करता है । उदाहरण के

---

१. नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र - मुक्तिबोध - पृ. 64

२. आधुनिकता और समकालीन रचना - डॉ. नरेन्द्र मोहन - पृ. 105

रूप में "अन्धायुग" को लें । भारती ने दो प्रहरियों के वार्तालाप द्वारा अठारह दिन के घोर युद्ध की त्रासदी का अवसादपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है । प्रहरियों के वार्तालाप में व्यंग्य, विडम्बना और त्रस्त मन की पीडा है । वे इस युद्ध के भागीदार हैं किन्तु राजमहल के सूने गलियारे में वे सिर्फ पहरा देते रहे । रक्षक होते हुए भी वे किसी का रक्षक नहीं हैं । क्योंकि युद्ध के पश्चात् वे व्यापक शून्यता के भोक्ता हैं -

"निरर्थक पडी रही
अंगों पर बोझ बनी
रक्षक थे हम केवल
लेकिन रक्षणाय कुछ भी नहीं था यहाँ ".[1]

इन पंक्तियों से युद्ध की नृशंसता का परिचय मात्र नहीं, नृशंसता के समाजशास्त्र का परिचय भी मिलता है ।

कथाकाव्यों में समाज के विभिन्न विसंगत पक्षों का संकेत कथावस्तु के बीच पिरोये मिलते हैं । इसके लिए कवि पुराण-कथा का वही प्रसंग चुनता है जिसमें विसंगति के वाँछित पक्ष का सही प्रतिपादन कई आयामों के साथ दर्शा सकें । अतः कथाकाव्यों में विन्यसित कथाओं में कवि का वाँछित दृष्टिकोण धीरे-धीरे विकसित होता है । सामाजिकता की स्थिति उसमें निहित अन्तर्विरोध की सही स्थिति के रूप में कथा के समान्तर विकसित होती है ।

---

1. अन्धायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 12

जाति-प्रथा से उद्भूत समस्याएँ

जाति-प्रथा भारतीय समाज की सब से जटिल समस्या है । जाति-प्रथा के उद्भव के संबंध में दिनकर ने कहा है - "वर्णाश्रम के भीतर से अनेक जातियाँ निकल पड़ीं, ऊँच-नीच का भेद बेतहाशा बढ़ गया और मनुष्य केवल शूद्र ही नहीं, अन्त्यज और अस्पृश्य माना जाने लगा ।"[1] पहले इस समस्या के पीछे समाज की धार्मिक धारणाएँ कायम रही थीं । परवर्ती युग में, समय-समय पर, विभिन्न शक्तियों ने जाति-प्रथा को प्रोत्साहित किया है ।

बौद्धिकता और वैज्ञानिकता की तीव्र गतिशीलता के इस आधुनिक दौर में भी जाति-प्रथा समाज में अपना विराट रूप धारण करती हुई नृत्य कर रही है । क्योंकि समाज में हमेशा दो वर्ग मौजूद है - उच्चवर्ग और निम्नवर्ग । उच्चवर्ग हमेशा अपनी प्रभुता स्थापित करने की होड में है । जातिवादी दृष्टि को भले ही हम बलपूर्वक दूर करने का प्रयास करें तो भी वह हमारे समाज के विशाल प्रांगण में कहीं अंकुरित होती है । हमेशा ऐसी एक धारणा प्रबल हो गयी है कि ऊँची जाति की संस्कृति ऊँची और नीच जाति की संस्कृति नीची है । "एक ही जाति में कुछ गोत्रों के लोग अपने को औरों से अधिक ऊँचा समझते हैं । अछूत जातियों में भी कुछ लोग कम अछूत और कुछ ज़्यादा अछूत समझे जाते हैं । असल में समाज के भीतर संस्कृतियों के जो ऊँचे नीचे अनेक धरातल हैं, उन धरातलों पर भी जातियों का विभाजन देखा जा सकता है ।"[2] अतः किसी न किसी प्रकार समाज विभाजित ही रहा है ।

---

1. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 78
2. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 79

जाति के बल पर जो विभाजन हुआ है उसने सामाजिक स्थितियों को अधिक क्लिष्ट कर दिया है । जातिप्रथा वास्तव में एक सामाजिक अनैतिकता है । इससे उद्भूत अनेक समस्याओं के विषैले धुएँ से सामाजिक परिवेश कलुषित है । ऐसे प्रश्न हर व्यक्ति के सामने एक बहुत बड़ी चुनौती बनकर खड़े हैं । आधुनिक कवि इस चुनौती को अस्वीकार नहीं करता है ।

कुछ प्रमुख आधुनिक कथाकाव्यों का कथ्य जाति-प्रथा से उत्पन्न संकट रहा है । लेकिन उनमें जाति-प्रथा के खिलाफ़ आक्रोश और विद्रोह का स्वर अधिक मुखरित है । यह वैचारिकता आज के समाज की मांग के अनुकूल ही है । जाति प्रथा में निहित अमानवीयता को तथा उसकी निरंतरता को दर्शाने में इन कथाकाव्यों का योगदान महत्वपूर्ण है ।

जाति का कलंक

"रश्मिरथी" (1952) श्री रामधारीसिंह दिनकर का प्रमुख कथाकाव्य है जिसका मूल स्रोत महाभारत है । कवि ने "रश्मिरथी" नाम कर्ण के लिए प्रस्तुत किया है । "इस काव्य में रश्मिरथी नाम कर्ण का है, क्योंकि उसका चरित्र अत्यंत पुण्यमय और प्रोज्ज्वल है ।"[1] कर्ण से संबंधित सारी कथाओं में कर्ण के अवैध जन्म संकेतित है । लेकिन "रश्मिरथी" के नामकरण का तात्पर्य यह है कि सूर्य का किरणों का रथ है, अतः उसका पुत्र रश्मिरथी है । सूर्यपुत्र होने की कथा से बाह्य जगत अनभिज्ञ है । इसी कारण से वीरोचित गुणों से युक्त होने पर भी उसे आदर नहीं मिलता । इसी कथा को आधार बनाकर दिनकर ने "रश्मिरथी" की सर्जना की है ।

---

1. रश्मिरथी - दिनकर - पृ. 3

"रश्मिरथी" के द्वारा दिनकर ने जाति-पाँति या कुल-वंश के भेद-भावों का विरोध करके मानवीय गुणों के आधार पर उस को आदर करने का सन्देश दिया है । कवि की स्पष्ट मानवतावादी धारणा यही है -

"ऊँच-नीच का भेद न जाने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है
दया-धर्म जिसमें हो, सब से वही पूज्य प्राणी है ।"[1]

जन्म से कोई भी व्यक्ति ऊँच या नीच नहीं होता । उसका कर्म ही उसे ऊँच या नीच संस्कार के पात्र बनाता है । मानवीय गुणों का आदर करनेवाला ही सच्चा ज्ञानी और संपूज्य व्यक्ति होता है । अस्त्र-शस्त्रों की विद्या के प्रदर्शन की वेला में अर्जुन को द्वन्द्व-युद्ध के ललकारते समय कृपाचार्य के ये शब्द हमारी वास्तविक संस्कृति के लिए एक चुनौती है -

अर्जुन से लड़ना हो तो मत रहो सभा में मौन
नाम-धाम कुछ कहो, बताओ कि तुम जाति हो कौन ?"[2]

इसकी प्रतिक्रिया तुरंत कर्ण में प्रतिफलित है । कृपाचार्य के सवाल ने कर्ण को क्षुब्ध कर दिया । वह सूर्य की ओर कुपित होकर सभावासियों को बताता है -

जाति-जाति रहते, जिनका पूँजी केवल पाषण्ड,
मैं क्या जानूँ जाति ? जाति है ये मेरे भुजदण्ड ।"[3]

यह सही है कि कर्ण को अपने समय में उचित सम्मान और आदर नहीं मिला । लेकिन दिनकर ने अपने काव्य में उसके अभिमान की रक्षा करवाकर सम्मान दिलाया है । यह कवि की इच्छित मनोवृत्ति है ।

---

1. रश्मिरथी - दिनकर - प्रथम सर्ग - पृ. 11
2. रश्मिरथी - दिनकर - प्रथम सर्ग - पृ. 13
3. राश्मिरथी - दिनकर - प्रथम सर्ग - पृ. 13

जगदीश चतुर्वेदी का "सूर्यपुत्र" (1975) भी कर्णकथा पर आधारित है । दिनकर की काव्यकृति की तुलना में "सूर्यपुत्र" में मानवीय अंश अधिक है । "कवि ने इसको आज के मनुष्य के द्वन्द्व और विसंगति से अनुप्राणित कर एक नये भावबोध से संपृक्त करने का प्रयास किया है ।"[1] जगदीश चतुर्वेदी ने इस कथा को नयी दृष्टि से देखने के कारण अविवाहिता कुन्ती की अवतारणा में कुछ नया परिपार्श्व दर्शाया है । इसमें कुन्ती सूर्य का आह्वान करके स्वागत करती है और अपने को समर्पित करती है । पुत्र-प्राप्ति के बाद उससे बिछुडते वक्त पुत्र-वत्सला माँ कुन्ती का चित्रण भी कवि ने किया है । स्नेहातिरेक के बावजूद वह नन्हे कर्ण को छोड देती है । कथा के इन नए विस्तार के कारण कर्ण के संत्रास को और गहराई से अंकित किया है ।

जाति-दृष्टि का भीषण रूप बडे बडे शासकों राजगुरुओं तथा महत् व्यक्तियों में भी देख सकते हैं । विजयोन्माद की लहरी में वे दूसरों के कुल, मर्यादा, नाम, योग्यता आदि का परिचय पाकर ही युद्ध करने को तैयार हो जाते हैं । "रश्मिरथी" के समान "सूर्यपुत्र" में भी अस्त्र-शस्त्र विद्या के प्रदर्शन के संदर्भ में कर्ण से अर्जुन और कृपाचार्य दोनों उसके कुल के संबंध में पूछते हैं । अर्जुन के ये शब्द समाज के हर एक साधारण व्यक्ति की ओर छोडे दिये गये है -

"पहले परिचय दो स्वयं का कुल का
कहीं ऐसा न हो बाद में मुझे हो कष्ट
किसी अनाम की
किसी अयोग्य की हत्या का भागी बनूँ मैं ।"[2]

---

1. सूर्यपुत्र - प्राक्कथन - जगदीश चतुर्वेदी - पृ. 7
2. सूर्यपुत्र - जगदीश चतुर्वेदी - पृ. 48

कृपाचार्य भी एक कुटिल मुस्कान के साथ पूछते है -

"यह प्रश्न बहुत सामयिक है
युद्ध के संदर्भ में
वीरों के साथ लड़ते हैं वीर
राजाओं के साथ राजपुरुष
प्यादों के साथ प्यादे
और शूद्र के साथ शूद्र-जन ।"[1]

इन दोनों के परिहास भरे शब्द ने कर्ण को मौन कर दिया । जातिवादी संस्कार के तले कर्ण असमर्थ हो जाता है । यहाँ एक बात याद रखने की है कि अर्जुन और कृपाचार्य दोनों के प्रश्न का उत्तर उस सभा में हाज़िर कुन्ती देती तो शायद महाभारत युद्ध हो नहीं होता । लेकिन कुन्ती ने मौन धारण किया । क्योंकि उसकी मान-मर्यादा, कुल की महिमा उसे यह कहने नहीं देती कि "कर्ण मेरा पुत्र है ।" अतः सूर्यपुत्र का कर्ण निम्न जाति के समस्त दुःखों एवं संघर्षों को भोगनेवाले आधुनिक व्यक्ति का प्रतिनिधि बनकर खड़ा है । वास्तव में "सूर्यपुत्र" में चतुर्वेदी ने कर्ण को सूर्यपुत्र बता दिया है और "सूतपुत्र" होने के नुकसान की ओर भी ध्यान दिया है ।

जाति-व्यवस्था के ढकोसले के शिकार बन जानेवाला एकलव्य भी हमारे पुराण पात्र है । पुराण में ही नहीं आज भी एकलव्य की कथा की प्रासंगिकता है । डॉ. रामकुमार वर्मा का एक प्रमुख कथाकाव्य है एकलव्य (1958) जिसका आधार महाभारत की कथा है । महाभारत के एक अप्रमुख पात्र एकलव्य को नायक के पद पर प्रतिष्ठित करने का कार्य

---

1. सूर्यपुत्र - जगदीश चतुर्वेदी - पृ. 48

इसमें कवि ने किया है । महाभारत में इसकी कथा केवल 30 श्लोकों में वर्णित है । लेकिन "एकलव्य" में डॉ. रामकुमार वर्मा ने चौदह सर्गों में विभक्त करके एकलव्य पर होनेवाले अमानवीय जुल्म को शब्दबद्ध किया है । निषाद होने से एकलव्य के गुरु बनने की प्रार्थना का तिरस्कार करके द्रोणाचार्य अपने उच्च कुल संस्कार का परिचय देते हैं । जब एकलव्य ने वन में गुरु की प्रतिमा बनाकर उसे साक्षी मानते हुए सारी सिद्धियाँ प्राप्त करता है तो द्रोणाचार्य उससे गुरुदक्षिणा माँगते हैं । गुरु-भक्ति और अस्त्र-विद्या में उसकी निष्ठा को भूलकर गुरु द्रोण उसके दाहिने हाथ का अंगूठा माँगकर क्रूर व्यवहार करते हैं । धनुर्विद्या में किसी का अर्जुन के समकक्ष या उससे भी समर्थ मानना द्रोणाचार्य को स्वीकार्य नहीं है । प्रिय शिष्य अर्जुन के अलावा एक निम्न जाति के व्यक्ति की निपुणता वे सहन न कर पाते है । हर समाज में हर युग में एकलव्य है जो अपने कर्म में निष्ठावान् और बली है । जाति में निम्न होने के कारण वह पूजनीय व्यक्ति नहीं हो जाता है । उसकी श्रेष्ठता जब जाति-प्रथा की कसौटी पर कसी जाती है । जाति-प्रथा रूपी मूल्यच्युति से अमानवीय सामाजिक संस्कार सिर उठाने लगता है । "इसके माध्यम से कृतिकार ने एक ऐसे वर्गहीन समाज का उल्लेख किया है, जिसमें धनी-निर्धन, आर्य-निषाद और गौर तथा श्याम रंग के कारण किसी का साथ अनुचित पक्षपात न किया जा सके ।"[1] एकलव्य के स्वर में सामाजिक अनैतिकता के विरुद्ध उठा हुआ विद्रोह यह है -

"शूद्र कहा हम मूल देश-वासियों को क्यों ?
इसलिए कि ये आर्य गौर वर्ण वाले हैं !
और हम श्यामवर्ण, वन्य-वेश धारा हैं ।
अत्याचार सहते हैं, इसलिए शूद्र है ?"[2]

---

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्य - डॉ. बनवारीलाल शर्मा - पृ. 112
2. एकलव्य - रामकुमार वर्मा - पृ. 197

जटिल वर्ण-व्यवस्था की समस्या के प्रति एकलव्य का यह सवाल समाज से है । एकलव्य आक्रोश भी करता है -

"हम हैं अछूत, तो हमारे अंग-स्पर्श से,
आर्यों के सु:अंग क्या कु-अंग बन जावेंगे ?"[1]

यह आक्रोश और विद्रोह आधुनिक व्यक्ति का ही है ।

शूद्रत्व का बोझ

"शबरी" (1977) नरेश मेहता का काव्य है । शबरी की कथा का आधार आदि कवि वाल्मीकि की रामायण से संबंधित है । रामायण के प्रमुख पात्रों के बीच शबरी साधारण पात्र है । "शबरी जिस क्षण वाल्मीकि के द्वारा राम-गाथा में प्रयुक्त होती है उस समय तक वह अत्यन्त उच्च भाव भूमि प्राप्त किये हुए होती है ।"[2] नरेश मेहता की "शबरी" की रचना के पीछे की मानसिकता भी शबरी की यही उदात्त भावना है । शबरी एक साधारण अन्त्यजा नारी है । वह निम्नवर्गीय होकर भी किस प्रकार आत्मोत्कर्ष कर सकी, यही इसका प्रतिपाद्य है । उच्च संस्कारवाले अभिजात ऋषि-मुनियों के मत में शूद्र जाति की शबरी को तपस्या और पूजा करने का कोई अधिकार नहीं । इसीलिए उसे समाज से ही दूर होना पडा -

"करना ही होगा वर्जित
दासी शबरी, जो शूद्रा"[3]

यह विचार उच्च स्तरीय लोगों का है । यह निर्णय एक व्यक्ति का नहीं,

---

1. एकलव्य - रामकुमार वर्मा - पृ. 198
2. शबरी-रचना की प्रासंगिकता - जगदीश गुप्त - पृ. 7
3. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 46

समाज का है । सामाजिक अनैतिकता के सामने अकेला व्यक्ति टिक नहीं सकता । समाज के इस तरह के सामूहिक निर्णय कभी-कभी स्वीकार करना पडता है । यही कारण है कि -

"और त्यागना पडा तपोवन
ऋषि को, शबरी को भी
कुटि जला, सब नष्ट किया,
शूद्रा की स्मृति को भी ।"[1]

समाज में प्रचलित वर्णाश्रम-व्यवस्था के कारण प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति का अलग-अलग कर्म निश्चित है । शूद्रों को दूसरों की सेवा करने का अवसर ही प्राप्त है । जाति के आधार पर किये हुए इस वर्गीकरण के संबंध में कवि के शब्द हैं -

"रक्षक औ पालक क्षत्रिय
थे वैश्य बने व्यापारी
श्रमिक-शूद्र थे, थी समाज
की यही व्यवस्था सारी ।"[2]

जब ऋषि मतंग द्वारा उसको आश्रम में प्रवेश मिला तब आश्रमवासियों ने उसे उच्छृंखलता कहकर मर्यादाओं का उल्लंघन समझा -

"यह तो उच्छृंखलता
इससे समाज टूटेगा,
मर्यादाएँ हटने से
सारा समाज बिखरेगा ।"[3]

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 49
2. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 4
3. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 43

यह सामाजिक मूढ़ता उस त्रेतायुग के आश्रमवासियों की हैं तो आधुनिक युग की भी है । इसका सच्चा दृष्टान्त है शबरी की कथा । कवि ने कहा है - "शबरी अपनी जन्मजात निम्नवर्गीयता को कर्म-दृष्टि के द्वारा वैचारिक ऊर्ध्वता में परिणत करती है ।"[1] मनुष्य अपने कर्म के द्वारा उचित सम्मान प्राप्त कर सकता है । उसके जीवन की सार्थकता, तपस्या के चरम साक्षात्कार के क्षण उसे अनुभव हुआ, जब श्रीराम उसको दर्शन देने के लिए कुटिया में आये । अन्त्यजा होने पर भी शबरी अपनी तेजस्विता से शिव-शक्ति का रूप ही है -

"शबरी अन्त्यज है तो क्या
वह भक्तिरूप है शूद्रा,
है तेज रूप वह केवल
शिव-शक्ति रूप है शूद्रा ।"[2]

कवि जब मानवीय दृष्टि से शबरी के साधारणत्व को असाधारणत्व परिवर्तित करता है तो उसमें निहित शबरी की विशिष्टता ही व्याप्त नहीं होती है । शबरी के प्रति किए गए अन्याय भी स्पष्ट होते हैं ।

भूमिपुत्र का आक्रोश

जगदीश गुप्त का "शम्बूक" इसी श्रेणी में आनेवाला कथाकाव्य है । "शम्बूक" के प्रकाशन के पूर्व जिन जिन कृतियों में शम्बूक की कथा उपलब्ध है उनमें शम्बूक एक अप्रमुख पात्र है । उनमें विशेष रूप से राम के व्यक्तित्व और विराटत्व ही अंकित है । लेकिन जगदीश गुप्त ने "शम्बूक" के द्वारा शम्बूक के चरित्र का ओजस्वी व्यक्तित्व चित्रित किया है । वास्तव

---

1. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 9
2. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 70

में शम्बूक शूद्र जाति का एक साधारण-सा व्यक्ति है । निम्न जाति के होने के कारण उसे अस्पृश्य समझा जाता है और उसकी तपस्या करने का हक पर प्रश्नचिह्न लगता है । इसमें वसिष्ठ, नारद, ब्राह्मण सभी उच्च-वर्ग के सदस्य शामिल हैं और वे उन्हीं के हितों की रक्षा करते है । नारद कहते है -

"विपिन जाकर
शूद्र-मुनि वध
जब करेंगे राम
विप्र-सुत
होगा तभी जीवित
सहज परिणाम ।"[1]

लेकिन यह वध सामान्य जीवन के निषेध का उदाहरण है । दण्डकारण्य में घोर तपस्या में लीन शूद्र शम्बूक का वध करके ब्राह्मण पुत्र को मृत अवस्था से बचाने का राम का संकल्प वास्तव में अन्याय है । यह अनैतिक दृष्टिकोण भी है । शम्बूक - वध राम के राजसी व्यक्तित्व के उज्ज्वल पक्ष को फीका करने में ही सहायक सिद्ध होता है । राम का प्रभुत्व उन्हें यह करने की प्रेरणा देते है -

"कर्म की जो भी व्यवस्था
सर्वजन स्वीकार्य
मानता उसका
किसी भी व्यक्ति को अनिवार्य ।"[2]

---

1. शम्बूक - जगदीश गुप्त - पृ. 12
2. शम्बूक - जगदीश गुप्त - पृ. 56

शूद्रों को सेवा करने का काम सौंपा गया है । इसके बदले तपस्या में लीन हो जाना पाप कर्म माना जाता है । इसलिए स्वीकृत व्यवस्था के विरुद्ध जब कभी-कोई प्रवृत्त हो तो वह दंड के योग्य है । समाज में मनुष्य ने वर्ण-व्यवस्था के इस तरह के नियम बनाये हैं । लेकिन जन्म से किसी का काम निश्चित नहीं होता ।

जाति-प्रथा से उद्भूत समस्याओं में व्यक्ति-स्वातंत्र्य का निषेध सब से प्रमुख है । व्यक्ति की स्वतंत्रता का निषेध एक सामाजिक विसंगति है । ऐसे एक आम व्यक्ति को जगदीशगुप्त ने शम्बूक के माध्यम से प्रस्तुत किया है । जाति-व्यवस्था के विरुद्ध शम्बूक का स्पष्ट विचार है -

"वर्ण से होगा नहीं अब त्राण
कर्म से ही मनुज का कल्याण
जन्म से निश्चित न होगा वर्ण" [1]

निम्न जातीय लोगों की कर्म करने की यह आस्था जब दूसरों के षड्यंत्र से दबायी जाती है तब विद्रोह का स्वर उठता है । यही विद्रोह शम्बूक के शब्दों में बुलन्द है -

"सभी पृथ्वी-पुत्र है तब जन्म से
क्यों भेद माना जाय" [2]

वर्ग सीमित जो व्यवस्था है वह शम्बूक को स्वीकार नहीं । इस कथन के द्वारा शम्बूक इस ओर संकेत करता है कि राम हो या शम्बूक, जन्म के आधार पर कोई भेद नहीं, दोनों पृथ्वी-पुत्र ही हैं । "शम्बूक अपने को भूमिपुत्र मानने में

---

1. शम्बूक - जगदीश गुप्त - पृ. 62
2. शम्बूक - जगदीश गुप्त - पृ. 49

गर्व का अनुभव करता है । वह मानता है कि जन्म से सब सामान है और उनमें से कुछ लोग अपने संस्कार से ब्राह्मण माने जाते हैं ।"[1] कवि इसी तथ्य से सहमत है कि सभी लोग जन्म से पृथ्वी-पुत्र है ; कर्म ही उसे क्षत्रिय, ब्राह्मण और शूद्र बनाता है । इसी वर्ण-व्यवस्था का गहन और जटिल ज्वाला में ज्वलित हर व्यक्ति धर्म और श्रम की अपेक्षा कर्म को ही प्रमुखता देता है । जगदीश गुप्त का शम्बूक यह भी प्रमाणित करता है कि केवल तपस्या ब्राह्मणों के वश की बात नहीं, शूद्र के लिए भी साध्य है । श्रेष्ठ कर्म के द्वारा एक साधारण व्यक्ति भी उच्च स्तर तक पहुँच सकता है ।

जाति-प्रथा ने हमारे समाज को जर्जर कर दिया है । इसलिए वह हमारे समाज में उपस्थित अनैतिकता है । आधुनिक कविता में कथा के इस चयन के माध्यम से जाति-प्रथा में निहित अमानवीयता को कवि दर्शाता है । अमानवीय पक्ष की जडों की खोज वे करते हैं । हमारे समाज की यह एक बुनियादी जर्जरता है । इसलिए शबरी संघर्ष करती है, एकलव्य का अंगूठा नष्ट होता है, शम्बूक की हत्या होती है और कर्ण की अवहेलना होती है । अमानवीयता के ये ज्वलंत उदाहरण हैं । दलित पीडित एवं कुचले हुए ये पौराणिक पात्र कथाकाव्यों के माध्यम से सामाजिक प्रभुत्व के विरुद्ध उठ खडे होते हैं । वे अपने को जाति प्रथा के जंजीरों में जकडे रहना नहीं चाहते । इसके बदले उन जंजीरों को तोड-फोडकर स्वतंत्रता की हवा में साँस लेना पसन्द करते हैं । इसलिए कथाकाव्यों के पात्र आधुनिक व्यक्ति के प्रतिनिधि हैं । वे निम्नवर्गीयता की चिन्ता से पीडित नहीं है । वे अपने कर्म पर अटल विश्वास रखनेवाले है ।

---

1. दक्षिण भारत त्रैमासिक पत्रिका - 1992, अंक-67 - पृ. 24

वास्तव में सामाजिक विसंगतियों के मध्य अपने व्यक्तित्व की पहचान में संलग्न ये पात्र औसत आधुनिक मनुष्य के प्रतीक हैं । इसलिए उनकी पौराणिकता नष्ट हो जाती है । सामाजिक तनावों और द्वन्द्वों से दबे हुए मनुष्यों के रूप में ये प्रतिपादित है । यह सामाजिक चिन्तन की परिणति है । सामाजिक विसंगतियों के बीच विद्रोह की एक रजत रेखा को काफ़ी सूक्ष्मता के साथ कवियों ने व्यंजित किया है ।

मूल्य-विघटन की स्थितियाँ

मूल्य सघन सामाजिक दृष्टि है । वह व्यक्तिबद्ध दृष्टि है । पर उसकी मूल्यवत्ता सामाजिकता में प्रासंगित होती है । मूल्य-संबंधी नैतिक-अनैतिक दृष्टि का संघर्ष समाज में निरंतर चलता है । यह संघर्ष आधुनिक कविता की एक प्रमुख विषयवस्तु है । नई-कविता में मूल्य-विघटन के प्रति क्षोभ और आक्रोश मुखर है । कथाकाव्यों के कथाओं के माध्यम से आधुनिक कवियों मूल्य-विघटन को आरोपित किया है ।

मूल्य विघटन का महाभारत

अंधायुग (1954) धर्मवीर भारती का प्रमुख कथाकाव्य है जिसका आधार उन्होंने महाभारत के उत्तरार्द्ध से ग्रहण किया है । अतः यह महाभारत युद्ध के अंतिम दिन की घटना पर आधारित कथाकाव्य है । "अंधायुग" में सब से पहले मूल्य-विघटन की स्थिति का सच्चा चित्र प्रहरियों के द्वारा प्राप्त होता है । धर्म और अधर्म के पौराणिक प्रतीकों के रूप में भारती ने पाँडवों और कौरवों को देखा नहीं । युद्ध के बीच कई बार धर्म के रक्षक कहनेवाले पाँडवों के पक्ष से मूल्य का हनन दर्शाता है । यही खंडित मानसिक स्थिति युधिष्ठिर के अर्द्धसत्य का कारण बनाती है और

बाद में अश्वत्थामा प्रतिहिंसा की मूर्ति बन पाता है । इस मूल्य-विघटन और मूल्य-हनन के संबंध में प्रहरियों के बीच में बातचीत हुई -

"टुकडे टुकडे बिखर चुकी मर्यादा
उसके दोनों ही पक्षों ने
पाँडव ने कुछ कम कौरव ने कुछ ज़्यादा ."[1]

घोर-युद्ध के संदर्भ में दोनों पक्षों से मूल्य का संरक्षण नहीं हो सका । मर्यादा की डोरी उलझ जाती है । भारती पुराण कथा के माध्यम से मूल्यांधता के आधुनिक संकट को व्यक्त कर सके हैं ।"[2] "अंधायुग" में कवि ने कई पात्रों द्वारा कई स्थलों में विघटित मानव-मूल्यों की अवतारणा की है । गाँधारी, अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर आदि किसी न किसी संदर्भ में किसी न किसी प्रकार विघटित मूल्यों के भोक्ता है । गाँधारी विश्वास करती है कि सिर्फ कृष्ण के कारण ही अपने सौ पुत्रों की मृत्यु हुई है । यदि कृष्ण पाँडवों के पक्ष में न होता तो कौरवों की यह दयनीय पराजय नहीं होती । इससे अद्भुत मानसिक विभ्रांति से प्रभु को भी वह धिकारती है । गाँधारी महाभारत युद्ध का पूर्ण दायित्व कृष्ण की अनैतिकता पर आरोपित करती है और अपनी पीडा एवं क्षोभ इस प्रकार व्यक्त करती है -

"जिसको तुम कहते हो प्रभु
उसने जब चाहा
मर्यादा को अपने ही हित में बदल लिया ।
वंचक है ।"[3]

---

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. ।।
2. धर्मवीर भारती का साहित्य सृजन के विविध रंग - चन्द्रभानु सोनवणे - पृ. 74
3. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 19

गाँधारी मर्यादाओं और नियमों को अपनी इच्छा के अनुसार बदलनेवाले एक षड्यंत्रकारी के रूप में कृष्ण को देखती है । युद्ध के बीच में कई बार कृष्ण द्वारा पाँडवों के पक्ष से युद्ध नियम तोडे गये है । इस लिए गाँधारी प्रभु को शाप भी देती है -

"किसी घने जंगल में
साधारण व्याघ्र के हाथों मारे जाओगे
प्रभु हो
पर मारे जाओगे पशुओं की तरह"[1]

मर्यादा को तोडनेवाले और एक पात्र युधिष्ठिर है जिसने अपने स्वार्थ के लक्ष्य में अर्द्ध-सत्य का आश्रय लिया जिससे अश्वत्थामा के अन्दर का मूल्य ध्वंसित होता है । "अर्द्धसत्य की यह पार्शविकता उसके विवेक को नष्ट कर डालती है और अश्वत्थामा के लिए वध नीति न रहकर मनोग्रन्थी बन जाती है ।"[2] यही कारण है अश्वत्थामा ब्रह्मास्त्र के प्रयोग से धरती को वन्ध्या प्रदान करता है -

"यह अचूक अस्त्र अश्वत्थामा का
निश्चित गिरे जाकर
उत्तरा के गर्भ पर
वापस नहीं होगा ।"[3]

निजी स्वार्थ के लिए अन्धे शासकों द्वारा अपनाये गये अर्द्धसत्यों का परिणाम इसी तरह भयानक है । लेकिन युद्ध का परिणाम तीक्ष्ण और प्रखर होने पर राज्य-भोग की लालसा शासकों को अन्धा बनाती है । सौ पुत्रों के नष्ट

---

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 78
2. नवीन भावबोध के प्रबन्धकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना - प्रेमचन्द मित्तल -पृ. 179
3. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 74

होने पर भी अन्धे धृतराष्ट्र की तृष्णा शमित नहीं होती -

"अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र
यदि गिरा है उत्तरा पर
तो कौन जाने एक दिन युधिष्ठिर
सब राजपाट तुम को ही सौंप दे ।"[1]

भारती आस्थावान् कवि है । विघटित मानव मूल्यों के बीच से ही मर्यादा की पुनर्स्थापना चाहता है । अंधायुग की मूल संवेदना यही है । कवि ने भूमिका में स्पष्ट किया है कि - "कुण्ठा, निराशा, रक्तपात, प्रतिशोध, विकृति, कुरूपता, अन्धापन - इनसे हिचकिचाना क्या, इन्हीं में तो सत्य के दुर्लभ कण छिपे हुए है ।"[2] सत्य की इन्हीं दुर्लभ कणों की खोज में भारती सचेत है । दरअसल आधुनिक कविता में मूल्य-विघटन की भीषण-चरमराहट जहाँ सुनायी पडती है वहीं नवीन जीवन मूल्यों और मानवीय साक्षात्कार की संभावनाओं के प्रति आस्थापूर्ण मनोकामना भी है । खंडित मानव-मूल्यों की प्रतिक्रिया के सिलसिले में "प्रभु की मृत्यु" को लें तो स्पष्ट हो जाएगा कि मूल्यविघटन के प्रति कवि की प्रतिक्रिया कितनी आस्थावादी है -

"मेरा दायित्व वह स्थित रहेगा
हर मानव मन के उस वृत्त में
जिसके सहारे वह
सभी परिस्थितियों का अतिक्रमण करते हुए
नूतन निर्माण करेगा पिछले ध्वंसों पर ।"[3]

---

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 75
2. अंधायुग - भूमिका - धर्मवीर भारती - पृ. 3
3. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 99

वृद्ध याचक के द्वारा प्रभु का कथन मानव के प्रति भारती की आस्थावादी दृष्टि का परिचायक है । प्रभु की मृत्यु को कवि ने प्रभु का रूपान्तर कहा है -

"मरण नहीं है ओ व्याध
मात्र रूपान्तर है वह"[1]

इस युग में शेष जो हैं उन लोगों को कृष्ण ने अपना दायित्व सौंपकर नूतन निर्माण में अडिग आस्था प्रकट की है । वर्तमान में व्याप्त बिखराव, टूटन एवं अंधेपन के कुहासे से मानव की संरक्षा करते हुए सामाजिक मर्यादा पर बल देना कवि का लक्ष्य है ।

इतिहास से बाहर

कनुप्रिया (1959) भारती का दूसरा कथाकाव्य है जिसकी रचना राधा-कृष्ण की प्रेम-कथा के पौराणिक संदर्भ के आधार पर हुई है । इसकी नायिका राधा है । युद्ध और प्रेम के बीच अपने जीवन की सार्थकता की खोज में व्यस्त कनुप्रिया के संबंध में रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा है - "यह जटिल संवेदना है - व्यक्ति और इतिहास के पारस्परिक संबंध की, महायुद्ध के समक्ष एकाकी मनुष्य की अवशता की ।"[2] सचमुच इतिहास-निर्माता कनु के सामने राधा बेबस और विवश हो जाती है । कृष्ण के प्रति "कनु मेरा लक्ष्य है मेरा आराध्य, मेरा गन्तव्य"[3] कहनेवाली राधा बाद में खीझकर कहती है -

"कान्हा मेरा कोई नहीं है, कोई नहीं है
मैं कसम खाकर कहती हूँ
मेरा कोई नहीं है।"[4]

---

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 99
2. कविता-यात्रा - रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ. 72
3. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 34
4. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 35

यह खीझ राधा के आहत हृदय से निकलती है । इसके पीछे राधा की संघर्षयुक्त मानसिकता है । इसलिए वह पूछती है -

"सखी को तुमने बाँहों में गूँथा
पर उसे इतिहास में गुँथने से हिचक क्यों गये प्रभु ।"[1]

राधा प्रेम के क्षण में नहीं, समय के इतिहास-निर्माण में भी भागीदार बनना चाहती है । राधा आधुनिक नारी है । "भारती ने आधुनिक जीवन में संबंधों के बिखराव का स्थापत्य रूपायित किया है और मानव मन को जडीभूत करनेवाले आशंका और अनास्था जैसे तत्वों को प्रकट किया है ।"[2] वास्तव में राधा के माध्यम से भारती ने सामाजिक जीवन के मूल्य-विघटन को प्रस्तुत किया है । कवि नवीन मूल्यों की स्थापना के प्रति सजग है । कनु और राधा का संबंध अटूट है । इसलिए कवि राधा के सहयोग के बिना इतिहास का निर्माण असंभव मानते है ।

"संशय की एक रात" (1962) नरेश मेहता का एक श्रेष्ठ कथाकाव्य है । इसमें आधुनिक व्यक्ति की संवेदनाओं से संपृक्त पात्र राम है । "नरेश मेहता ने "संशय की एक रात" में राम को उनके रामत्व से अलग एक संशयशील तथा प्रश्नाकुल व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है ।"[3] नरेश मेहता ने "संशय की एक रात" के प्रसंग के संबंध में कहा है - "संशय की एक रात" में श्री नरेश मेहता की प्रसंग-दृष्टि मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आन्तरिक संघर्ष को मानवीय संदर्भ से जोड सकने से ओत-प्रोत है ।"[4] उपर्युक्त अभिमतों

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 78
2. धर्मवीर भारती: कनुप्रिया तथा अन्य कृतियाँ - ब्रजमोहन शर्मा - पृ. 43
3. मिथक और आधुनिक कविता - शंभुनाथ सिंह - पृ. 184
4. संशय की एक रात - प्रसंग-दृष्टि - नरेश मेहता - पृ. 14

UNIVERSITY OF COCHIN

पर विचार करने पर लगता है कि युद्ध से जनित संघर्ष और द्वन्द्व के बीच में राम संशयग्रस्त है ।

मूल्य विघटन और मूल्य-स्थापना का द्वन्द्व

आज जिस युग में हम जी रहे हैं उसमें मूल्यों की प्रतिष्ठा के स्थान पर मूल्य-विघटन की स्थिति अधिक सच है । राम-रावण युद्ध की पूर्व संध्या में युद्ध की अनिवार्यता को लेकर राम के मन में उदित संशय का चित्र इस कथाकाव्य का विषय है । राम का व्यक्तित्व खण्डित व्यक्तित्व का सही उदाहरण है । युद्ध की अनिवार्यता से नहीं, युद्ध की भीषण परिणति से राम चिंतित है । पिता की मृत्यु, माताओं का वैधव्य, ऊर्मिला के विरह, जटायु का मरण, लक्ष्मण का वनवास, इन सब के लिए राम अपने को निमित्त मानते है - वे अपने को कोसते है -

"पिता की मृत्यु
विधवा जननियाँ
कौन है इनका निमित्त
पत्नी का हरण
पिता के मित्र जटायु का मरण
मेरेलिए "[1]

द्विविधाग्रस्त मानसिकता इन शब्दों में प्रतिफलित है । वह शंकाओं से घिरा हुआ है । फिर भी अनिवार्य युद्ध की चिंता उसे ग्रसित करती है । "संशय की एक रात" के विभीषण भी विघटित मूल्यों को लेकर चिन्ताधीन है । विभीषण के लिए राम-रावण युद्ध अनिवार्य है । लेकिन राष्ट्र के प्रति अपने

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 20

दायित्व के संबंध में उसे संशय है । इसीलिए वह कहता है -

"मैं भी युद्ध की अनिवार्यता को मानता हूँ
किन्तु
अपने राष्ट्र के प्रति
क्या यही कर्तव्य है मेरा ?
उस पर हो रहे
इस आक्रमण में साथ दूँ ?"[1]

विभीषण का यह खंडित व्यक्तित्व हर युग की समस्या है । सामाजिक अन्याय के विरुद्ध हर युग में व्यक्ति सचेत है । लेकिन दुर्बलता के कारण असहाय बन जाता है । संशयग्रस्त राम को पिता और जटायु की प्रेरणा एक नयी स्फूर्ति और नयी चेतना प्रदान करती है -

तुम्हें अपनी अनास्था से नहीं
संशयी व्यक्तित्व से भी नहीं
तुम्हें लड़ना युद्ध है
असत्य से ।[2]

यह पश्चात्ताप ग्रस्त राम के संशय का खंडन है । इसमें जो आदेश है, प्रेरणा है वह ऐतिहासिक सत्य की ओर संकेत भी है । अनास्था से संशयी व्यक्तित्व के साथ शंकाकुल रहने के बजाय असत्य से युद्ध करना है । यह सिर्फ एक प्रेरणा नहीं, नये युग का सन्देश है । व्यक्ति को अपने खंडित व्यक्तित्व की गुफाओं में बन्द नहीं होना चाहिए । उसे सामाजिक असत्य और अनीति के खिलाफ़ लड़ना है । इस कथाकाव्य में लक्ष्मण और हनुमान संशय की अप्रासंगिकता पर

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 72
2. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 47

बल देते हैं । लक्ष्मण युद्ध से पीड़ित और संशयग्रस्त नहीं -

अवधि है अयोध्या की
सीता की प्रतीक्षा है
महाराज रघु की ही प्रतिकृति है ।
तब इस संशय का
क्या है प्रयोजन ?
देव ![1]

हनुमान भी सीता-अपहरण को प्रजा की स्वतंत्रता का निषेध कहते है । सीता राम की पत्नी है, कौसल्या की पुत्रवधु है, लेकिन अयोध्या के कोटि-कोटि प्रजाओं का प्रतीक है -

सीता-माता
भले ही राम की पत्नी हो
किसी की वधू
किसी की दुहिता हों
पर
हमकोटि-कोटि जनों की तो केवल
प्रतीक है ।[2]

विभाजित व्यक्तित्व की समस्या नये युग की समस्या है । संशय व्यक्ति को तोडता है । लेकिन कभी-कभी वैयक्तिक निर्णय सामूहिक निर्णय में बदल जाता है । फिर भी राम के मन में अभी भी प्रश्न शेष है -

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 12
2. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 64

ओ मेरे आधे व्यक्तित्व के
अधूरे मन !
इन गूँगे संशयों,
अधूरी शंकायें,
बहरे प्रश्नों का क्या होगा ?[1]

राम सामाजिक निर्णय के आगे नतमस्तक है, किन्तु विवशता उसे घेरती है । विवशताजन्य यह प्रश्न प्राचीन है और आधुनिक भी । राम का यह सवाल "प्रश्नों का क्या होगा ? क्या होगा ? " आधुनिक युग के हर एक व्यक्ति से जुड़ा सवाल है ।

मूल्यहीनता का भटकाव

"एक कंठ विषपायी" (1965) आधुनिक दौर की एक प्रमुख काव्यकृति है । दुष्यन्त कुमार ने शिव की कथा का ग्रहण किया है । दक्ष-यज्ञ में शंकर को आमंत्रित न करने पर सती के आत्मदाह की कथा इस काव्य में स्वीकृत है । इस कारण से शिव और देवताओं के बीच में युद्ध की समस्या उपस्थित होती है । अंत में शिव के कन्धों पर लिपटे हुए सती के शव को खंड-खंड करके विष्णु ने परंपरा के मोह से शिव को मुक्त किया । लेकिन कवि ने "सर्वहत" नामक पात्र की उद्‌भावना करके देवताओं की युद्धलिप्सा की ओर इशारा किया है । वास्तव में सर्वहत एक काल्पनिक पात्र है जो शासकों की राज्य-लिप्सा और युद्ध-मनोवृत्ति से त्रस्त जनता का प्रतीक है । "सर्वहत" की कल्पना कवि की मौलिक सृष्टि है । इस काव्य की रचना के मूल उद्‌देश्य के संबंध में कवि ने कहा है - "जर्जर रूढ़ियों और परंपरा के शव से

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 54

चिपटे हुए लोगों के संदर्भ में प्रतीकात्मक रूप से आधुनिक पृष्ठभूमि और नये मूल्यों को संकेतित करने के लिए इस कथा में पर्याप्त सामर्थ्य है तथा इस पर एक खण्डकाव्य लिखा जा सकता है ।"[1] सचमुच दुष्यंत कुमार का शिव जर्जर रूढ़ियों और परंपरागत मिथ्या-धारणाओं को वहन करनेवाले आधुनिक व्यक्ति का प्रतीक ही है ।

"एक कंठ विषपायी" के दक्ष, शंकर और सती खंडित मानव-मूल्यों के वाहक हैं । अधिकार-वाँछा हर युग की सामाजिक समस्या है । अधिकार का मोह हर व्यक्ति की उम्मीद है । यह उम्मीद हर शासक को अनैतिक तथा अमानवीयता की ओर ले जाती है । दक्ष ने इसी मोहांधता के कारण ही अपने जामाता शंकर को यज्ञ में आमंत्रित नहीं किया । दक्ष अपने को श्रेष्ठ और उच्च मानते है -

हर अवसर
हर आयोजन पर
अपनी अवहेलना देखकर
शंकर का देवत्व स्वयं ही झुलस उठेगा ।[2]

यह दक्ष के अहंवादी मान्यता का प्रमाण है । वीरिणी के बार-बार समझाने पर भी दक्ष अपने निर्णय पर अड़े रहता है । दक्ष सामान्य जनविरोधी शासक का प्रतीक है । सती अपने अधिकारों के लिए तर्क करती है । लेकिन दक्ष के अचंचल निर्णय के आगे वह विवश हो जाती है । लेकिन स्वाभिमानी सती अपने को यज्ञाग्नि में होम करके चुनौती देती है -

---

1. एक कंठ विषपायी - दुष्यन्त कुमार - पृ. 7
2. एक कंठ विषपायी - दुष्यन्त कुमार - पृ. 15

"भस्म हो गया उसमें
सुन्दर सर्वांग चन्द्र और वर्ण
और दूसरे ही पल
भगवती सती का अधझुलसा शव
सामने पड़ा था ।"[1]

सती का आत्मत्याग एक साधारण व्यक्ति का आत्मत्याग है । एक साधारण व्यक्ति की आकांक्षाओं का त्याग है । सती के आत्मत्याग अपने समय के विघटित मूल्यों की परिणति है । यद्यपि, सती द्वारा अधिकारों की मांग मानवीय अधिकारों की माँग है फिर भी उन अधिकारों की सिद्धि के लिए लड़ने के बदले वह स्वयं जीवन या त्याग होती है । आत्मत्याग में मूल्य-सृजन की सहजता नहीं है । शिव के व्यवहार में भी वास्तविक चुनौती नहीं है । क्योंकि वह अधिक व्यक्तिबद्ध है -

परिवर्तन पर होते हैं
विक्षुब्ध हृदय में
सुन्दर और सनातन कहकर
शव से ही चिपके रहते है ।[2]

विक्षुब्ध व्यक्ति के मन का सन्तुलन नष्ट हो जाता है । उसकी आँखों में प्रियजन का शव भी सुन्दर और सनातन लगता है । शव समाज के गलित मूल्यों का प्रतीक हैं । ऐसे गलित मूल्यों को वहन करनेवाले स्थान पर, अर्थात् विघटित मूल्यों के बदले नये मूल्यों की स्थापना करना कवि चाहता है ।

---

1. एक कंठ विषपायी - दुष्यन्त कुमार - पृ. 39
2. एक कंठ विषपायी - दुष्यन्त कुमार - पृ. 91

इसलिए शिव के कंधों पर पड़े शव को खंड-खंड करके विष्णु परंपरागत मोह से शंकर को मुक्त करते हैं -

शिव के कंधों पर पड़ी हुई भगवती सती के
शव को खण्ड-खण्ड कर पल में
दिशा-दिशा में छितरा देंगे ।
जहाँ-जहाँ वे खण्ड गिरेंगे
वहाँ सत्य के नये-नये अंकुर उपजेंगे ।[1]

शंकर के प्रति विष्णु का विश्वास और उसकी आस्था एक नये युग की स्वीकृति है । कवि की दृष्टि सार्वजनिक मूल्यों की प्रतिष्ठा में टिकी है । देवों के बीच युद्ध होने पर लाखों लोगों की हत्या हो जाएगी । विष्णु यह नहीं चाहते । इस संदर्भ के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक कवि टूटे हुए मानव-मूल्यों के मध्य मनुष्य को छोड़ना नहीं चाहता ।

मूल्यान्वेषण का नया रास्ता

"एक पुरुष और" (1974) डॉ. विनय की मूल्यान्वेषी काव्य रचना है । मेनका-विश्वामित्र की कथा को अपनी मौलिकता से कवि ने "पहचान के संकट" की समस्या को कथ्य बनाया है । इसमें कवि ने मूल्यान्वेषण को उजागर किया है । कवि में सामाजिक विसंगतियों से मुक्ति पाने की अदम्य इच्छा है । परंपरागत मूल्यों के खंडन एवं नवीन मूल्यों की स्थापना कवि अपना दायित्व समझता है । कवि स्वयं इस तथ्य को स्वीकार करता है कि "यह काव्य आज के जीवन की उस मूल समस्या पर विचार

---

1. एक कंठ विषपायी - दुष्यन्त कुमार - पृ. 136

करता है जो एक ओर व्यक्ति को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए सजग करती है । दूसरी ओर समाज के नैतिक मूल्यों के साथ सीधे टकराव की स्थिति में, कहीं अन्दर ही अन्दर एक ऐसे बोध को जगाती है, जिससे वह अपने लिये नये मूल्यों की स्थापना करता है ।"[1] विघटित मूल्य व्यक्ति को भटकने देते हैं । भटकते हुए नक्षत्र की भाँति विश्वामित्र परेशान होता है । परेशानी की इसी स्थिति में वह भीतर ही भीतर कुछ पाने की इच्छा रखता है -

छोटा होता आदमी
बहुत छोटा हो जाता है
लेकिन इससे पहले कि वह
टूटकर बिखर जाए
सड़कों पर
कभी-कभी जागता है स्वत्व
अपने को पाने का ।[2]

इस संदर्भ के संबंध में यह सही है कि - "डॉ. विनय की यह आदमी संबंधी कवितात्मक टिप्पणी भी उनकी मध्यवर्गीय मानसिकता द्वारा व्याख्यायित टिप्पणी ही है । सड़कों पर टूटकर बिखर जाने की यह आशंका उसी मानसिकता के आत्म निखराव का प्रतिफलन है ।"[3] वास्तव में कवि की मध्यवर्गीय मानसिकता आगे भी झलकती है । साथ ही साथ व्यर्थताबोध की चिन्ता भी उसे सताती रही -

---

1. एक पुरुष और - पूर्व कथन - डॉ. विनय
2. एक पुरुष और - डॉ. विनय - पृ. 22
3. संचेतना - अंक 42 - संपादक - महीप सिंह - पृ. 59

"व्यर्थ हो गया युद्ध मार काट !
असत्य हो गई भाग-दौड
कभी विराट और कभी लघु
देवों के चक्र में खो गई पूर्णता" [1]

विराट और लघु के बीच में पूर्णता खो गयी है । अर्थात् उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के मध्य मध्यवर्गीय विचारधारा नष्ट हो गयी । उन्हें नेतृत्व देने के लिए कोई नहीं है । वह मूल्य-संकट की स्थिति है । तब व्यक्ति को स्वयं अपने स्वत्व की, अपने अधिकारों के प्रति सजग रहना पड़ता है । यह सजगता नये मूल्यों की खोज में परिणत होती है । "एक पुरुष और" का विश्वामित्र मूल्यान्वेषक मात्र नहीं, मूल्यों के संस्थापक भी है । कवि विश्व-चेतना के प्रति आस्थावान् होकर उसे आगे बढाने का सन्देश देते है -

एक चेतना है जो सब कुछ को
अपने में घुमाकर
बना रही है विश्व ।
विश्व को चलने दो
बढने दो । आगे । और आगे । सिर्फ आगे ।" [2]

मेनका भी नये मूल्यों के अन्वेषण में लीन है । वह साधारण स्त्री के समान सामाजिक मान्यताओं एवं संबधों को नहीं चाहती । पत्नीत्व, आश्रय मातृत्व, सौभाग्य इन सभी को वह संस्कार की बनावटी मान्यताएँ मानती है -

---

1. एक पुरुष और - डॉ. विनय - पृ. 23
2. एक पुरुष और - डॉ. विनय - पृ. 119

मेनका को नहीं चाहिए आश्रय, पत्नीत्व और सौभाग्य
वह इन सब स्थितियों से मुक्त
एक गहरे एकान्त में बनी रहना चाहती है स्त्री ।[1]

वह इन सभी बन्धनों से मुक्त होना चाहती है । अतः "एक पुरुष और" में एक ओर मूल्यगत संकट के विषाक्त परिवेश की व्यंजना है तो दूसरी ओर पात्रों के माध्यम से नये मूल्यों की स्थापना अंकित है ।

युग सत्य की अन्तर्यात्रा

सूर्यपुत्र (1975) महाभारत की कथा के कर्णकथा के आधार पर रचित जगदीश चतुर्वेदी का कथाकाव्य है । इसका उल्लेख पहले हुआ है । महाभारत के युगान्तरकारी पात्र कर्ण के द्वारा कवि ने आधुनिक मनुष्य के जीवन की सामाजिक विसंगति और उसकी अस्मिता को संकट से जूझती चेतना और उसकी मानसिक द्विधा व्यक्त की है । "सूर्यपुत्र", "सूतपुत्र" कैसे बन पाया ? चिरंतन मानव मूल्यों के अपमान की परिणति क्या है ? आदि की व्याख्या इस कथाकाव्य में हुई है । यह "मूल्यान्वेषण एवं युग-सत्य को उजागर करनेवाली काव्यकृति है ।"[2]

सामान्य जीवन में संकट की स्थिति में अकेलापन का एहसास स्वाभाविक है । अकेलापन एक मानसिक अवस्था है जिसमें व्यक्ति को सामाजिक परिवेश में अजनबीपन का अनुभव होता है । समाज से उसका संबंध कटा हुआ दिखाई देता है । "सूर्यपुत्र" का कर्ण अपने अस्तित्व की तलाश में व्यक्त है -

---

1. एक पुरुष और - डॉ. विनय - पृ. 93
2. नयी कविता के प्रबन्धकाव्य शिल्प और जीवन दर्शन - उमाकान्त गुप्त - पृ. 49

"एक नितान्त अकेलापन का एहसास उसे सदैव कचोटता है और उसका व्यक्तित्व और अधिक प्रखर, कर्मठ और दुर्धर्ष बनता जाता है ।"[1]

किन्तु कर्ण रहता था उन्मन और खोज-सा
मानो सुलझाता हो कोई अंतस रहस्य[2]

अंगराज बनने के बाद भी तन-मन को कचोटनेवाली किसी समस्या से वह उन्मन - सा रहता है । कर्ण का यह चित्र सहज है । वह अपने भीतर तिरस्कार का अनुभव करता है । सारी पीडा को वह झेलता है । लेकिन वह विद्रोह नहीं कर सकता । इस प्रसंग के संबंध में कहा गया है "नायकोचित गरिमा से मंडित यह चरित्र प्रतिशोध की भावना से आहत तो होता है पर प्रतिक्रिया रूप में उसका प्रदर्शन नहीं कर पाता है ।"[3] वास्तविकता यह है कि आभिजात कहलानेवालों से प्राप्त अवहेलना और अपमान उसे अकथनीय पीडा भोगने को विवश करते है । मूल्य-विघटन का पक्ष इसी कथा संदर्भ में विवृत होता है ।

मूल्य-विघटन का नया स्वर

महाप्रस्थान (1975) श्री नरेश मेहता का काव्य है जिसमें उन्होंने पाँडवों के निर्वाण की कथा को आधुनिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है । मूल कथा महाभारत के अंतिम अंश से स्वीकृत है । पाँडव द्रौपदी के साथ महाप्रस्थान करते हैं । यह तो पौराणिक कथा है । लेकिन इसमें प्रयुक्त राज्य-व्यवस्था मानवीय अस्तित्व और युद्ध जनित वास्तविकता की व्यंजना नरेश मेहता की आधुनिक दृष्टि की उपज है । उपर्युक्त स्थिति से जुडे मूल्य बोध को भी कवि ने अपना विषय बनाया है । इसके मुख्य पात्र युधिष्ठिर

---

1. सूर्यपुत्र -कविकथन - जगदीश चतुर्वेदी - पृ. 8
2. सूर्यपुत्र -जगदीश चतुर्वेदी - पृ. 53
3. जगदीश चतुर्वेदी : विवादास्पद रचनाकार - कमल किशोर गोयनका -पृ. 39।

विगत स्मृतियों में डूबकर अनासक्त होकर स्वर्गारोहण के लिए प्रस्थान रहे हैं -

कँपते हाथों से टेक-टेक कर
वृद्ध युधिष्ठिर बढे जा रहे
सुधियों-स्मृतियों से आहत, बेष्टित[1]

युधिष्ठिर के समान भीम, अर्जुन, द्रौपदी आदि विगत दिनों के अमानवीय और अनैतिक कर्मों को लेकर व्याकुल है । विजय और राज्यप्राप्ति उन्हें निरर्थक लगती हैं । भीम सोचता है -

"पर व्यर्थ गया
वह दुर्योधन की जँघा पर करना प्रहार
केवल ललाट पर लगा रहा
उस ओर अनैतिकता का
लाँछन
क्या हुआ दुःशासन के
हृदय-रक्त का पान"[2]

छल से दुर्योधन की जँघा पर प्रहार करके मारना और दुःशासन के हृदय-रक्त को पीना भीम के लिए आज व्यर्थ कर्म लगता है । दोनों घटनाएँ भीम के चरित्र के लिए कलंक है । अब वह अपमानित अनुभव करता है । अर्जुन भी अपने राज्यमदवाले मस्तक झुकाकर क्षीण एवं शिथिल गाण्डीव के साथ संकल्प-विकल्पों में मग्न होकर चलता है । अर्जुन की स्मृतियों में महाभारत युद्ध के कारण युद्ध की भीषण परिणति एक एक करके चलचित्र की भाँति दिखती है । युद्ध के बाद क्या पाया, क्या खोया, इसका चित्र अर्जुन के शब्दों में व्यक्त है ।

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 45
2. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 46

हस्तिनपुरी के प्रति अर्जुन चिन्तित है -

कैसा श्मशान तब जगा
सब अनाथ विकलांग हो गये
वंश के वंश
धरा से नष्ट हो गये,
जयी-पराजित सभी अकिंचन[1]

किसी भी युद्ध का अंत यही होता है । द्रौपदी की कराह में युद्ध की नृशंसता और मूल्य-विघटन के संदर्भ स्पष्ट है -

महाप्रस्थान के इस पथ पर
पतियों को खोकर
प्रताडिता एकाकी हो गयी हूँ
जैसे यज्ञ संपन्न हो जाने के बाद
अकेला यज्ञयूप
उपेक्षित
गड़ा हुआ छोड दिया गया हो[2]

पाँडवों के होते हुए उनकी प्रियपत्नी द्रौपदी उपेक्षिता बन गयी है । उसे आश्रय देने के लिए कोई नहीं रह गया है ।

युधिष्ठिर विजयी होकर भी पराजित और अपमानित रूप में प्रस्तुत हुए है । जीवन-मूल्यों पर अटल विश्वास होने के कारण उसे राज्य की कामना नहीं होती । वे अपने भाई-बन्धुओं का नाश करके

---

1. महाप्रस्थान -नरेश मेहता - पृ. 57
2. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 87

राज्य भी नहीं चाहते । मूल्य-विघटन से वे इतने परेशान है कि अपने भाई भीम से कहते हैं -

धर्म के मूल्य पर
मैं स्वर्ग भी अस्वीकार कर सकता हूँ भीम ।[1]

लघुमानव की मूल्य दृष्टि

"प्रवाद पर्व" (1977) का सृजन नरेश मेहता ने "रामायण" के एक मार्मिक प्रसंग के आधार पर किया है । सीता के चरित्र पर एक धोबी द्वारा लगाई गई लांछन के प्रसंग के आधार पर यह काव्य रचित है । इस तर्जनी से उठी समस्या अंत में सीता के निर्वासन में समाप्त हो जाती है । इसमें शासक एक साधारण व्यक्ति के पक्ष में खडा होता है । "प्रवाद पर्व के राम साधारण जन की स्वतंत्रता के समर्थक एवं प्रजातांत्रिक मूल्यों के विश्वासी है ।"[2] यह तो सच है कि एक अनाम साधारण जन की तर्जनी को राजद्रोह के रूप में राम ने स्वीकार नहीं किया । सामान्य व्यक्ति की अभिव्यक्ति भी राम की शासन व्यवस्था में सुरक्षित है - "राज्य व्यवस्था के अनुसार उसे अपराधी, अनुत्तरदायित्वपूर्ण और राजद्रोही करार दिया जाता है । यही प्रवाद है कि वह अनाम और साधारण जन राम की दृष्टि में न तो अपराधी है, न राजद्रोही ही है किन्तु राज्य-परिषद की निगाह में वह अपराधी है - दण्ड का अधिकारी है ।"[3] इसी विवाद से ही कथा का विस्तार होता है । इतिहास बदल जाता है । राजतंत्र की नीति के सामने वह तर्जनी प्रश्न उठाती है ।

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 99
2. नयी कविता के प्रबन्धकाव्य: शिल्प और जीवन दर्शन - उमाकान्त गुप्त - पृ. 43
3. नरेश मेहता का काव्य - प्रभाकर शर्मा - पृ. 126

व्यक्ति चाहे वह राजपुरुष हो या
इतिहास पुरुष अथवा
पुराण-पुरुष
मानवीय देश कालता से ऊपर नहीं होता राम
इतिहास से भी बडा मूल्य है
सत्य ! परात्पर सत्य ।[1]

सत्य का निषेध कोई नहीं कर सकता । राम चाहे एक इतिहास पुरुष हो या पुराण पुरुष । उसे सत्य के आगे नतमस्तक होना पडता है । अतः एक सामान्य व्यक्ति के अभिमत का भी आदर किया जाता है । 'प्रवादपर्व' के राम न्याय को समग्र मनुष्यत्व के विशाल परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास करता है । राम मनुष्य की अभिव्यक्ति हीनता को सब से अधिक दुर्भाग्य मानता है । आम आदमी के पक्षधर होकर कवि ने राम के द्वारा कहलवाया है -

मनुष्य का भाषाहीन हो जाना
सृष्टि का
ईश्वरहीन हो जाना होगा लक्ष्मण'[2]

भाषा ही मनुष्य की संपत्ति है, और शक्ति है । भाषा नहीं है तो प्रकृति भी नहीं है, चराचर का अस्तित्व भी नहीं होगा । भाषा हीनता को मूल्यहीनता की स्थिति मानी जाती है । अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता व्यक्तित्व के विकास का एक प्रमुख पक्ष है । मानवीय सार्थकता के परिप्रेक्ष्य में नरेश मेहता ने मूल्यान्वेषण का निरूपण किया है ।

---

1. प्रवाद पर्व - नरेश मेहता - पृ. 35
2. प्रवाद पर्व - नरेश मेहता - पृ. 52

स्त्री मूल्य की नैतिकता

"अग्निलीक" (1979) भरत भूषण अग्रवाल का कथाकाव्य है जिसमें कवि ने वाल्मीकिरामायण का आधार लेकर राम और सीता के मानवी पक्ष का चित्र प्रस्तुत किया है । सीता-परित्याग के प्रसंग को इसकी विषयवस्तु के रूप में विस्तृत किया गया है । वाल्मीकि-आश्रम में परित्यक्ता सीता अपने दो बच्चों को जन्म देती हैं । बाद में राम-सीता मिलन होता है । लेकिन वह अपने स्त्रीत्व को जनता के सामने प्रमाणित करने के लिए तैयार नहीं है । सीता के अनुसार यह मूल्य-विघटन की स्थिति है और एक स्त्री के प्रति समाज की अनीति है ।

"अग्निलीक" के द्वारा कवि राम के पारंपरिक स्वीकृत आदर्शवादी नायकत्व को तोडता है । एक साधारण व्यक्ति की भाँति राम ने भी मर्यादाओं तथा मूल्यों का उल्लंघन अवश्य किया है । कवि ने इसमें मानवी पक्ष का अधिक समर्थन किया है । किसी भी युग में शासक की महत्त्वाकांक्षा और सत्ता पर आग्रह मूल्य शोषण का कारण बनता है । अग्रवाल ने ऐसे एक महत्त्वाकांक्षी राजा के रूप में राम का चित्र प्रस्तुत किया है । सीता के जीवन में हुई अग्निपरीक्षा ऐसा ही एक अमानवीय आचरण है जिसमें उस का हृदय टूटता है । इसके संबंध में "अग्निलीक" की सीता सोचती है -

"उस क्षण मेरे प्यार का महल जैसे टूटा था
मेरा मन जैसे चकनाचूर हुआ था
यह मैं ही जानती हूँ ।"[1]

---

1. अग्निलीक - भारत भूषण अग्रवाल - पृ.49

अब भी सीता याद करती है कि अग्निपरीक्षा की आज्ञा सुनकर उसके दिल में प्यार का जो महल बना था वह एक दम टूट गया है जैसे उसका दिल ही चकनाचूर हो गया है । उस राजसी महत्वाकांक्षा के सामने सीता का स्त्रीत्व, पत्नीत्व, पवित्रता आदि अपमानित होकर गल गया है । वास्तव में यहाँ मानवीयता का बहिष्कार हो जाता है । इसीलिए वह वाल्मीकि से पूछती है -

> इन्होंने पत्नी को अपनाया हो कब था ?
> ये तो राज्य के मतवाले थे,
> विजय-श्री के भूखे थे
> प्यार से इन्हें लगाव ही कब था ?[1]

इस प्रकरण में विवेचित कथाकाव्यों में एक खास प्रकार की समानता है और वह है स्वीकृत मान्यताओं पर प्रश्नचिह्न लगाने की प्रवृत्ति । ऐसा क्यों हो जाता है । पौराणिक पात्र होने से इन पात्रों ने हमारे धार्मिक हृदय में अवतार-पुरुषों का स्थान ग्रहण किया हैं । पर कवियों ने इस धारणा को तोडा है । आधुनिक जीवन में व्याप्त मूल्य-विघटन की बारीकियों को प्रस्तुत करने के लिए यह ध्वंस आवश्यक है । कथाकाव्यों से यह भी पता चलता है कि मूल्यविघटन किसी के हाथों से भी संभव है । उसकी सामाजिक व्याख्या ही मुख्य है । इसलिए आधुनिक कवि का कर्तव्य यह हो गया है कि इन विघटित स्थिति को शंकाकुल दृष्टि से देखें, प्रश्न करते रहे । जहाँ भी इन कथाकाव्यों में कथा का विस्तार है, वहाँ मूल्य विघटन के प्रति क्षोभ और दुःख प्रकट हुआ है । हमारी सामाजिक व्यवस्था में सदा अन्तर्विरोध

---

1. अग्निलीक - भारत भूषण अग्रवाल - पृ. 49

उपस्थित होते रहते हैं । कथाकाव्यों के कथाविस्तार में अन्तर्विरोध का पक्ष ही प्रबल है क्योंकि वे आधुनिक जीवन के विघटित रूप को उद्घाटित करता है

नारी की स्वतंत्रता की समस्याएँ

हमारे समाज में आज भी नारी की स्वतंत्रता की समस्या बनी हुई है । इसके बारे में विचार करते समय कई प्रश्न उठते हैं । वैज्ञानिक युग की असीम गतिशीलता के इस दौर में क्या भारतीय नारी को उचित सम्मान प्राप्त है ? क्या हमारा समाज स्त्रीत्व के अस्तित्व की पहचान में सक्रिय है ? क्या इस पर विचार विमर्श हुआ है कि स्त्री ने अपने जीवन में क्या खोया, क्या पाया ? सामाजिक उन्नति के संदर्भ में स्त्रीत्व के प्रति यह हीन भावना क्यों ? ये प्रश्न पूर्णतः सामाजिक हैं । पर इन्हीं सामाजिक प्रश्नों ने आधुनिक कविता को उन्मेष प्रदान किया है । कथाकाव्यों के कवियों ने प्रसिद्ध स्त्री पात्रों की स्वतंत्रता की कामना को नये परिप्रेक्ष्य में देखने का कार्य किया है ।

नारी स्वतंत्रता का समाज शास्त्र

नारी को जहाँ आधुनिक कवि मनुष्य के बुनियादी संवेगों के संदर्भ में मूर्त रूप प्रदान करता है, उसके साथ ही साथ समाज के भीतरी ढाँचे में सक्रिय अमानवीय हरकतों को भी मूर्त रूप देने की चेष्टा करता है । नारीत्व के विभिन्न आयाम आधुनिक दौर में लिखे गये इन कथाकाव्यों में भी अवश्य मिल जाते हैं । कथाकाव्यों के स्त्री-पात्र बाध्यतः पौराणिक नहीं है, लेकिन आभ्यन्तर-स्तर पर इनकी संवेदना, वैचारिकता, अनुभूति, आकांक्षा, जीवन की चिंता आदि आधुनिक युग की नारी की है । राधा, द्रौपदी,

गाँधारी, कुन्ती, सीता, अहल्या सब इस नये स्त्रीत्व के प्रतीक ही है । नारीत्व की नयी प्रतिष्ठा इन चरित्रों के माध्यम से हो गयी हैं । वास्तव स्वतंत्रता की समग्रता पर इन काव्यों में बल है । औपनिवेशिक शक्ति के प्रति की कामना भी है ।

समाज में पुरुष की मेधाशक्ति स्वीकृत है । एक हद तक स्त्री इसे स्वीकार भी करती है । पौरुष के प्रति आकर्षित होकर उसके संरक्षण में वह जीना चाहती है । आशारानी त्योरा लिखती है - "आज की सुशिक्षित, आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी अकेली स्त्री को भी टटोलकर देखिए, वह शारीरिक, भावात्मक, सामाजिक संरक्षण की वकालत करेगी या चाहकर भी इस चाहना को छिपा नहीं जायेगी ।"[1] इसके मूलभूत कारण की ओर देखें तो पता चलेगा कि स्त्री पुरुष के बल पर विश्वास करती है और पुरुष के वर्चस्व का अंगीकार भी करती है । जैसे जैसे स्त्री अपने स्त्रीत्व के संरक्षण में अपने पैरों पर न खडी पाती वैसे वैसे स्त्री के ऊपर पुरुष और अधिकार का वर्चस्व भी बढता जाएगा ।

नारी-पुरुष की सहभागिकता

सृष्टि का मूलाधार स्त्री है । नारी के बिना पुरुष का जीवन पूर्ण नहीं होता । नारी सृजन की ही नहीं, संचालन और नियंत्रण की शक्ति भी है । अधिकांश मामलों में दोनों परस्पर सहभागी हैं और सहभोगी भी है । लेकिन झूठी सामाजिक व्यस्तताओं के कारण स्त्री को उचित सम्मान प्राप्त नहीं होता । नारी के स्वतंत्र अस्तित्व की पहचान

---

1. भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार आशारानी त्योरा - पृ. 6

अधूरा रहती है । सारे सामाजिक विधान में स्त्रियों की स्थिति हमेशा यही रहती है । इससे मुक्ति पाने के लिए आज भी स्त्री संघर्षरत है । भारती की "कनुप्रिया" में राधा अपने को केलीसखी मानती है । लेकिन उसे सन्देह है -

सखी को तुमने अपने बाँहों में गूँथा
पर उसे इतिहास में गूँथने से क्यों
हिचक गये प्रभु ?[1]

स्त्री की स्वतंत्रता का निषेध का संकेत इन पंक्तियों में है । पुरुष का वर्यस्व स्त्री को सहभागी बनाने को तैयार नहीं है । अतः स्त्री को अपने भविष्य के संबंध में स्वयं निर्णय लेना पडता है - "उसे चाहिए अधिकारों का अर्जन निजी स्तर पर भी, सामूहिक स्तर पर भी करें ।"[2] इसीलिए राधा जीवन रूपी पगडंडी के मोड पर कृष्ण की प्रतीक्षा करके खडी है । समय का इतिहास बनाते समय राधा इतिहास का एक अभिन्न अंग बनना चाहती है । अतः राधा अपने निर्णय पर अडिग खडी है -

जन्मान्तरों की पगडंडी के
कठिनतम मोड पर खडी होकर
तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ
कि, इस बार इतिहास बनाते समय
तुम अकेले न छूट जाओ ?[3]

राधा की गहरी आकांक्षा है कि इतिहास-निर्माण में कनु अकेले न छूट जाएँ । राधा के बिना कृष्ण के इतिहास निरर्थक भी है -

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 78
2. भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार - आशारानी त्योरा - पृ. 8
3. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 78

बिना मेरे कोई भी अर्थ कैसे निकल पाता
तुम्हारे इतिहास का
शब्द.....शब्द.....शब्द.....[1]

"कनुप्रिया" का "इतिहास और समापन" इतना प्रमुख है कि इसमें परंपरागत राधा के व्यक्तित्व से अलग एक नूतन व्यक्तित्व का वह अधिकारी है । साथ-साथ इतिहासकार कृष्ण का महाभारतीय, राजनीतिज्ञ रूप भी प्राप्त है । स्वयं कवि ने कहा है - "कूटनीतिज्ञ, व्याख्याकार कृष्ण के "इतिहास" तथा "समापन" इस विकास का तृतीय चरण चित्रित करते है ।"[2] वह कृष्ण की सखी, सहचरी, प्रेमिका, एकांत-संगिनी, मुग्धा, विप्रलब्धा तथा प्रौढ़ नारी के रूप में अवश्य चित्रित हुई है । पर कवि ने कनुप्रिया को स्वतंत्र चिन्तन की वाहिका भी बतायी है । जीवन के तन्मय क्षणों के भागीदार इतिहास-निर्माण के संदर्भ से छूट जाने का उसे दुःख है ।

नारी जीवनी शक्ति का प्रतीक

द्रौपदी (1960) नरेन्द्र शर्मा का एक कथाकाव्य है जिसके प्रमुख पात्र द्रौपदी ही है । महाभारत कथा के मूल अंश के आधार पर श्यामवर्णा द्रौपदी को नारी-शक्ति के प्रतीक के रूप में कवि ने इसमें चित्रित किया है । वह पाँडवों की जीवनी-शक्ति है -

"द्रौपदी जीवनी-शक्ति
पंचतत्वों की वह कल्याणी"[3]

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 79
2. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 7
3. द्रौपदी - नरेन्द्र शर्मा - पृ. 24

यहाँ स्त्री पुरुष की शक्ति बनी है । यद्यपि द्रौपदी का चरित्र महाभारत के दिव्य रूप के अनुकूल है फिर भी युगीन वैचारिकता का समावेश करके आवश्यक परिवर्तन भी कर दिया गया है । "द्रौपदी जीवनी-शक्ति है, जिसने पाँच महातत्वों को संश्लिष्ट रूप देकर रथी नर को उसका स्वरूप प्रदान किया है ।"[1] यह तो ठीक ही है द्रौपदी के बिना धर्मराज की विजय-कामना प्रोज्ज्वलित नहीं हो उठती । द्रौपदी के खुले हुए केश हमेशा भीमसेन को युद्ध की चुनौती देता है -

नदी वैतरिणी तथा वेणी खुली लहरा रही !
धार्तराष्ट्रों को डुबाने हर भँवर गहरा रही !
द्रौपदी के केश काले, धरा को छूने चले !
शत्रु होंगे धराशायी, मरण वेला आ रही ?[2]

वास्तव में महाभारत युद्ध की प्रेरणा शक्ति के रूप में, पाँडव के पक्ष में द्रौपदी है । यदि कौरव पक्ष में इस भीषण युद्ध के मूल में दुर्योधन का हठ है तो पाँडव-पक्ष में चेतना के मूल में द्रौपदी है । नारी की साधना उसके लक्ष्य साध्य करने में है -

अवधि अष्टादश दिवस की, अग्निपथ की साधना ;
पूर्ण होगी द्रौपदी के स्वत्व की आराधना !
तत्वशीले, तत्व के हित क्या नहीं सहना पड़ा ?
सहज है क्या पंचतत्वों को किरण में बाँधना ?[3]

युद्ध अठारह दिनों तक रहा । फल यह हुआ कि दोनों पक्षों को न जाने कितने

---

1. द्रौपदी - वक्तव्य - नरेन्द्र शर्मा - पृ.
2. द्रौपदी - नरेन्द्र शर्मा - पृ. 47
3. द्रौपदी - नरेन्द्र शर्मा - पृ. 51

योद्धाओं की आहुति देनी पडी । द्रौपदी ने स्वत्व की रक्षा के लिए प्रतिशोध की ज्वाला प्रोज्वलित की । लेकिन अश्वत्थामा के प्रतिशोध की ज्वाला में अपने पाँचों पुत्रों की बलि देनी पडी । लेकिन स्वत्व की रक्षा और पंचतत्वों की रक्षा में अग्निज्वाला की मूर्ति के रूप में द्रौपदी खडी रही । नरेन्द्र शर्मा अंत में नारी की महानता की पुष्टि करता है -

दहन-शक्ति से मूल्य चुकाती
नारी, नर की जय का ।
है नारी की सहनशक्ति में
संस्थित केतु विजय का ।[1]

नारी के आत्मोत्सर्ग से ही नर का जीवन सार्थक होता है । उसकी महिमा उसकी सहनशीलता में है । वह दुःख की आग में झुलसकर भी विजय के सोपान पर पहुँचती है । नरेन्द्र शर्मा ने आधुनिक दृष्टि से इस पुराण पात्र को देखा और परखा है । इसलिए उसमें आधुनिक नारी की मानवीय संवेदनाओं का उदात्त रूप व्यंजित है । "द्रौपदी में मैं ने भारतीय नारी के तेज-बल का गुणगान किया है । द्रौपदी जितनी प्राचीना है, उतनी ही नवीन भी । कहा जा सकता है कि द्रौपदी नारी-शक्ति का एक शाश्वत नित्य-नवीन निरंतर प्रतीक है ।"[2]

नारी का सही संदर्भ

उर्वशी (1961) दिनकर का प्रसिद्ध कथाकाव्य है जिसका आधार पुरूरवा और उर्वशी की कथा है । कवि ने इस रचना के द्वारा काम

---

1. द्रौपदी - नरेन्द्र शर्मा - पृ. 63
2. द्रौपदी - भूमिका - नरेन्द्र शर्मा - पृ. 11

की सनातन व्यापकता की व्याख्या करने का प्रयास किया है । उर्वशी सौंदर्य की मूर्ति है । इसके साथ सहज काम का संयोग करके कवि ने इसे अनश्वरता प्रदान की है । गंधमादन पर्वत पर पुरूरवा-उर्वशी का मिलन और संवाद इसका निदान है । पुरूरवा और उर्वशी मानवी और दैवी प्रेम के प्रतीक है । मेनका के मुँह से ही कवि स्त्री के मातृत्व की प्रशंसा करवाते है -

"युवा जननि को देख शान्ति कैसी मन में जगती है ।
रूपवती भी सखी । मुझे तो वही प्रिया लगती है,
जो गोदी में लिये क्षीरमुख शिशु को सुला रही हो"[1]

यह रूप मातृत्व का दिव्यरूप है । कवि ने उर्वशी की वासनामय नारी और मातृत्व की स्वच्छ ममतामयी नारी का समन्वय करके उसे अनश्वर बनाया है । इस तरह उर्वशी जहाँ प्रेम की सच्ची साकार प्रतिमा है तो वहाँ ममतामयी माता भी दिखलाई पडती है । "भरत भूषण अग्रवाल को "उर्वशी" इसलिए महत्वपूर्ण लगता है कि प्रणय काव्य होते हुए भी "उर्वशी" में लुजलुजी कोमलता नहीं है, उसमें ओज का विलक्षण सम्मिश्रण है । यह प्रमाण है कि कवि प्रणय कथा कहने नहीं बैठा है, नया सन्देश देने आया है नारी जीवन का कोई भी पक्ष उसकी दृष्टि से नहीं छुटा है ।"[2] "उर्वशी" में उर्वशी के चरित्र का पारंपरिक रूप का अधिकांश भाग नष्ट हो गया है । प्रयोग की दृष्टि से उर्वशी आधुनिक नारी की संवेदनाओं का ही रूप है । लेकिन शापवश वह माता का दायित्व निभा नहीं पाती । किन्तु वात्सल्य भाव के कारण सुकन्या की गोद से अपने पुत्र को हृदय से लगाकर बार-बार चूमनेवाली उर्वशी का चित्र मातृप्रेम को व्यक्त करता है -

---

1. उर्वशी - दिनकर - पृ. 19
2. कविता के नये प्रतिमान - मूल्यों का टकराव:उर्वशी विवाद - नामवर सिंह - पृ. 67

अरी, जुडाना क्या इसको, ला, दे इस हृदय-कुसुम को
लगा वृक्ष से स्वयं प्राण तक शीतल हो जाती हूँ ।[1]

(सुकन्या की गोद से बच्चों को लेकर हृदय से लगाती है)

उर्वशी के इस रूप की परिकल्पना के पीछे दिनकर का इच्छित अर्थ भी प्रकट है । वे नारी को सीमित संदर्भ से उठाना चाहते है । मातृत्व की संकल्पना का यहा उद्देश्य है ।

कोमल मना नारी का उत्पीडन

"सूर्यपुत्र" में जगदीश चतुर्वेदी ने नारी के सीमित अधिकारों और उनपर पुरुषों द्वारा हुए अत्याचार का चित्र व्यंजित किया है । "सूर्यपुत्र" की कुन्ती आधुनिक भारतीय संवेदनाओं से युक्त नहीं है । इसमें कुन्ती सूर्य के वर्चस्व के कारण मातृत्व-वंचित होकर असहाय बन जाती है । कुन्ती को सूर्य का रक्तिम पिंड सब से अधिक आकर्षक लगता है । अपने प्रेमी को सब कुछ समर्पण करने को तैयार है । लेकिन बाद में इसका परिणाम अत्यंत दुखदायी होता है । क्योंकि जब बच्चा पैदा होता है तो उसकी सहायता देने के लिए सूर्य नहीं आता है । वह अपने फूल-सी सन्तान को छोड नहीं पाती -

"विशाखा ! मैं नहीं मिटा सकती इस शिशु को नामहीन"[2]

कुन्ती उस बच्चे को नामहीन बनाना नहीं चाहती । अपने और सूर्य से जनित बालक को अपने साथ ही रखने की इच्छा प्रकट करती है । लेकिन सामाजिक नीति इसका समर्थन नहीं करेगी । अपने बच्चे के लिए यदि सूर्य साथ हो तो वह इन तमाम सामाजिक नियमों तथा मर्यादाओं को तोडना चाहती है -

---

1. उर्वशी - दिनकर - पृ 113
2. सूर्यपुत्र - जगदीश चतुर्वेदी पृ. 17

सुख के विरोध में बनाये गये ये सामाजिक नियम
ये संहिताएँ
यह प्राणघातक प्रणाली
इनको ठोकर मार सकती हूँ दिनेश
यदि तुम सहारा दो ।[1]

"वह अपने यौवन की भूल कर्ण को भी स्वाभिमान के साथ मातृत्व देने है अगर सूर्य उसे आश्वासन दें । लेकिन सूर्य अपनी व्यस्तता की ओट में उसके सुख का भोग करने के पश्चात् एक अभिशप्त जीवन देकर बिदा हो जाते है ।"[2] समाज में हमेशा ऐसा होता आया है कि अभिशप्तता स्त्री को ही सौंप दी जाती है । अवैध सन्तान को जन्म देने के कारण कुन्ती अपने जीवन के अंतिम समय तक मौन एवं असहनीय पीडा का अनुभव करती रहती है । कुन्ती के चरित्र में उसके स्वार्थ के कारण नहीं पर हुए अत्याचार का पक्ष प्रमुख है । कवि ने कुन्ती को उसी दृष्टि से देखा है ।

नारी की अस्मिता की अवहेलना

"महाप्रस्थान" की द्रौपदी भी खंडित व्यक्तित्व की अग्निज्वाला में जलती है । क्योंकि उसे स्वयंवर से लेकर जीवन के अंतिम समय तक दुःख ही भोगने को मिला । पाँडव पत्नी बनने में उसकी इच्छा और अनिच्छा के संबंध में किसी ने नहीं पूछा । स्वयंवर-मंडप में वह अपनी सारी इच्छाओं के साथ ही उस पराक्रमी ब्राह्मण के गले में वरमाला डालती है

---

1. सूर्यपुत्र - जगदीश चतुर्वेदी - पृ. 16
2. जगदीश चतुर्वेदी: विवादास्पद रचनाकार - कमल किशोर गोयन्का - पृ. 390

महाप्रस्थान के इस संदर्भ में भी वह याद करती है -

किन्तु भाग्य ने
पाँच पाँडवों का भार्यापद मुझको सौंपा[1]

लेकिन जिस क्षण वह पाँडवों की धर्मपत्नी बनने को मज़बूर होती है उसी क्षण में ही उसका हृदय टूट जाता है । उसका सारा जीवन दुर्भाग्यपूर्ण बन जाता है । वही पाँडव पत्नी आज सब से पीछे अपनी स्मृतियों में डूबकर खोये हुए जीवन की याद करती हुई चलती है -

"पर सब के पीछे चली आ रही
पाण्डवदल की सांसारिकता
भार्या, प्रिया, सेविका
और पण्डिता ।"[2]

द्रौपदी की जीवन-कथा में भी किए गये अत्याचारों का पक्ष प्रबल है । पाँच पतियों को पाने से वह अपने को सौभाग्यशालिनी नहीं समझती । वही उसका अभिशाप है । समाज के आभिजात्य संस्कारों के सामने नारीत्व का कोई अर्थ नहीं, कोई मूल्य नहीं है । स्त्री की अनुभवी तृष्णा के प्रति और उसके जीवन की सार्थकता के प्रति वह चिंतित नहीं है ।

नारी पर भोग का अभिशाप

"एक पुरुष और" में राजर्षी विश्वामित्र की घोर तपस्या से इन्द्र भयभीत है । वह मेनका को धरती पर पहुँचाकर उसका तप-भंग करना चाहता है । इन्द्र की बुलावे पाते ही एक अनबुझी तृषा से मेनका बेचैन हो

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 64
2. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 60

जाती है । समाज के नियमों से बँधकर मनुष्य को क्या क्या नहीं करना पड़ता है ? स्त्रीत्व का यह अभिशप्त जीवन क्यों ? सामाजिक अनैतिकता को मेनका ने इस प्रकार प्रकट किया है -

उसे पहली बार अनुभव हुआ
कि वह नारी नहीं है
मात्र रक्त माँस का एक संयोग - टुकडा
जो किसी के मुँह में डाल दिया जा सकता है ।[1]

मेनका का यह विचार आधुनिक नारी मानसिकता केलिए प्रामाणिक सन्दर्भ प्रदान करता है । इसीलिए अपने मन की दबी हुई भावनाओं के साथ मेनका संघर्षमना हो जाती है -

कोई नहीं समझ पायेगा कि मेनका
मात्र एक गन्ध नहीं गन्धातीत एक स्त्री है[2]

उसकी मज़बूरी उसे यह नहीं देती है । डॉ. विनय ने मेनका के आत्म-कथन के द्वारा जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करने की चेष्टा की है । नारी को सिर्फ अपने सुख-भोगों से तृप्ति नहीं होती । वह इन सब से बढकर सार्थक जीवन बिताना चाहती है -

उसे नहीं चाहिए भोग-उपभोग
उसे नहीं चाहिए वह कंचन का शरीर
जो किसी दर्द का अनुभव न कर सके ।[3]

यह एक सामान्य नारी की मानसिकता का यथार्थ चित्रण है । जब यथार्थ जीवन

---

1. एक पुरुष और - डॉ. विनय - पृ. 45
2. एक पुरुष और - डॉ. विनय - पृ. 46
3. एक पुरुष और - डॉ. विनय - पृ. 46-47

का निषेध होता है वहाँ उसकी प्रतिक्रिया भी होती है । मेनका भी सार्थक जीवन बिताकर अपने अस्तित्व की पहचान करना चाहती है -

मैं अकेली केवल प्रतिष्ठापित आज्ञाओं की
कठपुतली बनकर नहीं जीना चाहती.....
मुझे भी मिलनी चाहिए अर्थवत्ता मेरे शरीर की
मेरे अस्तित्व की.....[1]

मेनका की खोज प्रत्येक नारी की अस्मिता की तलाश है । इस खोज के बावजूद संकट बना हुआ है - "मेनका का संकट केवल अस्तित्व का संकट नहीं, एक सार्थक और सही जीवन जीने का संकट भी है ।"[2] अतः मूल्यान्वेषण की यात्रा में वह अपने स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व को पाना चाहती है ।

नारी की स्वतंत्र इच्छा का परिदृश्य

"अग्निलीक" सीता-वनवास के सीमित प्रसंग पर आधारित कथाकाव्य है । भारत भूषण अग्रवाल ने इस कथाकाव्य के द्वारा सीता को एक स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया है । अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर वह और एक परीक्षा देने को तैयार नहीं होती है -

यह अपमान तो उस परित्याग से भी भयंकर है
इसे मैं नहीं सह पाऊँगी
मैं नहीं जाऊँगी ।
कहीं नहीं जाऊँगी ।[3]

---

1. एक और पुरुष - डॉ. विनय - पृ. 86
2. एक और पुरुष - डॉ. विनय - पूर्वकथन
3. अग्निलीक - भारत भूषण अग्रवाल - पृ. 42

पति का पत्नी पर अविश्वास परित्याग से भी भयंकर है । एक सामान्य नारी के लिए इतना कष्ट क्यों उठाना पड़ता है ? परित्यक्ता सीता की विकलता अग्रवाल ने एक निसहाय उपेक्षिता स्त्री की विह्वलता से संपृक्त कर दिया है । उसके दुःख की गहराई इस तरह प्रकट है -

अगर अन्त में यही होना था
तो मैं ने ये सोलह साल कष्ट और कसाले में क्यों काटें ?[1]

सोलह वर्ष के आश्रम जीवन ने उसे इतना दुःख नहीं दिया जितना वह आज भोगती है । अब वह एक स्वतंत्र चिन्तन से आलोकित है । वह रोना नहीं चाहती ; आत्म-प्रलाप करना भी नहीं चाहती । उसके अंदर में दुःख इतना घनीभूत हो गया है कि उसकी आँखों के आँसू अंगारे बन गये हैं -

ये आँसू नहीं है गुरुदेव ये अंगारे हैं
यह मेरे जीवन की आग है ।
जो मेरे भीतर धधक रही है[2]

यह धधकती हुई आग की ज्वाला कभी नहीं बुझेगी । वह दुःख से त्रस्त है, लेकिन आँखों में आँसू के बदले अंगारे आते हैं । अंत में आत्मत्याग में वह शरण लेती है -

लोग कहते है कि मैं धरती से जन्मी थी,
तो वही धरती मुझे अपनी गोद में समा ले
वही मेरी अन्तिम शरण हो ![3]

सीता के जीवन का यह अन्तिम प्रकरण वास्तव में नारी जाति के लिए सदैव

---

1. अग्निलीक - भारत भूषण अग्रवाल - पृ. 41
2. अग्निलीक - भारत भूषण अग्रवाल - पृ. 42
3. अग्निलीक - भारत भूषण अग्रवाल - पृ. 54

चुनौती है । सचमुच यह नारी-जाति स्वतंत्र इच्छा पर होनेवाले अत्याचार है ।

पुरुष शासित व्यवस्था का विरोध

"आत्मदान" में बलदेव वंशी उपेक्षित एवं उत्पीडित अहल्या की कथा नारी की आधुनिक समस्याओं के संदर्भ में प्रस्तुत करते हैं । पुरुष सत्तात्मक समाज में नारी का भोक्ता रूप ही प्रकट है । इन्द्र मिलन के पश्चात् अहल्या शापग्रस्त नारी हो जाती है । इन्द्र के बहुरूपीपन और विश्व-व्याप्ति के प्रति अहल्या क्रोध प्रकट करती है -

सहस्राक्ष, तुम !
सृष्टि का भोग - पक्ष हो
अदम्य बल से रत हो सब कहीं
स्वेच्छाचारी, तुम !
वृत्र-विजयी !!
मायावी !!!

वह इन्द्र को "सहस्राक्ष" संबोधित करती हुई उसके भोगी होने का उल्लेख करती है । यहाँ इन्द्र की भोगेच्छा प्रकट है । लेकिन शापग्रस्त होने पर उसकी रक्षा करने के लिए इन्द्र नहीं आता है । उसमें शासक-शक्ति के अहं की भावना है । देवों की मर्यादाएँ एकांगी हैं, उसकी इच्छाएँ एकांगी हैं । उस एकांगी शक्ति की भोगेच्छा का शिकार बन जाने के कारण अहल्या का शेष जीवन अवसाद एवं एकाकीपन से गुज़रना पडा । "आत्मदान" की नायिका अहल्या पुरुष-शासित समाज में पुरुष की न्याय-व्यवस्था एकांगी बताती है -

---

1. आत्मदान - बलदेव वंशी - पृ. 19

पुरुष-शासित यह जग है एकांगी
पुरुषों का हर न्याय
कार्य
उपचार
मात्र एकांगी[1]

हमेशा ऐसा ही होता है समाज में नारी को गौण स्थान ही प्राप्त होता है -

गौण हुई नारी हर युग में
निर्वसना है ।[2]

यह अपमानित नारी का चित्र है, अवहेलना से त्रस्त दुर्बल नारी की चिंता है । लेकिन पौराणिक अहल्या के समान "आत्मदान" की अहल्या सदैव अपने दुःख से मुक्ति पाने की प्रतीक्षा नहीं करती । वह स्वतंत्र चिन्तन से प्रेरित है । अपनी अभिशप्तता के कारणों में वह पति की असमर्थता भी देखती है -

तुम थे असमर्थ स्वयं ही देव !
मुझे रोक लेने में[3]

असमर्थ पति के कारण उसे आज की दुःस्थिति भोगनी पडती है । मात्र उसका दोष नहीं है । फिर भी समाज में वह उपेक्षित है । अहल्या पुरुष-सत्ता से प्रताडित एवं अपमानित स्त्री का प्रतीक है । अहल्या नारी के स्वातंत्र्य की गरिमा प्रदान करती है । अहल्या की समस्या आज विश्व में व्याप्त नारी-मुक्ति आन्दोलन से जुड जाती है । कवि का यह कथन सही लगता है -

---

1. आत्मदान - बलदेव वंशी - पृ. 22
2. आत्मदान - बलदेव वंशी - पृ. 22
3. आत्मदान - बलदेव वंशी - पृ. 27

"भारतीय समाज में यह स्थिति पहले से भी अधिक गंभीर एवं गहरी होती गई है, तो आधुनिक विश्व में नारी-आन्दोलनों की युगीन आवाज़ें ऐतिहासिक नृशंसताओं को उजागर करती है ।"[1] सयमुच इस संदर्भ में अहल्या की कथा प्रासंगिक एवं समसामयिक भी है ।

नारी के अनेक रूप इन कथाकाव्यों में उपलब्ध है । पर सब में नारी हताश और निराश है । सामाजिक मान्यताओं से बढकर इन काव्यों की कथाओं में नारी पुरुष से हताश है । वस्तुतः वह प्रताडित है । प्रताडन के अनेक रूप है । जीवन की भौतिक सुख-सुविधाओं से वंचित होने से उत्पन्न प्रताडना इन नारी पात्रों के जीवन में नहीं है । लेकिन वैचारिक प्रताडना उन्हें अस्त-व्यस्त कर डालती है । इसलिए पुरुष के व्यवहार को समाज के अनैतिक व्यवहार के रूप में देखना उचित लगता है । अर्थात् पुरुष सामाजिक वर्यस्व का प्रतीक है तो स्त्री प्रताडन का । लेकिन अधिकतर पात्र हताश के बावजूद अपने अस्तित्व की रक्षा में लीन होकर उस वर्यस्वों के विरुद्ध विद्रोह करती हैं । उसे हताश और निराशा का अनुभव अवश्य नहीं है । वह विद्रोह का एक परिवर्तित रूप है ।

सामाजिक विसंगति के रूप में इस हताशा को देखते समय हमारे समाज का बहुत बडा अन्तर्विरोध यह है कि अत्याचार हमेशा हमारे समाज में रहा है । अत्याचार का सिलसिला आज भी ज़ारी है । इसीलिए आधुनिक कवियों का ध्यान इस विसंगति की ओर अधिक गया है ।

---

1. आत्मदान - भूमिका - बलदेव वंशी

अध्याय चार

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में आत्मसंघर्ष की स्थितियाँ

अध्याय - चार

आधुनिक पौराणिक कथा-काव्यों में आत्मसंघर्ष की स्थितियाँ

आधुनिक कविता में मनुष्य को केन्द्र में रखा गया है । आधुनिक कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि में स्वतंत्रता की कामना है । मनुष्य की मुक्ति की कोशिश सर्वत्र विद्यमान है । पर आधुनिक मनुष्य के सामने विविध प्रकार के तनावों, द्वन्द्वों और संघर्षों का बोलबाला भी है । इसीलिए आधुनिक कविता में इन सभी तत्वों का द्वन्द्व परिलक्षित होता है । कविता में आत्मसंघर्ष की स्थिति इसलिए पैदा होती हैं ।

नई कविता में संकेतित आत्मसंघर्ष आधुनिक कविता का प्राण है । क्योंकि नई कविता में मनुष्य की आतंरिकता की प्रतिष्ठा एक प्रमुख उपलब्ध है । धर्मवीर भारती इसे नई कविता की एक प्रमुख विशेषता बताते है कि "नई कविता मनुष्य की "आन्तरिकता" को फिर से प्रतिष्ठित करना चाहती है, उसके असामंजस्य को टूट करना चाहती है ।"[1] मनुष्य की आन्तरिकता में उसकी आत्मवत्ता, मौलिक अनुभूतियों, वैयक्तिकता, संकटजन्य स्थितियाँ, आस्थाएँ आदि प्रमुख हैं । नई कविता में मनुष्य की इन्हीं स्थितियों को विभिन्न मिथकों के माध्यम से अभिव्यक्त करता रहा है । इस दौर में लिखे गये कथाकाव्यों में भी इन्हीं तत्वों का समावेश है । यहाँ व्यक्ति अपनी आत्मवत्ता की खोज से संलग्न पाता है ।

यह सच है कि आत्मसंघर्ष आधुनिक मनुष्य का ही अनुभव नहीं । यह अनादिकाल से ही अनुभूत होता हुआ आ रहा है । "व्यक्ति की

---

1. मानवमूल्य और साहित्य - धर्मवीर भारती - पृ. 177

खोज" जैसी बुनियादी तलाश प्राचीन वाङ्मय जैसे वेदों, उपनिषदों और बौद्ध धर्म में भी उपलब्ध है । यह एक अन्वेषण है जिसमें मनुष्य अपने जीवन की सार्थकता को लेकर विचारवान है । मृत्यु और मृत्युपरान्त जीवनावस्था के बारे में सोचना है । यह विचार चिरकाल से मनुष्य मन को मथित करता आया है । आधुनिक युग में इसे अधिक प्रासंगिक क्षेत्र दिया गया है । युग की जटिलता से इस विचार को प्रश्रय मात्र नहीं दिया बल्कि इनके विभिन्न आयामों ढूँढने के लिए कार्य भी किया है । नई कविता में भले ही दर्शन की सभी गुत्थियों का परामर्श तो नहीं है, फिर भी व्यक्ति के इस आत्मसंघर्ष के कुछ पक्ष लिया जाता है ।

अर्थतत्व की तलाश

आधुनिक व्यक्ति की वास्तविक स्थिति की अभिव्यक्ति नई कविता में बड़ी बारीकी से हुई है । व्यक्ति के विभिन्न प्रकार के तनाव सही मायने में आँके गए हैं । इसे नई कविता में अभिव्यक्त वैचारिक संकट कह सकते हैं । कविता का संकट असल में मनुष्य जीवन का संकट है । अतः व्यक्ति को केन्द्र में रखकर जीवन-संकट की चेतना को अभिव्यक्ति देनेवाली कविता में स्वाभाविक रूप से व्यक्ति के अस्तित्व का अन्वेषण का पक्ष प्रबल है । यह कथन तो ठीक ही है - "आज की हिन्दी का नया कवि कवि के आन्तरिक सत्य व उसकी अस्मिता के सक्रिय क्रियाशील अन्वेषण की बात तो करता है और आज की कविता को जीवन के अत्यन्त समीप पाता है ।"[1] यह जागरूकता व्यक्ति के अर्थतत्व की तलाश है । जीवन की सार्थकता की चिंता आधुनिक कविता की मूल चेतना है । इसमें ही अस्तित्व संबंधी तलाश निहित है ।

---

1. नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - विजय द्विवेदी - पृ. 87

आधुनिक कथाकाव्यों में अर्थतत्व संबंधी अन्वेषण ज़रूर है । अर्थतत्व की तलाश भी आत्मसंघर्ष की स्थिति के अन्तर्गत आ जाती है । जब व्यक्ति अपने आन्तरिक द्वन्द्वों एवं संघर्षों से घिरा पाता है, जाने अनजाने ही स्वतंत्र चिन्तन से प्रेरित होकर अपने अस्तित्व के संबंध में सोच विचार करता है । "भारतीय मनीषा ने भारतीय चिन्तन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण यात्रा पूर्ण की है, और ऐतिहासिक चेतना के माध्यम से चेतना के उस आयाम को संगठित किया है जिसमें आन्तरिक व्यक्तित्व के निर्माण का यत्न और मानवीय अस्तित्व के प्रति जागरूकता का विकास हुआ है ।"[1] यह जागरूकता आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में भी पायी जाती है । पुराण पात्र हो या आधुनिक पात्र हो सब में जीवन के अर्थतत्व संबंधी खोज की प्रवृत्ति विद्यमान है । अस्तित्व बोध की यह नयी संवेदना पौराणिक संदर्भों और चरित्रों के माध्यम से जब प्रस्तुत होती है तो उसमें गहराई आ जाती है । पुराण और आधुनिक मनुष्य के बीच में इस स्थिति का एहसास होता है । इसलिए यह गहराती रहती है । अतः उन पुराण पात्रों में उपलब्ध अस्तित्व संबंधी बोध हर एक आधुनिक व्यक्ति का आत्मबोध है ।

"आत्मजयी" कठोपनिषद् के नचिकेता की कथा पर आधारित कुँवर नारायण का कथाकाव्य है । "आत्मजयी" के नचिकेता अर्थतत्व की तलाश में मग्न है । "आत्मजयी" की भूमिका में कवि ने लिखा है - आत्मजयी में ली गयी समस्या नयी नहीं - उतनी ही पुरानी है (या फिर उतनी ही नयी) जितना जीवन और मृत्यु संबंधी मनुष्य का अनुभव ।"[2] इसलिए कह सकते है कि

---

1. अस्तित्ववाद और साहित्य - श्याम सुन्दर मिश्र - पृ. 123
2. आत्मजयी - भूमिका - कुँवर नारायण - पृ. 9

अस्मिता की तलाश सनातन आत्मसंघर्ष की अवस्था का एक पक्ष है । यह चिरन्तन अन्वेषण "आत्मजयी" के नचिकेता में प्रबल है ।

नचिकेता वाजश्रवा का पुत्र है जो धर्म-कर्म संबंधी मतभेदों के कारण अपने पिता से खिन्न होकर पानी में डूबकर आत्महत्या कर लेता है । "आत्मजयी" में नचिकेता मरता नहीं । वह पानी में डूबकर अचेत हो जाता है कुँवर नारायण के नचिकेता का पौराणिक व्यक्तित्व उभरता नहीं । वह आधुनिक चिन्तन संघर्ष का प्रतिनिधि है । पिता से खिन्न नचिकेता के मन में अपने सूने जीवन की सार्थकता की तलाश शुरू होती है । उसके हृदय में यह जिज्ञासा जाग उठती है कि मैं क्या हूँ ? और मैं क्या हूँ ? यह प्रश्न वह बार-बार पूछता है -

राग, रंग, भाव, स्पर्श
रूप, गन्ध, मोह, रस
ये दिखती इच्छाएँ स्वप्न-सी अधूरी है -
मुझसे उत्पन्न और मुझमें विलीन
एक निद्रा-भर मेरा है । -
लेकिन मैं क्या हूँ ?
मैं क्या हूँ ?[1]

उसकी सारी इच्छाएँ स्वप्न के समान अधूरी ही रहती है ।

"जीवन के चिरंतन सत्य की खोज में संलग्न यह पात्र अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन को लेकर चला है ।"[2] उसके तर्क-वितर्क में

---

1. आत्मजयी - कुँवर नारायण - पृ. 52
2. हिन्दी के खण्डकाव्य - शिवप्रसाद गोयल - पृ. 112

अस्तित्ववादी जीवन दर्शन के निदान ढूँढ सकते हैं -

अस्तित्व एक घातक तर्क भी हो सकता है
एक पाशविक भावना भी - इस तरह
कि युद्ध और कलह ज़रूरी लगे,
स्वार्थ और छल से जीना मज़बूरी लगे ।[1]

विषादग्रस्त नचिकेता के सामने अस्तित्व की पहचान और उसका संरक्षण अस्तित्व बनाये रखने की चिन्ता का द्योतक है । अस्तित्व की चिन्ता में तर्क ही तर्क है । नचिकेता का सारा विश्वास ढह गया है । विश्वास खानेवाले व्यक्ति हमेशा अपने अस्तित्व की चिन्ता में मग्न रहता है । कवि के अनुसार उसके अन्दर वह बृहत्तर जिज्ञासा है जिसके लिए "केवल सुखी जीना काफी नहीं, सार्थक जीना ज़रूरी है ।"[2] इसी तरह स्वप्नावस्था के अंतिम क्षणों में धीरे धीरे नचिकेता जाग्रत हो जाता है । मृत्यु के बाद भी वह अपना अस्तित्व को पहचानता है । वह अनुभव करता है -

क्या मैं सचमुच ही जीवित हूँ ?
क्या जीवित ही
मैं ने जीवन को खोने का अनुभव जाना ?[3]

वास्तव में जीते ही मरने का अनुभव और मृततुल्य अवस्था से फिर जीने का अनुभव दोनों एक ही व्यक्ति के जीवन में अनुभूत हो जाते हैं । इससे यह विदित हो जाता है कि किसी भी अवस्था में आत्मा का नाश नहीं होता, चिरंतन है । इसलिए आत्महत्या के प्रयत्न के बावजूद नचिकेता की आत्मा उसके शरीर की उपेक्षा नहीं करती । "सनातन आत्मा" की परिकल्पना उपनिषदीय संकल्प है ।

---

1. आत्मजयी - कुँवर नारायण - पृ. 21
2. आत्मजयी - भूमिका - पृ. 3
3. आत्मजयी - कुँवर नारायण - पृ. 104

कवि ने उपनिषद् की चिरंतन सत्ता आत्मा की अनश्वरता पर कोई आघात न पहुँचाते हुए आधुनिक व्यक्ति के मन की जिज्ञासा से नचिकेता की मानसिक अवस्था को जोड़ा है । "नचिकेता के चरित्र की केन्द्रीयता में दार्शनिक धारणा को प्रमुखता से मानवीय अनुभवों की गहराई तथा मनुष्य के समकालीन संदर्भों से संलग्न कर कविता को प्रासंगिक तथा विश्वसनीय बनाया गया है ।"[1] इसलिए "आत्मजयी" में -

जीवन क्या है ?
मृत्यु क्यों
मुक्ति कैसे ?
ईश्वर कहाँ ?[2]

मृत्यु, मुक्ति, ईश्वर आदि की चिंता अस्तित्ववादी चिंता के कारण मौजूद है । "अस्तित्ववादी दर्शन के अनुसार शून्यता, निराशा, व्यथा, विसंगति, संत्रास, अपराध भावना, एकाकीपन आदि प्रत्यय मानवीय अस्तित्व के साथ अनिवार्य रूप से संबद्ध है ।"[3] आज के मनुष्य में मृत्यु, युद्ध, विषाद, शंका, अकेलापन, ईश्वर की चिंता सब एक साथ मिलते हैं । नचिकेता भी इसी आशंका से मुक्त नहीं । वह अपने आप अकेला समझता है । उसका द्वैध यह सोचने को बाध्य कर देता है कि वह जीवित है या केवल अपहृत, संज्ञा है या केवल व्यवहृत -

जीवन में यह कैसा कुटिल द्वैध ?
ये कैसे विधान-निर्मय जीना अवैध ?
जीवित हूँ ? या केवल अपहृत हूँ ?
संज्ञा हूँ या केवल व्यवहृत हूँ ?[4]

---

1. कुँवर नारायण और उनका साहित्य - अनिल मेहरोत्रा - पृ. 24
2. आत्मजयी - कुँवर नारायण - पृ. 118
3. अस्तित्ववाद दार्शनिक तथा साहित्यिक भूमिका - लाल चन्द्र गुप्त मंगल - पृ. 92
4. आत्मजयी - कुँवर नारायण - पृ. 31

यह बोध वास्तव में उसके अस्तित्ववादी आत्मबोध है । अपने लिये अर्थ खोजने की प्रवृत्ति अस्तित्ववादियों की है । "भारतीय संदर्भ में आत्मबोध परमात्मबोध बन जाता है और अस्तित्ववादी होने से वह आत्मबोध ही रह जाता है ।"[1]
यह आत्मबोध "आत्मशक्ति" शीर्षक में स्पष्टत: कहा गया है -

यह तुझसे उत्पन्न हुआ संसार
स्वप्न है तेरा ही
तेरी इच्छाओं का विकास है ।
तेरे आत्म-बोध से छनती हुई ज्योति का
खाली पट पर एक अनर्गल छाया-नर्तन ।
उससे मत अधीर हो,
केवल मन को कर संयमित
उसे तू नया अर्थ दे - नया माध्यम
आत्म-शक्ति पर निर्भर होकर ।[2]

कवि की दृष्टि आत्मबोध पर अधिक टिकी रही है । आत्म-शक्ति पर निर्भर होकर मन को संयमित कर जीवन को एक नया अर्थ देने का अनुरोध कवि की मौलिक दृष्टि है । ऐसा करने पर आत्मा को ऐसी एक स्वायत्तता प्राप्त हो जाय जिससे जीवन को चिरंतन संतोष की प्राप्ति होती है । "जीवन अथवा आत्मा के किसी पक्ष पर कवि जितनी बार दृष्टिपात करता है उसी क्षण उसे एक नयी स्थिति का बोध होने लगता है ।"[3] यही आत्मबोध नचिकेता को अपने जीवन को गतिशील बनाने में पूर्णत: सहायक बन गया ।

---

1. नयी कविता की प्रबंध चेतना - महावीर सिंह चौहान - पृ. 114
2. आत्मजयी - कुँवर नारायण - पृ. 94
3. नयी कविता की नाट्यमुखी भूमिका - हुकुम चन्द्र राजपाल - पृ. 84

"कनुप्रिया" में राधा केवल एक ही प्रत्यक्ष चरित्र है जिसके स्वकथनों द्वारा एक प्रेमकाव्य की कथा का बहिर्स्फुरण हुआ है । इसलिए इसमें प्रत्यक्ष अर्थतत्व का बोध भी राधा के जीवन के अर्थतत्व की तलाश है । उसपर अस्तित्ववादी विचार धारा का प्रभाव स्पष्ट रूप से पडा है । "अस्तित्ववाद के अनुसार प्रामाणिक दर्शन का उद्भव मानव के वैयक्तिक अस्तित्व से होता है ।"[1] व्यक्तिनिष्ठता का आस्तित्ववादी परिप्रेक्ष्य "कनुप्रिया" में स्पष्ट है । क्षणबोध की चिंता और अस्तित्व का अर्थ जानने की इच्छा राधा में प्रखर हुई है । राधा को लगता है कृष्ण इस संपूर्ण विश्व का स्रष्टा है ; उसकी नियति से ही विश्व का संचालन होता है -

कौन था वह
जिसके चरम साक्षात्कार का एक गहरा क्षण
सारे इतिहास से बडा था, सशक्त था ।[2]

यह क्षणभोगी व्यक्तित्व अस्तित्ववादी दर्शन के प्रभाव के कारण है । यह क्षणबोध नयी कविता में प्रतिफलित आस्तित्ववादी प्रवृत्ति है । राधा एक एक क्षण का अनुभव करती है । "पूर्वराग" के सभी गीत में राधा की वैयक्तिकता उभर आती है -

मैं तुम्हारी नस-नस में पंख पसारकर उडूँगी
और तुम्हारी डाल-डाल में गुच्छे गुच्छे लाल लाल कलियाँ बन खिलूँगी ।[3]

जब मैं जाना ही नहीं चाहती
तो बाँसुरी के एक गहरे आलाप से

---

1. अस्तित्ववाद: दार्शनिक तथा साहित्यक भूमिका - डॉ. लाल चन्द्र गुप्त मंगल - पृ. 70
2. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 58
3. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 11

मदोन्मत्त मुझे खींच बुलाते हो
और जब वापस नहीं आना चाहती
तब मुझे अंशतः ग्रहण कर
संपूर्ण बनाकर लौटा देते हो ![1]

उपरोक्त संदर्भ राधा के व्यक्तित्व का निदान है । व्यक्तित्व का यह बोध अस्तित्व का स्वभाव है । कनुप्रिया की राधा अपने व्यक्तित्व को बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील है । "विश्वगत मानवीय अस्तित्व व्यक्ति इकाई के रूप में अपने चारों ओर बिखरे हुए समाज और परिस्थितियों से संघर्षशील रहता है । इसी संघर्ष क्रम में अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए और सार्थक अस्तित्व के प्रमाणीकरण के लिए वह व्यक्तिगत रूप से निर्णय करता है ।"[2] अतः राधा अपने अस्तित्व की रक्षा करने का प्रयास करती है -

बिना मेरे कोई भी अर्थ कैसे निकल पाता
तुम्हारे इतिहास का
शब्द, शब्द, शब्द.....
सब
रक्त के प्यासे
अर्थहीन शब्द[3]
× × × × × × × × ×
तुम्हारे संपूर्ण अस्तित्व का अर्थ है
मात्र तुम्हारी सृष्टि
तुम्हारी संपूर्ण सृष्टि का अर्थ है

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 18
2. अस्तित्ववाद और साहित्य - श्याम सुन्दर मिश्र - पृ. 15
3. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 79

मात्र तुम्हारी इच्छा
और तुम्हारी संपूर्ण इच्छा का अर्थ हूँ
केवल मैं !
केवल मैं !!
केवल मैं !!![1]

अस्तित्व की रक्षा का प्रयास अस्तित्ववादी धारणा का मूल तत्व है । अपने अस्तित्व की रक्षा करनेवाली राधा का चरित्र उज्ज्वल है । कृष्ण के संपूर्ण अस्तित्व का अर्थ मात्र उनकी सृष्टि है ; उनकी संपूर्ण सृष्टि का अर्थ है मात्र उनकी इच्छा और उनकी संपूर्ण इच्छा का अर्थ है मात्र राधा । कृष्ण की इच्छा के संकल्प का अर्थ राधा ही है । वह अस्तित्ववादी चिंतन से प्रेरित होकर कई प्रकार की मनःस्थितियों से गुज़रती है । "स्व-अस्तित्वमय" की ओर उन्मुख विश्वगत अस्तित्वमय संघर्ष के तनाव का सदा अनुभव करता रहता है ।"[2] अतः "कनुप्रिया" की राधा अपने अस्तित्व का अर्थ पहचान कर सकती है ।

"सूर्यपुत्र" का कर्ण भी अपने अस्तित्व को लेकर चिंतित है । जगदीश चतुर्वेदी ने कर्ण को सूर्यपुत्र ही बताकर उसे कर्ण-कथाओं के बीच में प्रस्तुत किया है । "सूर्यपुत्र" होते हुए "सूतपुत्र" कहलाने की व्यथा और तज्जनित आत्मसंघर्ष कर्ण झेल रहा है । जन्म का अभिशाप, जाति का अभिशाप और कुल का अभिशाप उसे सता रहा है । नियति भी उसके साथ खिलवाड कर रही है । कुलमिलाकर उसका जीवन अभिशाप का पर्याय है । वह अपने अस्तित्व को लेकर इसलिए चिंतित है कि उसे लगातार एक खोखलापन महसूस हो रहा है ।

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 44
2. अस्तित्ववाद और साहित्य - श्याम सुन्दर मिश्र - पृ. 21

यह शून्यता अस्तित्व की है -

कर्ण रहता था उन्मन और खोया-सा
मानो सुलझाता हो कोई अंतस रहस्य
या कोई ऐसी पहेली अनबूझ
रखती थी उद्विग्न सदा
उसके तन, मन को ![1]

यह शून्यता निराशा के कारण उत्पन्न होती है । तब वह "एकाकीपन" का अनुभव करता है । अतः कर्ण अपने अस्तित्व की निर्मूलता का बोध करके एकाकी बन जाता है । सब के बीच में रहकर वह अजनबी और आत्मनिर्वासित अनुभव कर रहा है -

अपने अभिन्न मित्रों के मध्य रहता था गुमसुम
मंत्रणायें करती थीं उसको छल छद्म भरी
पितामह की अवहेलना सालती थी काँटे सी
सह रहा था निर्वासन दुःख से भरा हुआ ।[2]

व्यक्तित्व-हीनता का अभिशाप अस्तित्ववादी दर्शन का एक मुख्य पक्ष है । कर्ण का आत्मसंघर्ष इसी अभिशाप से उत्पन्न है ।

"एक पुरुष और" के विश्वामित्र के अन्दर हमेशा एक ज्योतिर्मयी आवाज़ गूँजती है, वह उसे अनसुना न कर पाता है । उसके लिए सिंहासन, सत्ता, ऐश्वर्य सब बेकार लगते हैं । इसलिए किसी "नयी" की तलाश में एक नये व्यक्तित्व के निर्माण में उसका मन लीन हो गया जहाँ न

---

1. सूर्यपुत्र - जगदीश चतुर्वेदी - पृ. 53
2. सूर्यपुत्र - जगदीश चतुर्वेदी - पृ. 89

राज्य है, न वैभव है और न रक्तपात । विश्वामित्र अनुभव करता है -

एक पुरुष और है
जो शायद भटकता नहीं बाहर के दृश्यों में
उसकी बेचैन अकुलाहट
कहीं अन्दर गहरे अंधेरे में आँखें खोलती है ।[1]

उसे विश्वास है कि उसके अन्दर एक और पुरुष है । बाहर की बेचैनी एवं भीतर अकुलाहट के कारण कहीं हृदय संघर्ष से भरा है । एक और पुरुष की खोज अस्तित्व की खोज है । भूमिका में कवि ने कहा भी है - "यह काव्य आज के जीवन की इस मूल समस्या पर विचार करता है जो एक ओर व्यक्ति को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए सजग करती है, दूसरी ओर समाज के नैतिक मूल्यों के साथ सीधे टकराव की स्थिति में कहीं अन्दर ही अन्दर एक ऐसे बोध को जगाती है, जिससे वह अपने लिए नये मूल्यों की स्थापना करता है ।"[2] यह आन्तरिक चेतना जीवन की स्थापना के बारे में सोचने को प्रेरित करती है । इसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता की स्थापत्य है । आत्मसंघर्ष को स्वतंत्रता की स्थापत्य से जोडकर डॉ. विनय ने इसे अस्तित्ववादी आयाम भी प्रदान किया है । इसी आत्मसंघर्ष को मानवीय मूल्यों से जोडकर सामाजिक आयाम देने का कार्य भी किया है ।

"आत्मदान" की अहल्या आन्तरिक संवाद द्वारा संघर्ष की धधकती हुई ज्वाला को कम कर देती है । अहल्या भी जीवन की सार्थकता की चिंता से त्रस्त है । जाने या अनजाने उसके मन में भी प्रश्न उभर आये हैं -

---

1. एक पुरुष और - डॉ. विनय - पृ. 24
2. एक पुरुष और - पूर्वकथन - डॉ. विनय - पृ. 8

कैसे पा सकते हैं सार्थकता जीवन की
ये रहन रखे-से क्षण
तप ! तप ! तप !!
आखिर कब तक ?

यही प्रश्न उसे इन्द्र के साथ देह संबंध की नैतिकता अनैतिकता पर विचार करने का कारण बनता है । इसलिए वह इन्द्र मिलन पर पश्चाताप नहीं करती ; परन्तु उसे वह आत्मा की चरम उपलब्धि तथा आत्म साक्षात्कार स्वीकार करती है -

नहीं यह बिखराव नहीं
देह-मन का
आत्म-साक्षात्कार है ![2]

आत्म साक्षात्कार की यह भावना व्यक्ति की स्वतंत्रता की कामना की परिणति है । आत्मा की नैतिकता को वह शरीर की नैतिकता से जोडना चाहती है और अपनी स्वतंत्रता को नये सिरे से परिभाषित करना चाहती है । "आत्मदान" पर अस्तित्ववादी चिन्तन के इसी पक्ष का प्रभाव पडा है । इन पंक्तियों में अस्तित्व-संकट की चरम सीमा गहराई गई है -

दोहरी नियति जीती
बाहर-भीतर की
एक अनाम साधना में लीन
लंबी रात हूँ
जर्जर
क्षीण....."[3]

---

1. आत्मदान - बलदेव वंशी - पृ. 4
2. आत्मदान - बलदेव वंशी - पृ. 11
3. आत्मदान - बलदेव वंशी - पृ. 32

आत्म-अन्वेषण की स्थिति भी हृदयस्पर्शी है -

था
यह पाप कर्म क्या ?.....
आठों पहर
ऋतु-चक्र की साक्षी में
यह "स्व" की पहचान थी
या मन के अतल से फूटी
यह समूची देह की अनुगूँज थी ।

इस तरह अहल्या के आत्मसंघर्ष के कई आयाम हैं और उनमें मुख्य उसके चिंतित मन का नैतिक चिंतन है । पूरी तरह से वह इस संघर्ष को सामाजिक मूल्यों के संदर्भ में देखना नहीं चाहती ।

हिन्दी कविता के आधुनिक दृष्टि से लिखे गए कथाकाव्यों में कुछ अक्सर एक सवाल उपस्थित करता है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व की क्या मूल्यवत्ता है । यही सवाल जब दुहराया जाता है या गहराता जाता है तो उसमें आत्मसंघर्ष की अनेक बातें खुलने लगती है । इस कथन से इन काव्यों में चाहे वह आत्मजयी हो या परवर्तीकाव्य आत्मदान, अस्तित्ववादी चेतना की परख स्पष्ट है । इस दर्शन विशेष को लेकर काफ़ी मतभेद है । इतने पर भी यह तथ्य स्वीकार करना पड़ता है कि अस्तित्ववाद का किंचित प्रभाव इन कथाकाव्यों को अवश्य पुष्ट किया है । इस तरह से आत्मसंघर्ष की गहराती स्थितियों का स्पन्दन उसके रचनात्मक पक्ष को अस्तित्ववादी भी बना रहता है ।

---

1. आत्मदान - बलदेव वंशी - पृ. 33

सामाजिक विडंबनाओं से घिरे हुए व्यक्ति का आत्म-संघर्ष

व्यक्ति के आत्मसंघर्ष को वैयक्तिक धरातल पर देखने के साथ साथ सामाजिक विसंगतियों के धरातल पर भी देखा जा सकता है । जिस प्रकार आत्मसंघर्ष को व्यक्ति का अपना परिवेश गहराता है उसी प्रकार सामाजिक परिवेश भी अपनी भूमिका निभाता है । आत्मसंघर्ष का वैयक्तिक धरातल कविता को दार्शनिक अन्दाज़ प्रदान कर सकता है जबकि सामाजिक धरातल मानवीय दृष्टि प्रदान कर सकता है । आत्मसंघर्ष व्यक्ति का है, पर कुछ उकसानेवाले अन्य तत्व होते हैं । उनमें से एक है सामाजिक विडंबनाएँ । सामाजिक विडंबनाएँ व्यक्ति के उस व्यक्ति पक्ष को झकझोरती है जो व्यक्ति को निजी होते हुए भी पूर्णतः निजी नहीं है ।

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में प्रयुक्त प्रत्येक पात्र आधुनिक व्यक्ति की स्थितियों का प्रतीक है । सामाजिक विडंबनाओं से घिरे आधुनिक व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करते हुए ये पुराण पात्र कई प्रकार के संघर्षों एवं मानसिक विक्षोभों का परिचय देते हैं । उनकी मानसिक द्विधा के कुछ अंश पुराण कथा के अनुभव ही है । लेकिन आधुनिक कवि कथा विन्यास को अपने ढंग से बदलता है । उस बदले हुए कथा परिवेश में पात्रों एवं संदर्भों की द्विधा और प्रमुख होती हैं । अर्थात् कथा के मूल में कहां रेखांकित द्विधात्मक स्थिति आधुनिक ढंग से रूपायित कर कथा-विन्यास में प्रखर हो जाती है ।

निर्जन गलियारे में पहरा देनेवाले प्रहरी की मानसिक अवस्था का चित्र निरर्थकता का है । यह निरर्थकता उनके आत्मसंघर्ष को

गहराती है -

मेहनत हमारी निरर्थक थी
आस्था का
साहस का
श्रम का
अस्तित्व का हमारे
कुछ अर्थ नहीं था[1]

इस प्रसंग में सामाजिक अराजकता का चित्रण है और आम आदमी के जीवन की निरर्थकता भी अंकित है । ये प्रहरी वास्तव में दास्यवृत्ति के प्रतीक हैं । उनकी दास्यवृत्ति का कोई मूल्य नहीं है । सामाजिक अराजक स्थिति ने उन्हें यांत्रिक बना दिया है । अंधियारे गलियों में अमानवीय एवं भयावह स्थिति के भोक्ता बनकर जीने के लिए वे बाध्य होते हैं । दिन-रात राज्य और सत्ता की सुरक्षा करनेवाले प्रहरी आज अपनी आस्था के प्रति चिंतित है । वे युग के अंधेपन के प्रति व्याकुल है । "ये प्रहरी व्यर्थता के कड़वे एहसास से थके हुए हैं । उन्होंने सत्रह दिनों के लोमहर्षक संग्राम में भाग तो नहीं लिया किन्तु राजमहल के सूने गलियारे में पहरा देते रहे । ये तो शारीरिक स्तर से अधिक मानसिक स्तर पर थके हुए जान पड़ते हैं ।"[2] आज की सामाजिक विडंबना की त्रासदी यही है कि आम आदमी सिर्फ भोक्ता है । आत्मसंघर्ष का यही कारण है । पर यह आत्मसंघर्ष व्यक्ति का न होकर एक सामाजिक स्थिति का है ।

"कनुप्रिया" की राधा के आत्मसंघर्ष का सामाजिक पक्ष भी है । राधा का सरल मन और सहज अनुभव उसके अपने है । उसी के द्वारा

---

१. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. १३
२. आधुनिक प्रबन्ध काव्य संवेदना के धरातल - विनोद गोदरे - पृ. 47

वह बीते हुए एक एक क्षण को चरम साक्षात्कार के रूप में पाती है । प्रेम की गहरी संवेदना की अपेक्षा वह और कुछ नहीं चाहती । वह एक चिरंतन मोह की स्थिति में क्षण भोगना चाहती है । "राधा रागात्मकता की चरम तन्मयता के क्षणों को ही पूर्ण सार्थक मानती है । प्रणय के मधुर क्षणों को ही सत्य और जीवन का चरम बिन्दु समझती है ।"[1] इसीलिए राधा के लिए ये शब्द अर्थहीन हैं -

कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व
शब्द, शब्द, शब्द.....
मेरेलिए नितान्त अर्थहीन है[2]

कर्म, धर्म, कर्तव्य आदि शब्द राधा के लिए अर्थहीन शब्द हैं, इन्हें सुनकर भी कुछ नहीं पाती । राधा को केवल "राधन्" शब्द ही सुनाई पडता है -

मुझे सुन पडता है केवल
राधन्, राधन्, राधन् ।[3]

इन प्रकरणों में राधा के व्यक्ति पक्ष और उसके प्रेमाधीन मन उभरता है । इस पक्ष में उसका संघर्ष व्यक्तिपरक है । भूमिका में भारती ने बताया है -"ऐसे भी क्षण होते हैं जब हमें लगता है कि यह सब जो बाहर का उद्वेग है - महत्व उसका नहीं है - महत्व उसका है जो हमारे अन्दर साक्षात्कृत होता है ।"[4] ऐसे प्रसंगों में राधा के आत्मसंघर्ष को उसकी निजता से अलग कर सामाजिक प्रसंग में देखने का कार्य किया गया है ।

---

1. हिन्दी के खण्डकाव्य - शिवप्रसाद गोयल - पृ. 108
2. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 71
3. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 72
4. कनुप्रिया - भूमिका - धर्मवीर भारती -

कर्ण का जीवन सामाजिक परिवेश से कुचला गया जीवन है । पुराण में भी कर्ण अपने जीवन भर संघर्षों और द्वन्द्वों से प्रताडित रहा है । हमेशा उसके तन और मन को सतानेवाली अनकही या अनचाही बातों से कर्ण जूझता रहता है । उसका संघर्ष कभी थमा नहीं है । उसे निरंतर अपमानित होना पडा -

खीझ गया कर्ण
धधक उठी प्रचण्ड अग्नि अंतर में अनायास
रख लिया तना धनुष उतारकर कंधी पर
चल दिया सहमा-सा अपमान से भरा हुआ ।[1]

अपमान की प्रचण्ड ज्वाला में धधककर चलनेवाले कर्ण का मानसिक संघर्ष अग्निकुण्ड के समान है । उसे कोई बुझा नहीं सकता । यह आत्मसंघर्ष का निजी पक्ष है । वह बाद में सामाजिक विडंबना का स्पष्ट रूप धारण कर लेता है । उसका उदाहरण है वर्ण-व्यवस्था के कटु बाणों की बौछार से कर्ण को रौन्दे जाने के अनेक कथा-प्रसंग । व्यक्ति की निजता पर जब सामाजिक विसंगति का बाण पडता है तो व्यक्ति क्षत-विक्षत होता है ।

पुराण पात्रों के माध्यम से इस तनस्था को आसानी से नये कवि संप्रेक्षित करते हैं । वे पुराण के इन दलित पात्रों को लेकर अपना कथा विस्तार करते हैं । "शबरी" और "शम्बूक" ऐसे पात्र हैं । ये दोनों निम्न जाति के हैं । पर वे अपनी निम्नजातीयता को श्रेष्ठ कर्म द्वारा उच्च संस्कार में बदलने के लिए प्रयत्नशील है । यह नयी दृष्टि नये सामाजिक परिवेश की उपज है । परन्तु जीवन की लक्ष्य-पूर्ति के लिए उन्हें क्या क्या न झेलना पडा ?

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 79

उनका आत्मसंघर्ष व्यवस्था का दुष्परिणाम है । शम्बूक की इन पंक्तियों में यह बात बलवती है -

जाने क्यों मेरे मन में
युग-युग से परिभाषित
व्यक्ति के चरित्र को
मानव भविष्य को
नये सन्दर्भों में
जानने समझने का
उपजा संकल्प है ।[1]

शबरी की सन्यासवृत्ति के खिलाफ़ उठे सवाल, सन्देह, व्यंग्य आदि उन विसंगतियों के उदाहरण हैं जो निरंतर समाज से बहिष्कृत या समाज में दलित समझे गये व्यक्तियों पर लागू समझे गये हैं -

कुछ ने मुँह बिचकाया, कुछ ने
मुस्कान- कुटिलता दरसायी,
कुछ ने सोचा - यह कौन देवि
जो श्यामा बन आश्रम आयी ![2]

यह भील जाति की कुलटा
सतियों से होगी पावन ?
अब आर्य-कण्ठ से शूद्रा
का कटना होगा गायन ?[3]

---

1. शम्बूक - जगदीश गुप्त - पृ. 84
2. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 22
3. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 42

सामाजिक विडंबना की यह आत्मघाती प्रवृत्ति व्यक्ति के संघर्ष बढाती है । आत्मपीडा एवं आत्मघाती अनुभूतियों के कारण साधारण जन वैयक्तिक पीडा से संत्रस्त हो रहे हैं ।

"अग्निलीक" काव्य के अन्तिम भाग में सीता की दबी हुई आत्मपीडा सीमाओं को तोडकर वाल्मीकि के सामने प्रश्न करती है । प्रक्षुब्ध मन की वेदना इस प्रकार बाहर फूट पडता है -

राम ने तो मुझे बहुत पहले ही छोड दिया था
आज मैं भी राम को छोडती हूँ ।
अब मैं स्वतंत्र हूँ, मुक्त हूँ,
अपने आप में पूर्ण हूँ
आप अपनी निर्देशिका, आप अपनी कर्ता और
आप अपनी भोक्ता हूँ[1]

असफल जीवन की व्यर्थता से पीडित एवं उपेक्षित व्यक्ति का इस अवस्था तक पहुँचना सामाजिक विडंबना से घिरे व्यक्ति के लिए एक स्वाभाविक उपक्रम मात्र है । सीता इसलिए समाज व्यवस्था की असंगतियों से मुक्त होना चाहती है । स्वतंत्र होने की इस कामना में सीता के आधुनिक नारीत्व का प्रतिफलन है । इसमें उसके आत्मसंघर्ष की तीव्रता भी प्रतिफलित है ।

अस्तित्व के प्रति आधुनिक नारी भी सचेत और सजग है । अपनी लघुता का अनुभव मानसिक उथल-पुथल की एक अकुलाहट है । इन्द्र के बुलावे पर मेनका इसी अकुलाहट के साथ सोचती है, इन्द्र ने क्यों बुलाया है ?

---

1. अग्निलीक - भरत भूषण अग्रवाल - पृ. 53

उसके जीवन में यह पहला अनुभव है उसे देवसभा की ओर बुला जाय । मेनका अपने अशांत मन की ज्वालाओं को शांत करने का पारश्रम करती है । वह देवलोक की माया से विरक्त होकर सार्थक जीवन जाना चाहती है । यही तृष्णा उसे सदैव काटती रही -

मेनका की संपूर्ण शय्या पर
एक अनबुझी तृषा मँडराने लगी
तूफानों से लड़ता हुआ उसका मस्तिष्क ।

यह तृष्णा हर एक नारी में होती है । मन की इच्छा प्रकट करने में असमर्थ मेनका मानसिक पीडा एवं द्वन्द्व का अनुभव कर रही है । सामाजिक व्यवस्था की इस यंत्रणा से घिरने पर व्यक्ति का अस्तित्व तुच्छ और अकिंचन बन जाता है । संघर्ष के इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता । यह निज का संघर्ष है । साथ ही यह सामाजिक विरोधाभास से उत्पन्न संघर्ष भी है ।

आधुनिक कविता के प्रारंभिक दौर में व्यक्ति चेतना का एक दौर भी रहा है । वह पूर्णरूपेण व्यक्तिवादी दृष्टि का परिचायक नहीं है । इस प्रवृत्ति से ओतप्रोत होकर लिखे गये कथाकाव्यों में व्यक्ति-चेतना का स्वर मुख्य है । इसमें पुराण पात्र अपनी अस्मिता की तलाश में मग्न नज़र आते है । यह कविता बदलती गई । उसने विविध सामाजिक दृष्टि को अपनाया । इसलिए प्रारंभिक व्यक्ति चेतना को सामाजिकता के धरातल पर व्यक्त करने का कार्य भी हुआ है । ऐसे काव्यों में सामाजिक विसंगतियों को प्रमुखता मिली । पर व्यक्ति की निजता भी आंतरिक ढंग से रेखांकित होती गई । ऐसे काव्यों में व्यक्ति सामाजिकता की रसी को छोडता नहीं । उपरोक्त चर्चित कथाकाव्यों में ऐसी एक एकरस दृष्टि का परिचय मिलता है ।

---

1. एक पुरुष और डॉ. विनय - पृ. 48

राजनीतिक विसंगतियों का आत्मसंघर्ष

रातनीतिक विसंगति का एक अतिरिक्त आयाम है । इसमें स्थिति की सामान्यता लुप्त होती है और उसका विरोधीकरण होता है । राजनीतिक विसंगति में सत्ता का प्रभुत्व सर्वप्रमुख है । उसके गलत प्रयोग के कारण इतिहास में हमेशा संघर्ष चलता रहा है । व्यक्ति जीवन पर इसका असर पडता है तो व्यक्ति झुलस लगता है । उसकी सत्ता को हनन करनेवाली शक्ति के आगे झुककर भी वह त्रस्त होता है और आत्मसंघर्ष की स्थितियों से गुज़रने के लिए बाध्य होता है ।

आधुनिक दौर के कई कथाकाव्यों में राजनीतिक पक्ष का अंकन हुआ है क्योंकि कोई भी व्यक्ति समसामयिक राजनीति से मुक्त नहीं । वह किसी न किसी तरह अपने समय की राजनीतिक परिस्थितियों से जुडा है । इसलिए उसे राजनीतिक विसंगतियों का भी सामना करना पडता है । व्यक्ति जीवन की यह एक विडंबना है । इस विडंबना को कथाकाव्यों में स्थान मिला है । कथाकाव्य के कथा-संदर्भों में ऐसी राजनीतिक विसंगतियों की अपनी व्यंजना है । उन विसंगतियों से आधुनिक जीवन का संबंध भी है । एक प्रकार की पारस्परिकता है । आधुनिक कवि व्यक्ति के संघर्ष को राजनीतिक विसंगति के मध्य पहचानते हैं । राजनीतिक विसंगतियों से घिरा हुआ व्यक्ति आत्म संघर्ष से उलझा हुआ व्यक्ति इस प्रकार छटपटाता है कि वह कभी कभी अपनी दिशा प्रकट नहीं पाता है । आत्मसंघर्ष के इस आयाम में व्यक्ति का अहं प्रताडित और उसका अस्तित्व मूल्यहीन नज़र आता है । यह आधुनिक जीवन की एक सहज स्थिति है ।

धर्मवीर भारती के "अंधायुग" और "कनुप्रिया" में राजनीति का एक अवांछित पक्ष है । प्रेम और युद्ध दो विरोधी तत्व है । इन दो परस्पर विरोधी तत्वों के आधार पर "कनुप्रिया" की विवेचना करने पर लगता है कि राधा अपने रागात्मक स्तर पर युद्ध की सार्थकता का अर्थ खोजने का प्रयास करती है । योद्धा कृष्ण के चले जाने के बाद राधा सोचती है -

बुझी हुई राख, टूटे हुए गीत, डूबे हुए चाँद
रीते हुए पात्र, बीते हुए क्षण-सा
मेरा यह जिस्म[1]

इसमें विरह की पीडा ही व्यंजित नहीं है । यह उस संघर्ष का सूचक है जो राधा के लिए असहन है । कृष्ण के इस परिवर्तित रूप को वह आत्मसात् नहीं कर सकती है । वह सन्देह प्रकट करती है -

पर इस सार्थकता को तुम मुझे
कैसे समझाओगे कन्हाई ?[2]

राजनैतिक विसंगति के अधीन होने के कारण राधा यह सवाल करती है -

हारी हुई सेनाएँ, जीती हुई सेनाएँ
नभ को कँपाते हुए, युद्ध-घोष, क्रन्दन-स्वर,
भागे हुए सैनिकों से सुनी हुई
अकल्पनीय अमानुषिक घटनाएँ युद्ध की
क्या ये सब सार्थक हैं ?[3]

इसमें व्यक्ति की छटपटाहट का पूरा एहसास है । युद्ध की दिशाहीनता भी व्यंजित है । उसकी शक्तिमत्ता से संघर्ष मुखर है । पर समान्तर ढंग से

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 57
2. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 70
3. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 68

राजनीतिक मूल्यहीनता के चित्र भी उभरे गये हैं । "अंधायुग" में युद्ध के बाद की वास्तविक राजनीतिक स्थिति के संबंध में आम आदमी की सही व्याख्या प्रहरियों के संवाद के द्वारा की गयी है -

शासक बदले
स्थितियाँ बिलकुल वैसी है
इससे तो पहले के ही शासक अच्छे थे
अन्धे थे
लेकिन वे शासन तो करते थे
ये तो संतज्ञानी है
शासन करेंगे क्या ?[1]

शासक बदलने पर प्रजा के मन में सन्देह जाग उठता है कि नया शासक की शासन-व्यवस्था कैसी होगी ? वे शासन करेंगे या नहीं ? प्रजा की यह सहज आशंका प्रहरियों के माध्यम से व्यंजित है । प्रहरी के अन्दर जो पीडा है वह प्रत्येक व्यक्ति की व्यथा है । "प्रहरियों के वार्तालाप में व्यंग्य, विडंबना और परितप्त वेदना वर्तमान है । प्रहरियों की पीडा वैयक्तिक न होकर आधुनिक मनुष्य की पीडा का संकेत देती है ।"[2] : इनका वार्तालाप जीवन सत्य का स्पर्श करता है । शासन तंत्र की शिथिल डोरी में भी उनकी स्वतंत्रता, कोमल भावनाएँ और उनका सारा संकल्प प्रकंपित है । रक्षित होने के लिए आज कुछ नहीं है तो पहरा देने का अर्थ क्या है ? इसी निरर्थकता के देश में प्रहरियों का मन अँधेरे में छटपटा रहा है । यह छटपटाहट आधुनिक व्यक्ति की मानसिक अवस्था का द्योतक है । अतः आत्मसंघर्ष पद्य इसमें मुखर है

---

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 83
2. आधुनिक प्रबन्ध काव्य संवेदना के धरातल - सुरेश गौतम - पृ. 47

उसके साथ राजनीतिक संकट को जोडा गया है । यह उलझन इन प्रहरियों के शब्दों में व्यक्त है ।

महा भारत युद्ध की अमानवीयता का चित्रण नरेश मेहता ने "महाप्रस्थान" में पाँडवों के वैचारिक द्वन्द्व के द्वारा स्पष्ट किया है । राज्य-व्यवस्था की अमानवीय प्रकृति को स्पष्ट करना कवि का लक्ष्य है । व्यवस्था की अमानवीयता वर्षों तक व्यक्ति के मन को काटती रहती है । महाप्रस्थान के निर्णय के संबंध में युधिष्ठिर के विचार इसका साक्षी है -

> वर्षों के वैचारिक मन्थन के बाद ही
> मैं ने यह निर्णय किया था बन्धु ! कि
> सारे मानवीय दु:खों का आधार
> यह सत्य है
> राज्य-व्यवस्था है
> और राज्य-व्यवस्था का दर्शन है ।[1]

युधिष्ठिर के इस वैचारिक द्वन्द्व की पडताल करने पर मालूम होगा कि मनुष्यत्व का तिरस्कार करनेवाली राज्य-व्यवस्था में कराहते हुए मनुष्य की त्रासदी है । कभी-कभी ऐसा भी होता है यह त्रासदी व्यक्ति को गहन आत्मसंघर्ष की ओर ले जाती है । विजयी होकर पराजितों की मानसिक अवस्था पाँडवों को झकझोरती रही है । महाप्रस्थान के अवसर पर पाँडवों को अस्वस्थ बनानेवाले कई प्रश्न है । अर्जुन का वह दिव्यास्त्र अब कहाँ है ? विदुर क्यों तटस्थ रहे ? पितामह भीष्म और द्रोण-कृप आदि ने क्यों अधर्म का पक्ष लिया है ? अर्जुन सोचता है -

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 109-110

चक्रव्यूह में फँसा हुआ अभिमन्यु
उस अश्वत्थामा के द्वारा
वह वंश नाश
उत्तरा का वह करुण क्रन्दन
सुलग रहा
धू धू करता सारा का सारा जीवन[1]

दोनों सन्दर्भ वैयक्तिक आत्मसंघर्ष की परम परिणति है। सभी अपने अपने मानसिक विक्षोभ के अधीन है। उनका आधुनिक संदर्भ भी है। अब वे खोयी हुई मर्यादाओं तथा जीवन मूल्यों के संबंध में व्याकुल है। यह दार्शनिक समस्या नहीं है। यह आत्मप्रताडित अवस्था है। "कवि की विशेषता इस में है कि वह एक ओर तो प्रचलित स्थूल बाह्य युद्ध की स्थिति को प्रस्तुत करता है वहीं दूसरी ओर प्रत्येक पात्र के अन्तस में चल रहे, अन्तः संघर्ष अथवा कहें कि युद्ध को भी स्पष्ट करता गया है।"[2] वास्तव में संघर्षजनित पीडाओं और यातनाओं के कारण व्यक्ति अपने को संभालने में असमर्थ होता है। यह असमर्थता हर युद्ध के बाद की स्थिति में है। अर्थात् राजनीतिक विसंगति की उपज है।

युद्ध का औचित्य और अनौचित्य का चिरंतन समस्या है। यह हर युग की जटिल समस्या है। "संशय की एक रात" उसी समस्या को प्रक्षेपित करती है। उसमें संशय, संघर्ष एवं द्वन्द्व का तड़पन हैं। राम को ईश्वर के अवतार के बदले सहज मानव एवं राजा के रूप में चित्रित किया गया है

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 55
2. नरेश मेहता का काव्य: विमर्श और मूल्यांकन प्रभाकर शर्मा - पृ. 122

अत: एक आधुनिक व्यक्ति की मानसिक उलझनें इस पुराण पात्र के द्वारा नरेश मेहता ने अभिव्यक्ति दी है । राम सारी व्यथा इन शब्दों में व्यक्त होती है -

लक्ष्मण
इतने प्रश्न
शंका और कुशंकाएँ
मुझे घेरे हुए हैं ।
इन उपकार के बदले
कृतज्ञित हूँ
किन्तु अपनी दृष्टि में ही
मैं अपात्री लग रहा हूँ[1]

युद्ध के आतंक से त्रस्त राम के आत्मसंघर्ष में राजनीतिक विसंगति विवृत होती है । निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए लाखों, निर्दोष जनता को क्यों बलिवेदी पर चढ़ायें -

कैसा युद्ध
ऐसी विजय
ऐसी प्राप्ति
सब मिथ्यातत्व है
नरसंहार के व्यामोह के प्रति
वितृष्णा से भर उठा हूँ[2]

वास्तव में राम के मन में उदित संशय एक व्यक्ति का आत्मसंघर्ष है । पर इस सन्देह का राजनीतिक पक्ष जो युद्ध की विभीषिका से संबंधित है, काव्य में एक

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 21
2. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 24

गहरी स्थिति उत्पन्न करती है -

मुझे ऐसी जरा नहीं चाहिए,
बाण सिद्ध पारवी सा विवश ।
साम्राज्य नहीं चाहिए,
मानव के रक्त पर धरती आती
सीता भी नहीं चाहिए
सीता भी नहीं [1]

राम की इस घोषणा में पराजय भीति से उत्पन्न डर नहीं या कायर व्यक्ति की आत्मप्रवंचना भी नहीं है । अपने आत्मसंघर्ष के दौरान् प्राप्त यह पहचान उन विसंगतियों से उबरने के लिए सहायक होती है विभीषण के सन्देह में भी यही स्वर है -

मुझे भी सालता है
स्वयं का संघर्ष
मैं भी विभाजित हूँ
मैं भी ऐतिहासिक भग्न हूँ
तभी तो आज की ही भाँति
राम !
मुझमें भी अनिर्णय है । [2]

विभीषण के मन में भी पराजित लंका की झुकी हुई अपमानित पताका की चिंता हो रही है । यही चिंता उन्हें जीवन की सार्थकता और युद्ध की अनिवार्यता के बीच में खडा कर दी । विभीषण का व्यक्तित्व भी वैयक्तिक आघातों के

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 32
2. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 72

निमित्त टूटा हुआ है । अत: "संशय की एक रात" के अधिकतर पात्र आधुनिक युग के व्यक्ति के अन्तर्बाह्य द्वन्द्वों एवं संघर्षों का प्रतिनिधित्व करते है । सच पूछा जाय तो राजनीतिक विसंगतियों से उत्पन्न राम का आत्मसंघर्ष कवि का आत्मसंघर्ष है ।

राज्य व्यवस्था या सत्ता की महत्वाकांक्षा राजनीतिक विसंगतियों में एक प्रमुख आयाम है । प्रजा पीडित अनुभव करती है । सामाजिक मूल्यों का ह्रास जब होता है शासकीय व्यवस्था सत्ता केन्द्रित होती है और आम आदमी की स्वतंत्रता और उसकी सुरक्षा गौण हो जाती है । आज की इसी विसंगत अवस्था की व्याख्या के लिए भरत भूषण अग्रवाल को "सीता" मिली । सीता राम की प्रतीक्षा में रही । लेकिन सीता को बार बार अपने स्त्रीत्व की पवित्रता का प्रमाण देना पडता है । उसकी प्रामाणिक स्थिति का कोई मूल्य नहीं है । इसीलिए सीता का निर्णय सार्थक है । राजनीत व्यक्ति को किस हद तक संघर्षात्मक बना सकती है, उसका सही प्रमाण इन पंक्तियों में मिलता है -

> अब मेरा यहाँ क्या काम है ?
> हाय, जिसका स्थान सोने की एक प्रतिमा ले सकती है
> उसके जीने का प्रयोजन ही क्या है ?[1]

यज्ञायोजन के संदर्भ में प्रस्तुत सोने की प्रतिमा सीता के बदले पर्याप्त है तो सीता का अर्थ क्या हैं ? स्त्रीत्व के सम्मान से वंचित नारी की मर्मव्यथा इन शब्दों में प्रकट है । सीता का हर तनाव आत्मसंघर्ष से उत्पन्न है । उसमें निजी पीडा इतनी गहरी है कि उसकी अपनी सहजियत है । लेकिन

---

1. अग्निलीक - भरत भूषण अग्रवाल - पृ. 54

अग्निलीक की राजनीतिक स्थिति सामान्य नहीं है । वह राम को दोषी बनाने की दृष्टि के कारण नहीं बल्कि शासन की कठोरता के सही एहसास से उत्पन्न है । यही आज की राजनीतिक विसंगति है जिससे आदमी का पक्ष अक्सर लुप्त रहता है ।

पुराण कथा पर आधारित होते हुए ये काव्य "राजनीतिक" कहने लायक काव्य सिद्ध हुए है । इन कथाओं में आम आदमी की संघर्षपूर्ण लडाई को आन्दोलन करनेवाली अनेक उपकथाएँ जोडी गई है । इस प्रकार विसंगत राजनीति के साथ जुडी अनेक निरंकुशताएँ जिनमें जातिवाद है, धार्मिकता है औपनिषदिक दृष्टि है । इसलिए यहाँ आत्मसंघर्ष का एकदम विस्तृत पक्ष प्रमुख हो उठता है ।

आत्मसंघर्ष का सांस्कृतिक परिवेश

नयी कविता में सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का पक्ष सर्वाधिक मौलिक तथा सशक्त है । नये कवि निरंतर गतिशील मूल्यों के प्रति आस्थावान् है । यही कारण है नयी कविता का संदर्भ में "सांस्कृतिक" शब्द का संबंध पूर्वी धारणा के विरुद्ध अधिक समर्थ प्रमाणित है । नामवरसिंह का मत सही है - "काव्य में सांस्कृतिक गरिमा यदि पुनरुत्थानवादी गौरवगाथा तक ही सीमित नहीं है, तो नयी कविता में प्राचीन मिथकों, पुराण गाथाओं एवं ऐतिहासिक तथ्यों का सांस्कृतिक उपयोग अधिक सार्थक हुआ है ।"[1] नये भावबोध के स्तर पर यही वाँछनीय है । संस्कृति के महत्व का प्रश्न मूल्यों से संबद्ध है । जब मूल्यों के संरक्षण में व्यक्ति या समाज पराजित होता है तो

---

1. कविता के नये प्रतिमान - नामवर सिंह - पृ. 61

सांस्कृतिक संकट की स्थिति पैदा हो जाती है । संभवत: इसी के उपलक्ष्य में नरेश मेहता ने लिखा - "लेखक का अपने समाज से संबंध केवल राजनीतिक ही नहीं, बल्कि उनसे भी अधिक सांस्कृतिक, संस्कारशील होना चाहिए ।"[1] नयी कविता में परिलक्षित नयी चेतना को इसी सांस्कृतिक भावबोध के स्तर पर देखना है । समाज में व्याप्त अनैतिकता, मर्यादाहीनता, दायित्वहीन नेतृत्व आदि की अभिव्यक्ति सांस्कृतिक संकट का परिणाम है । आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में पुराण का उपयोग पूर्ण रूप से नये भावस्तर पर प्रमुख है । इसलिए सांस्कृतिक संकट का फलक उसमें सम्मिलित है । उसका एक ऐतिहासिक एवं मिथकीय आयाम भी है । अत: हर संकेत कथाकाव्यों को अधिक संश्लिष्ट स्थिति प्रदान करता है और उसकी संवेदना को गहराती है । मर्यादायुक्त नैतिक मूल्यों के ह्रास की ओर संकेत करने के लिए अंधायुग के एक ही पंक्ति पर्याप्त है -

"हर क्षण होती है, प्रभु की मृत्यु कहीं न कहीं "[2]

अपने जीवन में "दायित्वमुक्त, मर्यादित मुक्त आचरण"[3] को अपनाने पर बल देते हुए कवि प्रभु को बार बार मरण से बचाना चाहता है । यही इच्छा मनुष्य की भविष्य से संबंधित है । संकट एवं संघर्ष से घिरे हुआ व्यक्ति निसंदेह से उन विघटित मूल्यों से मुक्ति चाहता है । यही अदम्य चाह "अंधायुग" के कृष्ण में परिलक्षित है -

मर्यादायुक्त आचरण में
नित नूतन सृजन में
निर्भयता के
साहस के

---

1. साक्षात्कार - प्रभाकर श्रोत्रिय - अप्रैल 1993- पृ.20
2. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 100
3. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 100

ममता के
रस के
क्षण में
जीवित और सक्रिय हो उठूँगा मैं बार बार ।[1]

मानव मूल्यों के प्रति या आगामी मानव-भविष्य के प्रति कवि आस्थावान् है । इस आह्वान में आस्था ही व्यंजित है । इसके लिए कवि ने कृष्ण जैसे पात्र को धर्म का या आध्यात्मिकता का आवरण नहीं पहनाया है । इसीलिए कवि कृष्ण के मानवत्व की प्रतिष्ठा के लिए तत्पर है - "भारती ने कृष्ण के ईश्वरत्व को अमान्य करते हुए भी उसे प्रभु कहा है । उनकी दृष्टि में प्रभु मानवीय मूल्य की चरम पूर्ण आदर्श है ।"[2] सांस्कृतिक संकट में फँसे हुए व्यक्ति के मन में यह प्रसंग नया उन्मेष भरने के लिए पर्याप्त है । "अंधायुग" की "स्थापना" में कवि ने व्यक्त किया है -

"कथा ज्योति की है अन्धों के माध्यम से"[3]

अंधायुग की युद्ध-संस्कृति और आत्मघाती मनोवृत्ति से कवि मानवीयता को उजागर करना चाहता है । सांस्कृतिक संकट से उत्पन्न होने योग्य औपनिषादिक संस्कृति या अन्य प्रकार की कोई भी अवाँछित सांस्कृतिक तिरस्कार का मूल्य कवि दृष्टि में विकसित होता है । "एक कंठ विषपायी" के सर्वहत, "आत्मजयी" के नचिकेता इसके उदाहरण हैं । ये समाज के विकृत आचरणों के बीच नये तथा स्वस्थ नैतिक मूल्यों की स्थापना पर बल देते हैं । इनमें युगबोध के संकेत मात्र नहीं है बल्कि आध्यात्मिक स्थितियों की तिरस्कार भावना भी है

---

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 99
2. मानवमूल्य और साहित्य - धर्मवीर भारती - पृ. 130
3. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 10

इसलिए ये पात्र आत्ममंथन के लिए प्रेरणा प्रदान करते है और समाधान का नैतिक मार्ग भी प्रस्तुत करते हैं । "एक कंठ विषपायी" का सर्वहत जर्जर मानवमूल्यों का टूटा हुआ जीवित व्यक्ति है । वह युद्ध से त्रस्त और पीडित साधारण प्रजा का प्रतीक है जो अपने की पहचान में प्रयत्नशील है -

शायद मैं राजा हूँ
शायद मैं शासन का प्रतिनिधि हूँ
या मैं राज्य की प्रजा हूँ
या शायद मैं कुछ भी नहीं हूँ
और सब कुछ हूँ ।

सर्वहत के प्रति कवि की सहानुभूति है । वह सभी घटनाओं का साक्षी है । वह एक साधारण प्रजा है । वास्तव में वह अनैतिकता का भोक्ता है । उसके आत्मसंघर्ष के माध्यम से अप्रीतिकर जीवन स्थितियों को खुले आम तिरस्कृत करने की कल्पना कवि ने व्यक्त की है । सांस्कृतिक संकट की यह पहचान कवि की नई संवेदना शक्ति-दृष्टि का प्रयोग है ।

"आत्मजयी" के नचिकेता भी नये सत्य की तलाश में प्रवृत्त वर्तमान-सापेक्ष व्यक्ति का प्रतीक है । वह कर्म पर विश्वास रखता है । इसलिए वह पिता से शापग्रस्त होकर भी जटिल द्वन्द्वों एवं तनावों से घिरे रहकर भी वह अपनी आस्था के प्रति निष्ठावान् है -

मेरी आस्था काँप उठती है ।
मैं उसे वापस लेता हूँ ।
नहीं चाहिए तुम्हारा यह आश्वासन

---

1. एक कंठ विषपायी - दुष्यन्त कुमार - पृ. 49

जो केवल हिंसा से अपने को सिद्ध कर सकता है ।
नहीं चाहिए वह विश्वास, जिसकी चरम परिणति हत्या हो
मैं अपनी अनास्था में अधिक सहिष्णु हूँ ।
अपनी नास्तिकता में अधिक धार्मिक ।

"आत्मजयी" में पीढ़ियों का संघर्ष संस्कारों के बीच के संघर्ष के रूप में अंकित है । नयी पीढ़ी पुरानी मान्यताओं को आँखें बन्द करके स्वीकार करने को तैयार नहीं । यही कारण है नचिकेता अपने पिता के विरोधी पक्ष में दिखाई पड़ता है । खोखले धार्मिक अनुष्ठानों तथा परंपरावादिताओं के प्रति असहिष्णु है । धार्मिक अनुष्ठानों के नाम पर किये जानेवाले निरीह आहुतियाँ, हिंसा, हत्या वह अस्वीकार करता है । उपनिषदीय परिवेश का तिरस्कार नचिकेता के आत्मसंघर्ष की नवीनता है जिससे सांस्कृतिक विसंगति को सही मायने से पहचानने का उपक्रम है ।

दिनकर ओज और श्रृंगार के कवि हैं । श्रृंगार की सघनता "उर्वशी" में सशक्त है । पुरूरवा और उर्वशी के सनातन प्रेम की व्यंजना के द्वारा कवि काम वासना को प्रेम की एक स्वाभाविक प्रक्रिया मानते है -

प्रेम हमारा स्वाद मानवी की आकुल पीड़ा है ।
जनमी हम किस लिए ? मोद सब के मन में भरने को ।[2]

पुरूरवा और उर्वशी का आख्यान काम का महत्व उद्घाटित करते है । इसमें दैवी तथा मानवी काम भावना स्पष्टत: लक्षित है । काम की अनश्वरता को दिनकर ने सांस्कृतिक चेतना से जोड़ा है । कवि ने लिखा भी है - "काम जन्य

---

1. आत्मजयी - कुँवर नारायण - पृ. 22
2. उर्वशी - दिनकर - पृ. 15

प्रेरणाओं की व्याप्तियाँ सभ्यता और संस्कृति के भीतर बहुत दूर तक पहुँची है ।"[1] कवि ने आज के यथार्थ को इसमें उभारा है । "यह रचना काम की सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए लिखी गई है । व्यक्ति की काम-भावना सामाजिक रूप से समझी जा सके और उसमें अनुचित निषेध न रहें, यही उर्वशीकार की कामना है ।"[2] हमारी संस्कृति में स्त्री-पुरुष की युगलमूर्ति की बडी ही सुन्दर परिकल्पना है । हमारी सौंदर्य दृष्टि में भी काम भाव का योग है । उसे वर्ण्य नहीं समझा गया है । जीवन के गतिशील पक्ष के रूप में उसे देखा गया है । उर्वशीकार ने यही किया है ।

नागार्जुन की जीवन दृष्टि जीवनापेक्षी है । इसलिए उनमें हमारी सांस्कृतिक चेतना का सन्निवेश व्यापक पैमाने पर उपलब्ध है । लोक-कविताओं को लय के कवि पौराणिक कथाकाव्य के रचनाकार बनते है तो उसमें सांस्कृतिक चेतना और लोकदृष्टि का समन्वय होता है । इसलिए प्रभाकर माचवे का कथन संगत लगता है - "वे प्राचीन संस्कृति के अधीन है, पर उसके दास नहीं है ।"[3] हमारी संस्कृति का अन्तःसलिला उनकी अनुभूतियों को उजागर करती है । उनका "भस्मांकुर" अन्य कथाकाव्यों की तुलना में भिन्न है । नागार्जुन ने कामदहन की कथा को एक नयी दिशा दी है । इसमें कवि कामदहन के बाद "भस्म की ढेर" से अंकुरित होनेवाले कामदेव की कल्पना की गई है । अर्थात् ध्वंस के पश्चात् नयी सृष्टि अनिवार्य है । आकाशवाणी द्वारा मिले आश्वासन में कहा गया है -

---

1. उर्वशी - भूमिका - दिनकर - पृ. 3
2. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - - डॉ कमला प्रसाद पाण्डेय - पृ. 371
3. भस्मांकुर - नागार्जुन - पृ. 80

पनपेगा तेरा पति अपने आप
रंग-सुखों में मदन आएगा याद -
मथित करेगा प्रभु के मन-मस्तिष्क
सच मनोज है सर्वाधिक दुर्दान्त
सज, मनोज है सर्वाधिक जीवन्त ।[1]

काम का सर्वनाश संभव नहीं है । काव्य में "काम" के सनातनत्व के सार्थक अभिव्यक्ति मिली है । काम का अन्त नहीं होता है । काम और रति का पुनः मिलन पुरुष और नारी का मिलन है । यह एक नयी जीवनी शक्ति है । इसमें भी काम का सप्रसंग संयोजन से हमें जीवनानुभूति का अनुमान होता है -

"कौन मदन तुम को कर सकता नष्ट !
जयति जयति भस्मांकुर, जयति अनंग !
जयति जयति रतिनाथ, कामनाकंद !
जिजीविषा के उत्स, सृष्टि के मूल !
जयति जयति कन्दर्प, अजय अमेय ![2]

संस्कृति कभी एकपक्षीय नहीं है । वह हमारी समग्र दृष्टि की चेतना है । उसमें जीवन की गरिमा को महत्व दिया जाता है । आधुनिक कवि ऐसे अवसरों का पूर्वग्रहों से मुक्त रहता है । यह पलायन नागार्जुन की सांस्कृतिक दृष्टि का उदाहरण है ।

वस्तुतः आज की कविता अनेक प्रकार के संकट की स्थितियों से गुज़रती हुई मनुष्य की कविता साबित हुई है । सामाजिक तथा राजनीतिक

---

1. भस्मांकुर - नागार्जुन - पृ. 79
2. भस्मांकुर - नागार्जुन - पृ. 78

विसंगतियों के साथ साथ सांस्कृतिक संकट की चिंता नई कविता की अन्वेषित दिशा है । कविता में आत्मसंघर्ष का अपनी भूमिका है । वह नई कविता की असली चेतना है । नेमीचन्द्र जैन का कथन सही लगता है - "नयी कविता वास्तव में उन सभी अनगिनत छोटे बड़े इंसानों की कविता है जो शायद एक लंबे समय तक इधर-उधर भटकने के बाद अब अपने अपने स्तर पर जीवन की सार्थकता पा रहे हैं और इस चेतना को नाना रूपों और आकृतियों में सहज ही अभिव्यक्त करने के लिए उलझ रहे है ।"[1] जीवन की सार्थकता की तलाश में आत्मसंघर्ष की जिन स्थितियों से कवि का सामना हुआ है उन्हें कुछ कवियों ने कथाकाव्यों का रूप दे दिया है । अतः आधुनिक पौराणिक कथाकाव्य पुराण की पुनर्व्याख्या मात्र नहीं है । वह पुराण का स्रोत है । इनमें सही स्थितियों की खोज है इस खोज में संघर्ष मनुष्य का है जिसे कवियों ने काव्य के केन्द्र में केन्द्रीकृत किया है । आत्मसंघर्ष के विभिन्न पक्ष कथाकाव्यों में मिलते हैं । लेकिन सब में एक ही रागात्मक अन्विति समाविष्ट है भले ही अनुभव संसार और प्रतिक्रिया अलग-अलग हो । व्यक्ति के अनुभव संसार के माध्यम से (आत्मसंघर्ष की स्थितियों के माध्यम से) काव्य के अनुभव संसार को कथाकाव्यों ने प्रस्तुत किया है ।

---

1. नयी कविता उपलब्धि और भ्रांतियाँ - नेमीचन्द्र जैन - आजकल-मार्च 1992 - वर्ष - 47 अंक -11, पृ. 94

अध्याय पाँच

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में प्रतिफलित

राजनीतिक विसंगति का स्वरूप

अध्याय - पाँच

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में प्रतिफलित विसंगति का स्वरूप

राजनीति और साहित्य

"हमने यह मान लिया है कि कविता और राजनीति के बीच बुनियादी विभाजन है । समस्या यह नहीं है कि दोनों छोर कभी मिल नहीं सकते, बल्कि यह कि यदि वे मिल सकते हैं तो बड़ी कीमत पर ।"[1] राजनीति और साहित्य दो भिन्न अनुशासन होते हुए भी दोनों के बिना समाज का स्थापत्य सुस्थिर नहीं हो सकता । कारण यह है कि सामाजिक समस्याओं के समान राजनैतिक समस्याओं के समान राजनैतिक समस्याओं की जडें समाज में व्यापी हुई है । जब कवि राजनीतिक समस्याओं को अपना विषय बनाता है तो उसे राजनैतिक संकेतार्थ देते हैं । अन्ततः वे राजनीतिक संकेतार्थ मानवीय संकेतार्थ ही हैं ।

राजनीतिक सन्दर्भ साहित्य में पहले से ही उपलब्ध है । राजनीति साहित्य के लिए सदैव स्पृहणीय विषय रहा है । रामायण, महाभारत आदि में अनेक राजनीतिक संकेतार्थ अंकित है । यह सिलसिला सदैव बना रहा । यह सही है कि किसी युग में राजनीति का संकेतार्थ कम किसी युग में अधिक । जहाँ मनुष्य का संघर्ष प्रतिपादित होता है वहाँ किसी न किसी रूप में राजनीतिक संकेत उपलब्ध होते है । आधुनिक काल तक आते आते साहित्य में राजनीति के लिए प्रमुख स्थान प्राप्त होने लगा । क्योंकि आधुनिक साहित्य में मानवीय जीवन का समूचा साक्षात्कार हैं । इसमें मनुष्य ठोस रूप में वर्तमान है । राजनीति वास्तव में प्रजानीति है । जनता

---

1. वाद विवाद और संवाद - नामवरसिंह - पृ. 114

और राजनीति दोनों के बीच गहरा संबंध भी है । जनता की आशा-आकांक्षा, दु:ख-सुख को गंभीरता से समझने के लिए राजनीति बाधक नहीं होती । साहित्यकार राजनीति से अलग नहीं हो सकता । साहित्य में तत्कालीन राजनीतिक परिवेश का पूरा सन्निवेश होता है । यह स्वाभाविक है । प्रजा की नीति के रूप में राजनीति का विकास जब होता है और साहित्य मानवीय स्थितियों को प्रमुखता देता है तो यह दोनों के बीच एक गठबन्धन अनिवार्य है ।

आधुनिक कविता में राजनीति

आधुनिक कविता में साहित्य और राजनीति का गहरा संकेत उपलब्ध होता है । इसकी सही शुरूआत प्रगतिवादी काव्यात्मक आन्दोलन से होती है । फिर भी राजनीति का वास्तविक समावेश नई कविता के दौर में संवेदनात्मक स्तर पर हुआ है । "नई कविता की मुख्य धारा की मानवीय विपन्नता ने उन्हें बाध्य किया है कि वे हमारे समय के मनुष्य की हालत परिभाषित करने के लिए उसकी आन्तरिक और बाहरी सच्चाइयों की जडों की खोज करें । यह खोज उन्हें वहाँ ले आई है जहाँ राजनीति से साक्षात्कार अनिवार्य हो उठा है ।"[1] अत: राजनीति का समावेश मनुष्य की हालत को नये ढंग से देखने के लिए है । ये दोनों एक दूसरे से जुडे रहते है और एक दूसरे से प्रभावित भी है । "राजनीति केवल परिवेश नहीं होती, वह परिवेश से कुछ अधिक बनकर समकालीन कवि की रचना-शक्ति से जुड जाती है ।"[2] वास्तव में आज कविता में राजनीति की प्रासंगिकता समकालीन परिवेश की सन्निहिति के कारण है ।

---

1. फिलहाल - अशोक वाजपेयी - पृ. 130
2. समकालीन कविता एक परिचर्चा - नित्यानंद तिवारी - कल्पना - फरवरी 1968.

राजनीति कविता की एक संकेतदृष्टि हो सकती है । इसलिए मनुष्य के बुनियादी सवालों को कविता के माध्यम से राजनीतिक दृष्टि से अभिव्यक्त किया जा सकता है । राजनीतिक विषय का यही सही अन्दाज़ है । नई कविता में एक ओर जीवन यथार्थ का खुरदरापन है तो दूसरी ओर मानवीय आकांक्षाएँ हैं ; विद्रोह की आग है तो सपनों का संगीत भी हैं ; क्रान्ति की भाषा है तो आत्मीयता की भावना है । नई कविता की इन सारी विशेषताओं की अभिव्यक्ति राजनीतिक संकेतों के स्तर पर अधिक गहराई से संभव है । इससे कोई भी कवि अनभिज्ञ नहीं । "राजनीति आज की मानव नियति को नियंत्रित करनेवाली शक्तियों में प्रमुख है । अतः उसे इनकार करने का अर्थ है सच्चाई को इनकार करना ।"[1] वस्तुतः राजनीति की उपेक्षा करके कोई भी कवि अपने समकालीन यथार्थ की अभिव्यक्ति अंकित नहीं कर सकता । वह कविता के साथ न्याय नहीं कर सकता । वह अपने "स्व"के साथ भी न्याय कर सकता ।

आधुनिक कविता में मानव जीवन के सभी पहलुओं के चित्र अंकित है । सामाजिक तथा राजनीतिक यथार्थ की अभिव्यंजना जब कविता में होती है तो दोनों अवस्थाओं के विसंगत पक्ष ही अधिक अभिव्यक्त होते हैं । जब राजनीति प्रजानीति के विरुद्ध हो जाती है तो राजनीति की विसंगति का समारंभ होता है । राजनीतिक विसंगतियों के विविध आयाम आधुनिक कविता में प्रखरता के साथ शामिल है ।

---

१. साठोत्तर साहित्य का परिप्रेक्ष्य - हिन्दी विभाग - पूणे विद्यापीठ - पृ. ५

राजनीतिक संदर्भ की पहचान और उसकी व्याख्या कुछ आधुनिक कवियों ने की है । समकालीन राजनीति, खासकर राजनीतिक विसंगतियों का सच्चा साक्षात्कार इन आधुनिक कवियों की कविताओं में अवश्य हुआ है जो अन्य कवियों में दुर्लभ है । धर्मवीर भारती के "अंधायुग", मुक्तिबोध के "अंधेरे में", और रघुवीर सहाय के "आत्महत्या के विरुद्ध" जैसी कविताओं में राजनीतिक सच्चाइयों का ठोस स्वरूप प्रदर्शित है । "नये कवि ने आज की राजनीति से शासित मनुष्य के अन्तर्द्वन्द्व और उसके संघर्ष को व्यक्त किया है । आज के इन राजनीतिक षड्यंत्रों को और उन दबावों जिनसे वह प्रभावित होता है, कवि ने वाणी दी है ।"[1] कवि मूलतः मनुष्य के सही सवालों से जूझता है । यही संघर्ष जब सत्ता, अधिकार, नीति आदि से जुड़ता है तो वह राजनीति का आयाम ग्रहण करता है ।

आधुनिक कथाकाव्य और राजनीति

आधुनिक काल के अधिकतर कथाकाव्यों की रचना हमारे वर्तमान के यथार्थ और संघर्ष को लेकर हुई है । इसलिए आधुनिक कथाकाव्यों में तत्कालीन राजनीतिक समस्याओं की अधिकाधिक संभावनाएँ विवृत होती हैं ।

आधुनिक कथाकाव्यों में राजनीति के विसंगत पक्ष का चित्रण पुराण कथाओं और चरित्रों के माध्यम से होता है । पुराण कथा-संदर्भों के द्वारा वर्तमान जीवन की जटिल स्थितियों का अंकन आज के यथार्थ के धरातल पर होता है । अतः आज के कथाकाव्यों में अभिव्यक्त राजनीतिक चेतना

---

1. काव्य परंपरा और नई कविता की भूमिका कमल कुमार - पृ. 47

तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों तथा उसके दबावों का परिणाम है । समकालीन जीवन-दृष्टि से संपृक्त करने का यह प्रयत्न कथाकाव्यों में सार्थक ढंग से हुआ है ।

कथाकाव्यों में प्राप्त राजनीतिक परिस्थितियों के अंकन में विशेष रूप से सत्ता-शक्ति की प्रभुता, व्यवस्था की नृशंसता, युद्ध की अमानवीयता आदि महत्वपूर्ण है । इसलिए आधुनिक कथाकाव्यों में राजनीति का विसंगत पक्ष अत्यंत प्रखर है । पुराण पात्रों में कोई सत्ता की शक्ति से प्रताडित है तो कोई व्यवस्था की नृशंसता का शिकार बन जाता है । मात्र यही नहीं, युद्ध की अमानवीय स्थितियों की अभिव्यक्ति इन कथाओं में प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है । अतः इन में प्राप्त विसंगत राजनीतिक परिस्थितियाँ कवि की तत्कालीन युगीन समस्याएँ हैं । कवि तत्कालीन राजनीतिक समस्याओं से संपृक्त होकर अपने काव्य की रचना में संलग्न होता है । इसलिए इन कथाकाव्यों के राजनीतिक आयाम सशक्त है । अंधायुग, कनुप्रिया, एक कंठ विषपायी, संशय की एक रात, महाप्रस्थान, प्रवादपर्व, सूर्यपुत्र, शम्बूक, अग्निलीक, एक पुरुष और, विश्वकर्मा आदि कथाकाव्यों में पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से राजनैतिक वैचारिकता की अभिव्यक्ति मिलती है । कथाकाव्यों की कथा में विन्यासित विसंगत राजनीतिक पक्ष और उसी के आधुनिक पक्ष के बीच में जब सामंजस्य होता है तो राजनीतिक विसंगति का अतीत मात्र वर्तमान की सीमारेखाएँ मिट जाती है और काल की प्रवाहशील धारा में झुलसते मनुष्य-बिम्ब उभरने लगते हैं । भले ही वे पुराण के आवरण के साथ दर्शित हों । पर है वे समकालीन । राजनीतिक विसंगति के नैरंतर्य को दर्शाते हुए समकालीन राजनीति के अनैतिक पक्ष ही उभर रहे हैं ।

सत्ता शक्ति के रूप में राजनीतिक परिवर्तन

आज की राजनीतिक समस्याओं में सत्ता शक्ति का विकास सब से बड़ी समस्या है । राजनीति में जब प्रजा-हित के खिलाफ़ सत्ता-शक्ति विकसित होती है तब राजनीति भटकने लगती है । अतः राजनीतिक विसंगतियों में प्रमुख सत्ता-शक्ति पर केन्द्रीकरण है । शासक और प्रजा के बीच जो संतुलन आवश्यक है, वह आज के राजनीतिक जीवन में अनुपलब्ध है ।

सत्ता का सही संकेत

"अंधायुग" का राजनीतिक आयाम सुस्पष्ट है । यद्यपि युद्धोपरान्त स्थितियों का अंकन मूल्यहीनता के बढ़ते अभियान के रूप में स्वीकृत है फिर इस संदर्भ में सत्ता का सही संकेत धर्मवीर भारती ने इस कथाकाव्य में दिये है । राजनीति की अवाँछित इच्छाएँ धृतराष्ट्र के अंधेपन को और अंधा बना देती हैं । वह अपनी स्वार्थ प्रेरित महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए महायुद्ध का बीजारोपण करता है । अंधे होते हुए भी अपने सिंहासन की रक्षा के लिए वह कुछ भी करने के लिए तैयार है । इसीलिए वह भीष्म, द्रोण और कृष्ण के वचन को नहीं मानता और अंत में युद्ध के लिए तैयार हो जाता है । वह अपने व्यक्ति संदर्भ से सामूहिकता की ओर आने के लिए तैयार नहीं है । उसकी वैयक्तिक चेतना अधिकार-शक्ति की प्रामाणिक स्थिति है । जन्मान्ध होने के कारण अपने अंधेपन से उपजा हुआ वैयक्तिक संवेदन उसका सब कुछ है -

मेरा स्नेह, मेरी घृणा, मेरी नीति, मेरा धर्म
बिलकुल मेरा ही वैयक्तिक था ।[1]

उसकी वैयक्तिक अन्धी संस्कृति उन्हें यह भी कहने को प्रेरित करती है कि यदि अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र उत्तरा के गर्भ पर गिरा तो एक दिन राजपाट युयुत्सु के कन्धों पर आ जायें -

वत्स, तुम मेरी आयु लेकर भी
जीवित रहो
अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र
यदि गिरा उत्तरा पर
तो कौन जाने एक दिन युधिष्ठिर
सब राजपाट तुमको ही सौंप दें ![2]

दुर्योधन की अनियंत्रित इच्छाओं की पूर्ति के लिए धृतराष्ट्र ने क्या नहीं किया ? सभी कुकर्मों के पीछे धृतराष्ट्र के मौनानुवाद और आशीर्वाद रहे हैं । उसकी पुत्रवत्सलता और महत्वाकांक्षा ही पाँडवों को एक सुई की नोंक तक की भूमि देने के लिए तैयार नहीं हो जाती । इस अधर्म और राजनीति के कार्य में वह दुर्योधन का पक्षधर है । जब सत्ता-शक्ति एक जगह केन्द्रित होती है तो वह जनता के विरुद्ध होती है । इस ओर भरपूर संकेत धर्मवीर भारती दे सके हैं ।

---

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 16
2. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 16

सत्ता की अराजकता का प्रतीक

"एक कंठ विषपायी" में प्रजातांत्रिक शासन-व्यवस्था के बीच युद्ध जनित विद्रूपताओं का चित्र अंकित है । इस कथाकाव्य का एक प्रमुख पात्र दक्ष अराजकतावादी है । वह साम्राज्यवादी शक्ति का प्रतीक है । दक्ष को महत्वाकांक्षा उसे शंकर को जामाता के रूप में स्वीकार करने नहीं देती । दक्ष की दृष्टि में शंकर परंपरा तोडनेवाले है, उनके कारण दक्ष को समाज के सामने माथा नीचा करना पडा है -

वह, जिसने घर की परंपरा तोडी है,
वह जिसने मेरे यश पर कालिख पोती है,
जिसके कारण
मेरा माथा नीचा है सारे समाज में,
मेरे ही घर अतिथि-रूप में आए ।"[1]

स्वीकृत मान्यताओं को तोडनेवाले को स्वीकार न कर पाने की उसकी दृष्टि में सत्ता-शक्ति का पर्याप्त संकेत है । जो उस शक्ति को मानता नहीं उसको वर्ज्य मानना दक्ष की साम्राज्यवादी शक्ति का लक्ष्य है । इसमें दक्ष की अराजकतावादी दृष्टि और सत्ता-शक्ति वैभव का संकेत है । दक्ष का विचार है कि शिव को अपमानित करने से ही उसका मन शान्त होगा । उसकी भाषा वीरिणी समझ नहीं पाती है । यही राजनीति की भाषा है -

यह राजनयिकों की भाषा है
इसकी शब्दावली अलग है

---

1. एक कंठ विषपायी - दुष्यन्त कुमार - पृ. 11

इसमें उत्तम या उदात्त से
भावों के अभिव्यक्तिकरण को
समुचित शब्द नहीं होते है ।[1]

राजनीति की भाषा आम आदमी की भाषा से अलग है । आम आदमी उसे समझता नहीं है । उसकी सामान्य भाषा में राजनीति के गूढ़ अर्थ समाहित नहीं हो सकते । यहीं सत्ता शक्ति का अधिनायकत्व है । यहाँ न्याय के ऊपर अन्याय की विजय होती है । अराजनीतिक व्यवस्था के प्रतीक दक्ष का मन परंपरा-भंजक शंकर को स्वीकार नहीं कर पा रहा है । तमाम शक्तियों को अपने में केन्द्रित करनेवाले एक व्यक्ति का हृदय अराजकता से भरा रहता है । वह यथार्थ को मानने के लिए तैयार नहीं है । इसी वजह से कथा में यज्ञ-ध्वंस और आत्माहुति आदि घटनाएँ मिलती हैं । आज समाज में भी ऐसे अनेक सत्ताधारी-पुरुष हैं जो दक्ष के समान राजनीतिक संकट का अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए आवाहन करते हैं और उसकी अग्नि में बहुत कुछ को ध्वंसित करते हैं । अराजकता राजनीति का अभिन्न अंग है । राजनीति में इसके बीज सुरक्षित हैं । नैतिक दृष्टि संपन्न राजनीति अराजकता से अपने को मुक्त रखती है । जो अपनी नैतिक दृष्टि और मानवीयता खो देता है वह अराजकता के भंवर में गिरता है । दुष्यंत कुमार की दक्ष-परिकल्पना में सत्ता का प्रभुत्व और उसकी अनैतिक वर्चस्व समाविष्ट है ।

राजनीति और उच्चवर्गीय प्रभुता

राम के ईश्वरत्व और महामानवत्व के प्रभामण्डल की व्यंजना हर युग के भक्त कवि का लक्ष्य रहा है । वास्तव में यह वैष्णव-संस्कार

---

1. एक कंठ विषपायी - दुष्यन्त कुमार - पृ. 2।

में सन्निहित अवतार-संकल्प का परिणाम है । लेकिन आधुनिक दृष्टि-संपन्न "शम्बूक" शीर्षक कथाकाव्य में जगदीश गुप्त ऐसा नहीं कर सकता । आधुनिक कवि का लक्ष्य अवतार वर्णन नहीं है । वह हर प्रसंग में मानवीयता का औन्नत्य देखना चाहता है । अमानवीयता का विरोध करना चाहता है ।

राजनीति की सब से बडी विडंबना यही है कि सत्ता में शीघ्र ही उच्चवर्गीय लोगों की प्रभुता का अधिकार केन्द्रित होता है । समाज के उच्चस्थानीय लोग भी सत्ता के निकट आते हैं । कुलमिलाकर ये सभी सत्ताधारी अनैतिक शक्तियों के प्रतीक हैं । उन्हें अपनी सीमित स्वार्थ-दृष्टि की पूर्ति करनी है । कोई भी इनके आगे में आ जाएँ, कोई भी इनकी प्रभुता पर अंकुश लगाएँ, ये उनकी परवाह नहीं करते । इस प्रकार समाज के उच्च स्तर पर एक कृत्रिम सत्ता कायम होती है । विरोध जो भी करते हैं उन सब को सत्ता-शक्ति के अधीन में करने के लिए वे राजनीति का उपयोग करते हैं । जगदीशगुप्त का कथाकाव्य इन्हीं तथ्यों पर आधारित है । राम को उन्होंने सत्ता के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है । शम्बूक भूमिपुत्र है, वह सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है । "शम्बूक" के "दण्डकारण्य" शीर्षक खण्ड में राम और शम्बूक के बीच में जो संवाद होता है वह शासक और शासित के संवाद का रूप धारण करता है । यही नहीं "शम्बूक" के वसिष्ठ, नारद, ब्राह्मण आदि उच्च वर्ग के प्रतीक हैं । वे शासक से पूरी तरह सुरक्षित हैं । राम उन्हीं के हितों के अनुसार व्यवहार करते हैं । राजनीति इस प्रकार उच्चवर्ग द्वारा नियंत्रित होती है और सामान्य व्यक्ति का शोषण बराबर होता रहता है -

उठ अरे ! कर विप्र-सुत का त्राण
शूद्र-मुनि पर छोड तीक्ष्ण कृपाण[1]

विप्र-सुत का त्राण राम का लक्ष्य है और इसी लक्ष्य-पूर्ति के लिए शूद्र मुनि पर तीक्ष्ण बाण छोडने को तैयार हो जाते हैं । यहाँ राम साम्राज्यवादी बनकर अपनी राजसी चेतना पर गर्व करते हैं । अपने राजसी व्यक्तित्व को एक सामान्य व्यक्ति के सामने कम महत्व देना नहीं चाहता । यही कारण है शम्बूक के प्रखर तर्कयुक्त प्रश्नों का उत्तर न देकर राम आदेश के स्वर में कहता है -

बस करो शम्बूक ! सूर्य-कुल की कीर्ति सब
अति सर्वत्र वर्जित है सत्कर्म अर्जित है[2]

"अति सर्वत्र वर्जित" कहकर राम शम्बूक को चुप कराना चाहते है । केवल राम ही नहीं, कोई भी सत्ताधारी शासक अपने शासन की विसंगतियों की ओर दूसरों के आरोपों का सहन नहीं कर सकता ।

सीता-निर्वासन के संबंध में शम्बूक इशारा करता है । लक्ष्मण के साथ सीता को वन भेजने के स्थान पर सीता के साथ राम क्यों नहीं चला गया -

स्नेह था तो छोड देते
राम तुम भी राज्य

---

1. शम्बूक - जगदीश गुप्त - पृ. 67
2. शम्बूक - जगदीश गुप्त - पृ. 53

क्यों हुई केवल
तुम्हारे हेतु सीता त्याज्य[1]

शम्बूक के इन कथनों से यह व्यक्त हो जाता है कि राम के मन में सीता की अपेक्षा राज्य से प्रेम था । राजसी चेतना में हमेशा स्वर्ण का राज्य झलकता है । उसे शासन ही प्रिय हैं । ऐसी सत्ता के सामने प्रतिपक्ष की बुलंद आवाज़ भी उठ नहीं सकती । "शम्बूक" में जगदीश गुप्त ने शम्बूक को निरालंब सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित नहीं किया है । वह स्वावलंब है । सही-गलत का उसे पूरा पूरा ज्ञान है । इस कथाकाव्य के द्वारा कवि यह सिद्ध करना चाहते है कि धर्म (नैतिकता) के सामने सत्ता का गर्जन भी झुक जाता है । यह आधुनिक कवि की कल्पना है । मानवीयता के प्रति उसकी निष्ठा है ।

सत्ता की शक्ति का विस्तार

"विश्वकर्मा" प्रभाकर माचवे का कथाकाव्य है । विश्वकर्मा देवताओं की यंत्रशाला का अभियन्ता है । वह सूर्य से मुग्ध होकर अपनी पुत्री छाया का विवाह उससे करा देता है । लेकिन छाया सूर्यताप से तंग आकर घर वापस लौट आती है । आते वक्त वह पत्थर की मंजूषा में सूर्य की आग चुराकर लाती है । विश्वकर्मा सूर्य की आग से नये नये अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण में तत्पर होकर बार-बार शक्तियाँ चुराने की प्रेरणा देता है । इस कथा की स्वीकृति के संबंध में कवि का मन्तव्य है - "मैं ने सोचा कि इस पुराण-कथा के मिथक को आधुनिक प्रासंगिकता से जोड़ूँ । इसीलिए मैं ने प्रकृति के आदिम

---

1. शम्बूक - जगदीश गुप्त - पृ. 57

शक्ति-स्रोत "सूर्य" के विरोध में विश्वकर्मा की वैज्ञानिक तांत्रिक अहंता को खडा किया है ।[1] इसमें सूर्य के विरुद्ध विश्वकर्मा की सत्ता-शक्ति का परिचय दिया गया है । यंत्र मानव पर हावी हो जाता है मानव यंत्र को अपने अधिकार में रखना चाहता है । विश्वकर्मा अपनी यंत्र शक्ति के द्वारा सब को हरा देना चाहता है । सूर्य की शक्ति चुराकर नये अस्त्रों का निर्माण करके देवताओं की यंत्रशाला के अभियंता के पद को सब से श्रेष्ठ बनना चाहता है । वह दूसरों को अधीन करने में प्रयत्नशील है । वह अपनी पुत्री के स्नेह का भी लाभ उठाना चाहता है । बार बार दुःखी पुत्री को पहुँचाने के बहाने जाकर सूर्यतेज चुराने का प्रयत्न करता है -

विश्वकर्मा छाया का आना देख घबडाया
पर उसने उसके साथ चुराया तपन पाया
बार बार जाने लगा दुहिता को पहुँचाने
चुराकर लाने लगा तेज इसी बहाने[2]

कवि विश्वकर्मा के चरित्र द्वारा सत्ता की अपूर्व शक्तिमत्ता और विपुल क्षमता का परिदृश्य प्रस्तुत है । विश्वकर्मा के गर्व को कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है -

किन्तु विश्वकर्मा को हुआ गर्व
स्रष्टा का मैं ही सर्व
मैं ही हूँ निर्माता
नहीं कोई, माता-पिता
नहीं कोई भूमि-गगन

---

1. विश्वकर्मा -भूमिका - प्रभाकर माचवे - पृ. 10
2. विश्वकर्मा - प्रभाकर माचवे - पृ. 29

नहीं नक्षत्र, नहीं पंचभूत
सब कोई मेरे दूत
मेरे अधीन सकल जड-चेतन ।[1]

मैं ही सर्व, मैं हा हूँ निर्माता जैसे शब्दों में विश्वकर्मा की अराजक दृष्टि के फैलाव हैं । सभी जड और चेतन वस्तुओं को अपने अधीन कर लेने का आग्रह सत्तामद का परिणाम हैं । वह अपने आगे किसी को मानता नहीं है । इसीलिए कवि का वक्तव्य है -

"अहंकार अच्छे-अच्छे सूरमाओं का है शत्रु
अपने आगे वह किसी को भी नहीं मानता"[2]

सारी सत्ताओं को अपने में केन्द्रित करनेवाले विश्वकर्मा सत्ता शक्ति के विस्तार की इच्छा का प्रतीक है । धीरे-धीरे अपने अधिकार को विस्तृत करनेवाला चतुर राजनेता बनकर वह जीता है । शक्ति के शिखर की इसे तलाश है जिसमें वह राज कर सकें । वह यह नहीं सोचता कि सूर्यताप का वास्तविक उपयोग क्या है । प्रभाकर माचवे ने इसके साथ प्रकृति और पर्यावरण को दूषित करनेवाली आधुनिक सत्ताधारी शक्ति को भी अनावृत किया है । इस प्रकार हम इस कथाकाव्य में यह भी देख सकते है कि सत्ता की शक्ति की व्यापकता हमारी सामान्य कल्पना-शक्ति के बाहर है । वह भीतर ही भीतर विपुल होती हुई शक्ति है ।

---

1. विश्वकर्मा - प्रभाकर माचवे - पृ. 75
2. विश्वकर्मा - प्रभाकर माचवे - पृ. 29

राजनीतिक विसंगति का चित्र

महाभारत के विश्वामित्र और मेनका की पुराकथा का सहारा लेकर आधुनिक युग की राजनीतिक विसंगतियों तथा विघटनों के अंक में डॉ. विनय ने सफलता हार्जित की है । "एक पुरुष और" का इन्द्र सत्ता का प्रतिनिधि है । मेनका के इन शब्दों में उसकी सत्ता की यन्त्रणा की बू है -

क्यों याद किया है इन्द्र ने मुझे ?
क्यों भेजी है विशेष दूती ?
क्यों सूर्य की किरणों के फूटने से पहले
मुझे अपने महल में देखना चाहा है ?[1]

इन्द्र के इशारों के आगे नाचने के लिए मेनका अभिशप्त है । व्यवस्था की अमानवीयता मेनका के शब्दों में प्रकट है -

कई बार पहले भी इसी तरह इन्द्र ने बुलाया था
और कितनी बार उसे पतित होना पड़ा था
सहने पड़े थे दिगम्बर शरीर पर
आसक्तियों के चुम्बन !
कर्कश बन्धनों में बंधी यंत्रणा ।[2]

यन्त्रणा केवल उसकी नहीं है, प्रत्येक युग की नारी की है । पतित होकर जीने की अवस्था या देवताओं की भोग्या बनकर जीने की अनैतिक स्थिति

---

1. एक पुरुष और - डॉ. विनय - पृ. 46
2. एक पुरुष और - डॉ. विनय - पृ. 47

सत्ता की विसंगति का सही रूप है । वह सदा आम आदमी का शोषण करती है । राजतंत्री व्यवस्था की अमानवीयता और अनैतिकता इन्द्र की शासन-व्यवस्था में छल-कपट का सहारा भी लेती है । इन्द्र अपनी सत्ता पर आतंक देखकर विश्वामित्र को धोखा देने की बात सोचता है -

"इन्द्र ने ऊपर से झाँककर नीचे देखा
एक जन का आन्दोलन एक तपस्या
धीरे धीरे ऊपर उठ रही है !!
उसे दबाने के लिए कितनी बार अलंघ्य जनों का
प्रहार करना पडेगा ।"[1]

सत्ताधारी शासक को हमेशा अपनी सत्ता के संरक्षण के प्रति जागरूक होना पडता है । इसलिए वह अपनी सत्ता के खिलाफ़ उठी नयी शक्ति को किसी षड्यंत्र द्वारा दबाने की कोशिश करता है । इन्द्र को लगा कि कोई भाग आ रहा है । उसका सिंहासन छीन लेने को कोई आ रहा है -

इन्द्र को लगा, जैसे भार्ग से भागकर
आती हुई भीड़ ने.....
उसका सिंहासन छीन लिया हो[2]

सिंहासन अधिकार का प्रतीक है । किसी भी हालत , उसे बचाने की दृष्टि वास्तव में प्रभुता की अराजकता और उसकी मानव-विरोधी दृष्टि का प्रमाण है । पर कवि अपनी तरफ़ से प्रश्न करता है । इसमें विसंगति के ऊपर आने

---

1. एक पुरुष और - डॉ. विनय - पृ. 47
2. एक पुरुष और - डॉ. विनय - पृ. 42

की सूचना विद्यमान है -

क्या वह विद्रोह नहीं कर सकती
उस पूरी व्यवस्था के विरुद्ध
जिसमें उसका जीना एक यंत्रणा से अधिक
और कुछ नहीं है !
क्या वह इन्द्र के पास जाने से
मना कर सकती है .....?[1]

अधिकार के विरुद्ध प्रश्नचिह्न लगाना कोई भी सत्ता सह नहीं कर सकती । इन्द्र यहाँ विशिष्ट वर्ग की राजनीति में साम्राज्यवादी शासन-व्यवस्था का प्रतीक है । उस शासन-व्यवस्था में प्रजातांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था के लिए कोई स्थान नहीं है । साम्राज्यवादी शक्ति की अमानवीय और अनैतिक दृष्टि आज भी आम आदमी को प्रताडित करती है ।

अधिकार की अनियंत्रित इच्छा

कोई भी सत्ताधारी शासक अपना अधिकार दूसरों को सौंप देने के लिए तैयार नहीं होता । आधुनिक दौर में लिखे गये कथाकाव्यों की राजनीतिक चेतना में अधिकार की अभिलाषा के संकेत भरपूर मात्रा में मिलते हैं । जब शासक सामाजिक मूल्यों एवं मानवीय मूल्यों को भूलकर अपने सिंहासन, मुकुट, सत्ता आदि के संरक्षण के हेतु तत्पर हो उठते है वहाँ अन्याय और अधर्म सिर उठाने लगते हैं । इस समय अधिकार की अवांछित इच्छा पनप उठती है । कथाकाव्यों के कथा संदर्भों एवं पात्रों में अधिकार का यह मोह

---

1. एक पुरुष और - डॉ. विनय - पृ. 49

स्पष्टत: दिखाई पडता है । जब कवि इन पौराणिक पात्रों को आधुनिक जीवन की संश्लिष्टताओं से मिला देता है तो वह अधिक प्रासंगिक हो उठता है । "शम्बूक" के राम, "एक पुरुष और" के इन्द्र, "एक कंठ विषपायी" के दक्ष आदि चरित्रों में अपने स्थान और अधिकारों पर अटके रहने की इच्छा विद्यमान है ।

राज्य-लिप्सा की गूढ़ राजनीति

"शम्बूक" के प्रतिपक्ष सर्ग से राम और शम्बूक के बीच में न्याय, समता, प्रशासन-व्यवस्था, व्यवस्था का अन्याय, वर्ण-व्यवस्था आदि के संबंध में घोर वाद-प्रतिवाद चलता है । राम के हृदय को चुभने योग्य कई प्रश्नचिह्न पूछे जाते हैं । सीता-परित्याग का प्रसंग शम्बूक जैसे एक आम आदमी की दृष्टि में -

> प्रजा का परितोष
> अच्छी कही तुमने बात !
> क्या न सीता को
> प्रजा का अर्थ था कुछ ज्ञात ?[1]

यह राज्य के प्रति राम का मोह ही है । यही मोह उसे राज्य छोडने की प्रेरणा नहीं देते है । राज्य के प्रति उसकी आस्था हर एक सत्ताधारी शासक की मानसिक स्थिति है । यही स्थिति उसकी गूढ़ राजनीति का निदान ही है । शम्बूक राम की स्वार्थ दृष्टि के संबंध में पूछते है -

---

1. शम्बूक - जगदीश गुप्त - पृ. 57

बस रहे तुम सदा
उनके लिए तपते सूर्य
हैं तुम्हारे शब्द
निज यश के निनादित तूर्य ।[1]

कुलमिलाकर व्यक्ति का मोह राजनीतिक शक्ति का संबल पाकर विकसित होता है । तब यह मोह और अधिक प्रबल होने लगता है । मोह की राजनीति का विकास इसी प्रकार होता है । यह एक व्यक्ति के मोह का विकास नहीं । इसमें निहित राजनीतिक विसंगति यही है कि व्यक्ति मोह असल में अराजक स्थितियों के पनपने से संकल्पित है । एक अराजक स्थिति विकसित हो रही है । उसके लिए कोई भी मूल्यवान् नहीं है । इसका सत्ता मोह ही मुख्य है ।

सर्व सत्ता का प्रबल मोह

इन्द्र की तमाम कथाओं में सर्वसत्ता का प्रबल मोह विद्यमान है । "एक पुरुष और" के इन्द्र के स्वर में यही चित्र है -

वह उन तमाम पुरुषों को वज्र से
ध्वस्त कर देगा..... जो
उसके शासन को सहन नहीं करेंगे
वह उन सारी कीलों को उखाड़ फेंकेगा
जो उसके सिंहासन के आस-पास गाड़ दी गई है ।[2]

---

1. शम्बूक - जगदीश गुप्त - पृ. 58
2. एक पुरुष और - डॉ. विनय - पृ. 43

तमाम पुरुषों को अपने वज्र से ध्वस्त करने और सिंहासन के आस-पास गर्वित किलों को उखाड़ने का आवेग इन्द्र के अधिकार-मोह का प्रमाण है । वह अपने विरुद्ध उठी जन-शक्ति को दबाने की कोशिश वह करता है । जन-शक्ति ही क्यों एक औसत व्यक्ति का ऊँगली उठाना भी उसके लिए सह्य नहीं है । इसलिए हमेशा उसके मन में यह शंका बनी रहती है -

धराशायी होगा यह साम्राज्य
और फहरेंगी पताकाएँ जन की ।[1]

यह शंका वास्तव में उस व्यवस्था का भय है जो अपने साम्राज्य की असुरक्षा से उत्पन्न है । "एक पुरुष और" का इन्द्र उस व्यवस्था का अंग है जो सिंहासन से चिपके हुए है ।[2] उसे विश्वामित्र जैसे आम आदमी का संकल्प भी भयभीत करता है -

यह कैसे हो सकता है कि एक सामान्य पुरुष
इन्द्र का सिंहासन छीन ले ।[3]

राजनीति के क्षेत्र में शासक अक्सर ऐसा करता है । अपने विरोधियों को दिशाहीन बनाने के लिए कोई भी मार्ग वह अपनाता है । यह विसंगति आधुनिक युग की है । इन्द्र की सत्ता पर केन्द्रित "एक पुरुष और" काव्य आधुनिक राजनीतिक विसंगति को सत्ता के साथ जोड़कर प्रस्तुत करता है ।

---

1. एक पुरुष और - डॉ. विनय - पृ. 44
2. नयी कविता की प्रबंध चेतना - महावीर सिंह चौहान - पृ. 124
3. एक पुरुष और - डॉ. विनय - पृ. 44

व्यवस्था की नृशंसता के रूप में राजनीति

राजनीतिक समस्याओं में प्रशासन की नृशंसता बडी भयानक होती है जिसका अमानवीय हरकतों के कारण साधारण मनुष्य का जीवन त्रस्त ही रहता है । शासक नृशंस होकर मानवीयता को भूल जाते हैं । इस प्रसंग में मूल्यों के संघर्ष के स्थान पर मूल्यहीनताओं की स्थापना होती है ।

आधुनिक कथाकाव्यों में राजनीति की इस नृशंसता की अभिव्यक्ति हुई है । अंधायुग, प्रवादपर्व, अग्निलीक, जैसे काव्यों में इसी राजनीतिक समस्या का प्रक्षेपण उपलब्ध है ।

"अंधायुग" महाभारत युद्ध के अन्तिम दिन की सन्ध्या से प्रारंभ होता है जो वास्तव में युद्ध के पश्चात् की स्थिति का इतिहास प्रस्तुत करता है -

> शेष अधिकतर है अन्धे
> पथभ्रष्ट, आत्महारा, विगलित
> अपने अन्तर की अन्धगुफाओं के वासी
> यह कथा उन्हीं अन्धों की है[1]

भीषण युद्ध में सब कुछ स्वाहा हो जाता है जो जीवित है, वे सब पथभ्रष्ट, पराजित एवं विगलित है जो अंधकार में भय के साथ भविष्य को देखते है ।

---

1. अंधायुग - स्थापना - धर्मवीर भारती - पृ. 10

यह अन्धों की कथा है, क्योंकि राजा धृतराष्ट्र अन्धे है । वे तो केवल सुनी हुई बातों द्वारा निर्णय लेते हैं । इसलिए उसे समाज का यथार्थ स्थिति का ज्ञान नहीं है । अतः अंधा राजा अन्धी संस्कृति के पोषक रहे । सब कुछ अस्पष्ट और अदृश्य-सा लगता है । यह संकेत वस्तुतः काव्य में प्रशासन की नृशंसता को सूचित करने के लिए पर्याप्त है -

"अन्धे राजा की प्रजा कहाँ तक देखें ?
दीख नहीं पडता कुछ
हाँ शायद बादल है"[1]

युद्ध की नृशंसता हर युद्ध का परिणाम है । युद्ध के पश्चात् की स्थिति का अवलोकन करने पर जान पडता है कि युद्ध में सत्य, धर्म और नियम सब तोडे जाते हैं । दोनों पक्ष से यह उल्लंघन होता रहता है । मर्यादाओं और धर्मों का यह खंडन युद्ध का अमानवीयता ही है । दुर्योधन और दुःशासन का वध कितना मृगीय और कराल था -

कैसे अधर्मयुक्त वार थे
दुर्योधन को नीचे गिरा दिया भीम ने
टूटी जाँघों टूटी कोहनी, टूटी गर्दनवाले
दुर्योधन के माथे पर रख कर पाँव
पूरा बोझ डाले हुए भीम ने ।[2]

अश्वत्थामा के मन में दुर्योधन की यह निर्मम हत्या उसके अंग-अंग को जला

---

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 13
2. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 51

देती है । उसके मन में पहले ही युधिष्ठिर का "अश्वत्थामा मारा गया" चीत्कार प्रताड़ित करती है । "निजी स्वार्थ में अन्धे शासकों द्वारा अपनाये गये अर्द्ध-सत्य का यह परिणाम आज के सन्दर्भों में भी उतना भयावह है जितना कि उस काल में था ।"[1] पराजित समरवीर जब प्रतिशोध की ज्वाला से धधक उठता है उसके सामने नीति-अनीति और धर्म-अधर्म की विभाजनरेखा नहीं होती वह पाँडव शिविर में सोते निहत्थे अचेत पाँडवपुत्रों और उत्तरा के गर्भस्थ शिशु की हत्या करने के लिए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग भी करता है । अश्वत्थामा की यह पाशविक वृत्ति असल में धर्म के नाम पर किये गये नृशंसतापूर्ण व्यवहार का परिणाम है -

छोड़ूँगा नहीं उत्तरा को भी
जिसमें गर्भित है
अभिमन्यु-पुत्र
पाण्डवकुल का भविष्य[2]

अश्वत्थामा की नृशंसता उसे एक अभागी युवती के गर्भस्थ शिशु की हत्या करने को भी प्रेरित करती है जिससे वह चाहता है कि शत्रुवंश के भविष्य का अंत हो । अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र-प्रयोग के संबंध में व्यास की प्रतिक्रिया में व्यापक पाशवीयता का चित्र है जो युद्धोपरान्त की परिणति है -

शिशु होंगे पैदा विकलांग और कुंठाग्रस्त
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जायेगी
जो कुछ भी ज्ञान संचित किया है मनुष्य ने

---

1. नवीन भावबोध के प्रबन्ध काव्यों में सांस्कृतिक चेतना - प्रेमचन्द मित्तल - पृ. 179
2. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 55

सब युग में, त्रेता में, द्वापर में
सदा-सदा के लिए होगा विलीन वह"[1]

ब्रह्मास्त्र युग-युगों से अर्जित ज्ञान राशि को एकदम नष्ट कर देगा । वह धरती को वन्ध्या बना देता है । वह संहारकारी विज्ञान की भर्त्सना है । बौनी हो जानेवाली मनुष्य जाति की चेतावनी आधुनिक व्यक्ति को है । "रचनाकार यह चुनौती देता है । पशुता और विकृति की पराकाष्ठा में ही अश्वत्थामा ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करता है । वह ब्रह्मास्त्र आधुनिक युद्धों में प्रयुक्त संहारकारी आणविक शस्त्रों का प्रतीक है ।"[2] वास्तव में ये ब्रह्मास्त्र मानव राशि का संहार करने में पर्याप्त है । भारती इस कथाकाव्य के द्वारा आणविक अस्त्र-शस्त्रों के दूषित प्रभाव की ओर संकेत करते हैं । इस तरह की हिंसात्मक प्रवृत्ति हर युग में जारी रही । व्यास के "तुम पशु हो"[3] के उत्तर में अश्वत्थामा "था मैं नहीं, मुझको युधिष्ठिर ने बना दिया"[4] कहकर उसके अस्तित्व को केवल एक ही अर्थ देता है - वध, केवल वध । अश्वत्थामा यही अर्थों में आधुनिक मनुष्य का प्रतीक है । प्रतिहिंसा और प्रतिशोध से वशीभूत होकर उसने मर्यादा, नीति, विवेक, धर्म, सदाचार सबको भुला दिया है । यह स्थिति आधुनिक व्यक्ति की मानसिकता से संबंधित है । "अंधायुग" के माध्यम से भारती ने महा भारतकालीन ब्रह्मास्त्रों की संस्कृति को आज की आणविक-संस्कृति से जोड दिया है ।

---

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 73
2. मिथक और आधुनिक कविता - शंभुनाथ सिंह - पृ. 202-203
3. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 74
4. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 74

व्यवस्था में व्यक्ति की लघुता की अवहेलना

"प्रवादपर्व" में नरेश मेहता सीता-निर्वासन के द्वारा अधिनायक के अमानुषिक व्यवहारों का अंकन करते है । यह लघुमानव के लिए चुनौता है । एक साधारण प्रजा की तर्जनी दूसरी प्रजा की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाती है जिससे उसका जीवन दुष्कर होता है । सीता की चरित्र-मर्यादा पर जब दोषारोप लगता है तो राम चिंताधीन होता है । पर वास्तव वह अपनी व्यवस्था को लेकर व्याकुल है । आरोप प्रजा का है । लेकिन उसे व्यवस्था के संदर्भ में आँकने के कारण सीता सवाल करती है -

> आज यह चिन्ता क्यों ?
> आप में कब वैयक्तिकता थी आर्यपुत्र ?
> किस दिन
> हमने नितान्त वैयक्तिक जीवन जिया ?[1]

वैयक्तिक जीवन जीने की असमर्थता कहती हुई सीता अपने वैवाहिक जीवन की असफलता की ओर संकेत करती है । दुःखी एवं उपेक्षिता पत्नी के हृदय की यह कराह भी है । राजभवनों में व्यक्ति का नहीं, इतिहास-पुरुष का महत्व है । राजा को राज्य, प्रजा और ऋषियों का संरक्षक होना चाहिए । राज्य न्याय और राष्ट्र को सर्वोपरि महत्व दिया जाता है ।

व्यवस्था में एक सामान्य व्यक्ति की रुदन और उसकी

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 78

आत्मा का धड़कन कोई नहीं सुनता । संपूर्ण सभासद के सामने राम अपने निर्णय पर अटल रहे -

कल सूर्योदय के साथ ही
सीता
वनवास के लिए प्रस्थान करेंगी[1]

"कल सूर्योदय के साथ सीता के वनवास का प्रस्थान होगा । मात्र यही नहीं, वनवासकाल में वह किसी भी प्रकार के राजकीय सुख-सुविधा की अधिकारिणी भी नहीं होगी । रथ के सारथी लक्ष्मण होगा ।" व्यवस्था के इस निर्णय के विरुद्ध कोई सवाल नहीं उठता है । व्यवस्था के सुदृढ़ चौखटे से बँधे हुए होने के कारण ही भरत लक्ष्मण आदि इस निर्णय के प्रति अपने विरोध के बावजूद चुप रहते हैं । यहाँ भुलाया गया तथ्य पत्नी के आत्मसम्मान का है । पत्नी यहाँ एक लघु व्यक्ति का प्रतीक है । उस लघुव्यक्ति के स्वतंत्र जीवन और स्वतंत्र अभिव्यक्ति का यह एक निषेध भी है । यह मनुष्यत्व का निषेध है । व्यक्ति-स्वातंत्र्य का यह निषेध व्यवस्था का एक भयानक चेहरा है । "यज्ञ के चरु-पात्र-सी पवित्र और मांगलिक गीता की यह परीक्षा उस घड़ी का निर्णय है जिसमें व्यक्ति निर्वैयक्तिक उदार चरित्र बन जाता है और अपनी इतिपुरुषता की रक्षा के लिए निर्मम और असंग कर्म करता जाता है ।"[2] सामूहिकता के लिए वैयक्तिकता की उपेक्षा अवश्य हो जाती है । लेकिन जब यह अपनी व्यवस्था की रक्षा में असंग और निर्मम हो तो वह व्यवस्था की नृशंसता बन जाती है । सीता के पक्ष में यही हुआ । इसलिए प्रवादपर्व का कवि कहता है

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 103
2. नरेश मेहता का काव्य: विमर्श और मूल्यांकन - प्रभाकर शर्मा - पृ. 129

"आसन्न मातृत्व की दुर्वह - स्थिति में
प्रिया को
किस प्राप्ति के लिए निर्वासित किया राम ?"[1]

अग्निपरीक्षा के बाद का यह निर्वासन पवित्र भूमिजा के लिए दूसरी परीक्षा है -

ऐसा अमानुषी आचरण तो
कोई वधिक भी
आसन्न प्रसवा गौ के साथ नहीं करता[2]

सीता के निर्वासन को लघुमानव की अवहेलना का रूप दिया जा सकता है । राम के लिए प्रिय सीता भी व्यवस्था के आगे तुच्छ बन जाती है । उसकी संरक्षा कैसी हो, उसका मान कैसे रखा जाए आदि प्रश्न भुलाए जाते हैं लघुमानव की आस्थाओं पर व्यवस्था की नृशंसता जंजीरें इस प्रकार पडती है ।

व्यवस्था में शासन-प्रियता का स्वरूप

"अग्निलीक" में भरत भूषण अग्रवाल ने शासन-प्रियता को व्यक्त किया है । इस काव्य के राम के चरित्र द्वारा एक महत्वाकांक्षी शासक का स्वरूप गठित किया गया है । अश्वमेध यज्ञ और दिग्विजय-यात्रा उसके अधिनायकत्व के साधन हैं । "अग्निलीक" की सीता का आरोप यह है कि राम किसी भी मूल्य पर समाज के सामने प्रतिष्ठा पाने के लिए तत्पर है ।

---

1. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 109
2. प्रवादपर्व - नरेश मेहता - पृ. 109

अपनी विजय पताका फहराने के लिए वे आजीवन समर्पित रहे । यह राम के व्यक्तित्व का पुनर्मूल्यांकन मात्र नहीं है । जब राम को रामत्व प्रदान करते है तो हम उसे मूल्य प्रदान कर रहे हैं । पर वही राम व्यवस्था से लिपटे रहे तो उसके माध्यम से मूल्य नहीं, बल्कि शासन प्रिय व्यक्ति की मूल्यहीनता ही प्रतिफलित है । सीता के सवाल में उसका स्वार्थी और सत्तानिष्ठ राजनीतिक रूप ही छलकता है -

इनके ध्यान में तो हर समय अयोध्या ही रहती थी
इनका मन राज्य की ही उधेडबुन में उलझा था ।
नारी के प्यार को जानने का
इन्हें अवकाश कहाँ था ?[1]

यह शासन-व्यवस्था का भयानक रूप है । राजनीति के नाम पर चलनेवाली ऐसी भयानक व्यवस्था को एक आम आदमी अंगीकार नहीं कर सकता । सीता अपने व्यक्तित्व को सर्वोपरि महत्व देती है । "अग्निलीक" में एक महत्वाकांक्षी राजा का रूप सीता यों दे रही है -

"दिन रात आठों पहर बस इन्हें एक ही धुन थी
राज्य, राजनीति, संग्राम, विजय !
सोते-जागते हर पल ये राजा ही बने रहे[2]

राम का मन महत्वाकांक्षाओं में उलझ हुआ है । शासनप्रियता उसमें हावी है । वह अपनी व्यवस्था में किसी को लांछन लगाने का अवसर देना नहीं

---

1. अग्निलीक - भरत भूषण अग्रवाल - पृ. 47
2. अग्निलीक - भरत भूषण अग्रवाल - पृ. 44

चाहता । अपनी व्यवस्था को सुरक्षित रखने के लिए सीता की अपेक्षा कर राज्य को ज़्यादा महत्व देता है । उनके राजसी व्यक्तित्व को उजागर करने के लिए सीता को अग्निपरीक्षा लेनी पड़ी -

महत्वाकांक्षा से भरी आँखें
दूर क्षितिज पर गड़ाते हुए
राजसी भंगिमा में बोले
तुम्हें अग्नि को साक्षी बनाकर वचन देना होगा
कि तुम पवित्र हो[1]

राम की आँखों में महत्वाकांक्षा की ज्वाला चमक रही है, अग्निपरीक्षा के इस निर्दयी आज्ञा देने के पीछे भी उसका यही सत्तानिष्ठ व्यक्तित्व है । यह निर्णय उसके राजनैतिक व्यवस्था की अमानवीयता का उद्घाटन है । व्यवस्था का नृशंस रूप इस कथा-संदर्भ में विद्यमान है ।

राजनीति में युद्ध की अमानवीयता

किसी भी युग में जब कभी युद्ध छिडता है उसकी भयानकता और बीभत्सता त्राही-त्राही मचा देती है । युद्ध की अमानवीयता एक दूसरे को पदाक्रान्त करने के लिए होती है । उसमें मूल्य के लिए कोई स्थान नहीं । युद्ध अपनी सत्ता शक्ति से दूसरे को दमन करते है । तब जाने अनजाने ही धर्म अधर्म में बदलता है ; नीति अनीति में बदलती है । भाई-बन्धुजनों तक की चिंता नहीं होती । व्यक्ति युद्ध की भीषणता का शिकार होकर मात्र

---

1. अग्निलीक - भरत भूषण अग्रवाल - पृ.48

तडपता है । युद्ध की राजनीति में सिर्फ शक्ति की परीक्षा होती है । मूल्य त्याज्य समझे जाते है । युद्ध का संघर्ष अमानवीयता की शक्तिपरीक्षा ही है ।

युद्ध मानवीय संस्कृति की सब से भयानक दुर्घटना है । सारी मर्यादाएँ टूट जाती है । युद्ध की बर्बरता इतनी भयानक है कि वह हमेशा मन को झकझोरती रहती है । यदि युद्ध धर्म नियम और नीति के आधार पर घटित हो तो वह अमानवीय रूप धारण नहीं करता । लेकिन दिक्कत यह है कि युद्ध में हमेशा उसके मानवीय अंश नष्ट होता है ।

युद्ध से त्रस्त व्यक्तियों का यथार्थ

नरेश मेहता का कथाकाव्य "महाप्रस्थान" भले ही पांडवों के महाप्रस्थान की कथा पर आधारित है फिर भी वह युद्ध के संत्रास को व्यक्त करने की कथा कहता है । उसमें युद्ध से त्रस्त व्यक्तियों का यथार्थ ही उभरा है । राजनीति के गहन-गर्त में पडकर युद्ध में भाग लेने के लिए मज़बूर व्यक्तियों की विडंबना इसमें अंकित है । इसलिए युद्ध के बाद वे अपने विफल जीवन के बोझ को उठाने के लिए अभिशप्त होते हैं । अतः विजय के बावजूद पराजय का अनुभव उसे सताता है -

"वर्षों के वैचारिक मन्थन के बाद ही
मैं ने यह निर्णय लिया था बंधु"[1]

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 109

युद्ध, भीषण संकट और अभिशाप के रूप में उन्हें प्रतीत होता है । युद्ध की अमानवीयता के कारण नरसंहार और रक्तपात अनिवार्य होता है । उसकी विभीषिकाएँ समस्त मानव-चेतना को आक्रान्त करती हैं । ऐसी स्थिति में संवेदनशील व्यक्ति युद्धोपरान्त अवसाद की गहरी चिंता में डूबे दिखाई पडते हैं । "महाप्रस्थान" के हर एक पात्र विशेषतः युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन सब विजयगाथा के बीच के कुचक्रों और वंचनाओं के सन्दर्भ नहीं भूल सकते । इसमें उनकी शारीरिक और मानसिक स्थिति का आकलन किया गया है । अतीत की स्मृतियों उभरती हैं और साथ ही युद्धोत्तर विषाद व आर्तनाद के स्वर भी ।"[1] अर्जुन के शब्दों में "हमने अपने ही हाथों अपना शवदाह किया ।"[2] दोनों पक्ष इसके लिए उत्तरदायी ठहराते हैं । वस्तुतः राजनीति के कुचक्रों ने इस शवदाह का आयोजन किया है । युद्ध का बीजांकुरण असल में बिगडी राजनीति के कारण होता है । हर पात्र इसको पल्लवित करता है । इसलिए युद्ध जनित अवसाद और पराजय बोध राजनीतिक विसंगति की उपज है । "युद्ध की भयावहता और राज्य तथा व्यक्ति के संबंध के अत्यन्त आधुनिक पक्ष इस खण्डकाव्य में उभरते है ।[3] ऐसी राजनीतिक विसंगतियों का चित्रण इस कथाकाव्य में हुआ है ।

युद्ध के ध्वंस के चित्र

धर्मवीर भारती की "कनुप्रिया" में भी युद्ध के ध्वंस के चित्र बिखरे पडे है । "कनुप्रिया" की राधा के माध्यम से इतिहास-निर्माण में

---

1. आधुनिक काल के खण्डकाव्य - शिवप्रसाद गोयल - पृ. 115
2. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 57
3. नरेश मेहता कविता की ऊर्ध्वयात्रा - रामकमल राय - पृ. 84

व्यस्त कृष्ण का चित्र हमें मिलता हैं । युद्ध में भाग लेनेवाले राजनीतिज्ञ कृष्ण का रूप राधा के द्वारा अंकित है । एक ओर राधा और कृष्ण के प्रेम के संकेत स्वरूप यमुना के विभिन्न रूप अंकित है । राधा के लिए -

मानो यह यमुना की साँवली गहराई नहीं है
यह तुम हो जो सारे आवरण दूर कर
मुझे चारों ओर से कण-कण रोम-रोम
अपने श्यामल प्रगाढ़ अथाह आलिंगन में पोर-पोर कसे
हुए हो ![1]

दूसरी तरफ़ उसी यमुना में दिखाई पड जानेवाली वस्तुएँ युद्ध की भयानकता के साक्षी है -

अपनी जमुना में
जहाँ घण्टों अपने को निहारा करती थी मैं
वहाँ अब शस्त्रों से लदी हुई
अगणित नौकाओं की पंक्ति रोज़ रोज़ कहाँ जाती है ?
धारा में बह-बहकर आते हुए, टूटे रथ
जर्जर पताकाएँ किसकी हैं ?[2]

जिस यमुना की धारा में राधा घण्टों तक निहार कर रही थी, उसी यमुना में युद्ध के अवशेष, पताकाएँ, टूटे रथ अस्त्र आदि रोज़ रोज़ बहकर आते हैं । कवि ने प्रेम और युद्ध के सन्दर्भ में राधा-कृष्ण की कथा को यमुना से जोडा

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 16
2. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 68

दिया है । राधा-कृष्ण के प्रेम संबंधी सभी कथाओं में यमुना का संकेत है । यमुना साक्षी है । लेकिन भारती उसी यमुना की धारा में युद्ध के ध्वंस के चित्र दर्शाते हैं । इसी ध्वंस के कारण राधा के मन में यह सवाल उठता है -

हारी हुई सेनाएँ, जीती हुई सेनाएँ
नभ को कंपाते हुए, युद्ध-घोष, क्रन्दन-स्वर,
भागे हुए सैनिकों से सुनी हुई
अकल्पनीय अमानुषिक घटनाएँ युद्ध की
क्या ये सब सार्थक है ?[1]

युद्ध का ध्वंस राजनीतिक विसंगति का एक अन्य रूप है । "कनुप्रिया" में सचमुच युद्ध के ध्वंस को और तत्संबंधी राजनीतिक विसंगति को प्रेम जैसे कोमल भाव के परिप्रेक्ष्य में आँका गया है । इसलिए धर्मवीर भारती को यह बताने में काफी सुविधा मिली कि मनुष्य के कोमल भावों का स्थान जिस प्रकार युद्ध की राजनीति हरण कर लेती है । राधा और कृष्ण के चिरंतन प्रेम का मिथक इस आधुनिक कथाकाव्य को और भी प्रासंगिक बनाता है ।

इस प्रकरण में जितने कथाकाव्य उल्लेखित और चर्चित है उनमें राजनीति और राजनीतिक व्यवस्था सत्ताधारी शक्ति के प्रभुत्व का पाशवीय चित्र प्रमुख है । उनमें व्यवस्था के शिकंजे के अधीन में चरमराते लोग भी है । यह सही है कि वे सभी सवाल करते है, लेकिन अपनी इस अभिशप्तता से उभरते नहीं है । पौराणिक कथाओं में ऐसे पात्रों की कमी नहीं है जो

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 68

लगातार विसंगति के वशीभूत होकर बढते जाते हैं । हर काव्य में आधुनिक जीवन का एक संघर्षात्मक चित्र उपलब्ध है । राजनीतिक संकेत इस संघर्ष को नई दिशा प्रदान करते है । यही संभवत: इन काव्यों की मूल्यवत्ता है ।

अध्याय छः

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों का शिल्प-विधान

अध्याय - छः

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों का शिल्प-विधान

आधुनिक काल की रचना होने के बावजूद कथाकाव्य का शिल्प विधान अन्य आधुनिक कविताओं के शिल्प विधान से भिन्न है । लेकिन सभी कथाकाव्यों ने एक जैसा शिल्प भी अपनाया नहीं है । उनमें भी विविधता है । बाह्य एवं आंतरिक भिन्नताओं के कारण एक कथाकाव्य दूसरे कथाकाव्य से शिल्प के स्तर पर भिन्न है । लेकिन इन्हें समकक्ष रखनेवाला तत्व उसकी कथाकाव्यता है । कथा का किसी न किसी प्रकार का विकास कथाकाव्यों की स्वाभाविक प्रवृत्ति है । इसी प्रवृत्ति के साथ आधुनिक कवि अपनी शिल्पपरक कुशलता का परिचय भी देता है और तदनुकूल कथाभूमि की तलाश भी करता है ।

आधुनिक कविता, जो कि आधुनिक जीवन की संकटग्रस्त स्थिति के अनुरूप लिखी गई है, अपनी अनुभूत्यात्मक विज्ञप्ति काव्य-आकार की नई भंगिमा के माध्यम से करती है । कथाकाव्य के लिए शिल्पपरक नवीनता, एक अनिवार्य स्थिति है । कई सर्गों में विभक्त आत्मजयी के प्रत्येक सर्ग के आकार में संतुलन नहीं है । "कनुप्रिया" छोटे छोटे सर्गों में विभक्त है । कहीं-कहीं संवाद शैली में पात्रों की मानसिक अवस्था को व्यंजित किया गया है; संवाद आत्मालाप शैली में प्रस्तुत है । "संशय की एक रात", "उर्वशी", "अंधायुग", "एक कंठ विषपायी", "आत्मजयी", जैसे काव्यों में वार्तालाप शैली की स्वीकृति है तो "कनुप्रिया" और "आत्मदान" में एकालाप-पद्धति है । स्पष्ट है कि कथात्मकता की समानता के बावजूद कथाकाव्य अपने नये रूपबंध की खोज करता है ।

इतने पर भी आधुनिक युग में रचित कथाकाव्यों में कुछ ने खण्डकाव्य के तत्वों का ग्रहण भी किया है और कुछ ने खण्डकाव्य के तत्वों को आंशिक रूप से ग्रहण किया हैं । अतः कुछ कथाकाव्यों में सैद्धान्तिक तत्वों का पूरा निर्वहण नहीं हुआ है । लेकिन सभी काव्यों में कथा का अंश प्रबल है । आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार इनकी अवधारणा भी हुई हैं । इसलिए चाहे खण्डकाव्य हो, प्रबन्धकाव्य या नाट्य-काव्य हो सभी में प्राचीन काव्य रूप की ओर झुकाव है तथा आधुनिकतावादी दृष्टि को अपनाने की अनियंत्रित इच्छा भी प्रकट है । परन्तु इसके शिल्प-विधान के अध्ययन के लिए इन्हें प्रमुख रूप से दो भागों में विभक्त कर सकते हैं - एक खण्डकाव्य के तत्वों के आधार पर रचित कथाकाव्य और दूसरा खण्डकाव्येतर रचनाएँ ।

खण्डकाव्य के तत्वों के आधार पर रचित कथाकाव्य

कुछ कथाकाव्य खण्डकाव्य के तत्वों के आधार पर रचित है । सब से पहले इस पर विचार करना उचित है कि खण्डकाव्य किसे कहते हैं ? उसके लक्षण क्या है ? "खण्डकाव्य" शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग आचार्य विश्वनाथ ने किया है । उन्होंने खण्डकाव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है - खण्ड काव्यभवेत्काव्य स्यैकदेशानुसारि च ।"[1] अर्थात् काव्य के एक अंश का अनुसरण करनेवाला काव्य खण्डकाव्य होता है । बाबू गुलाबराय ने विश्वनाथ के मत से सहमत होते हुए कहा है - "खण्डकाव्य में प्रबन्धकाव्य का सा तारतम्य तो रहता है, किन्तु महाकाव्य की अपेक्षा उसका क्षेत्र सीमित होता है । उसमें जीवन की वह अनेकरूपता नहीं रहती जो कि महाकाव्य में होती है ।"[2]

---

1. साहित्य दर्पण - आचार्य विश्वनाथ ; 6 परिच्छेद - पृ. 329
2. काव्य के रूप - गुलाबराय - पृ. 118

भगीरथ मिश्र ने भी कहा है - "खण्डकाव्य के लक्षणों पर अधिक विस्तार से विचार नहीं किया गया है, परन्तु इसमें प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें कथावस्तु संपूर्ण न होकर उसका एक अंश ही होता है । प्राय: जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना या दृश्य का मार्मिक उद्घाटन होता है और अन्य प्रसंग संक्षेप में रहते हैं ।"[1] उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार जीवन की किसी मार्मिक एवं हृदय स्पर्शी कथा या घटना को मूल तत्व के रूप में स्वीकार करके कम सर्गों में कम पात्रों के द्वारा खण्डकाव्य की रचना होती है । कभी कभी सर्गबद्धता अनिवार्य भी नहीं है । आधुनिक काल तक आते आते यह काव्य रूप कम प्रमुख होने लगा । सामान्य रूप से खण्डकाव्य के निम्नलिखित तत्व निर्धारित किए जा सकते हैं -

1. खण्डकाव्य की कथावस्तु को इतिहास-प्रसिद्ध अथवा पौराणिक होना चाहिए । परन्तु कल्पना-प्रसूत कथावस्तु भी अभीष्ट है ।
2. कोई भी पुरुष इसका नायक हो सकता है ।
3. किसी व्यक्ति के जीवन की किसी घटना के आधार पर खण्डकाव्य रचित होता है ।
4. खण्डकाव्य का काव्य कलेवर महाकाव्य की अपेक्षा लघु होता है ।
5. कथा-संगठन आवश्यक है । कथा-विन्यास में निश्चित उद्देश्य अनिवार्य है ।
6. सर्ग-विभाजन अनिवार्य नहीं । लेकिन सर्ग हो तो सर्ग-संख्या सीमित रहना वाँछनीय है ।

खण्डकाव्य के उपरोक्त तत्वों के आधार पर आधुनिक कथाकाव्यों का शिल्पाधिष्ठित विश्लेषण करते समय मालूम होता है कि

---

1. काव्य शास्त्र - भगीरथ मिश्र - पृ. 66

अधिकतर काव्य खण्डकाव्य के तत्वों के आधार पर रचित हैं । "कनुप्रिया", "द्रौपदी", "आत्मजयी", "संशय की एक रात", "प्रवादपर्व", "महाप्रस्थान", "शबरी", "आत्मदान", "विश्वकर्मा", "भस्मांकुर" आदि खण्डकाव्य के तत्वों के आधार पर लिखे गये कथाकाव्य हैं ।

"कनुप्रिया" डॉ. धर्मवीर भारती की काव्यकृति है जिसे खण्डकाव्य के अंतर्गत लिया जा सकता है । क्योंकि यह खण्डकाव्य के अधिकतर तत्वों को स्वीकार करती है । पूर्वराग, मंजरी, परिणय, सृष्टि-संकल्प, इतिहास समापन आदि पाँच अंशों (सर्गों) में विभक्त कनुप्रिया में प्रत्यक्ष रूप से केवल एक ही पात्र "राधा" है जिसके द्वारा राधा और कृष्ण दोनों के व्यक्तित्व का प्रकाशन हुआ है । अतः राधा इस काव्य की नायिका है । इसकी कथा का मूलस्रोत श्रीमद्भागवत् ही है । तभी तो इसकी कथावस्तु पुराण-प्रसिद्ध है । इसमें कृष्ण के प्रति राधा की भावाकुल तन्मयता के अनूठे क्षणों की अभिव्यक्ति हुई है । लेकिन स्मृतियों के विविध रंगों के माध्यम से कुछ तन्मयता के क्षणों का शनै-शनै विस्तार किया गया है । आत्मालाप शैली खण्डकाव्य के लिए स्वीकार्य भी है । उस दृष्टि से भी कनुप्रिया संपन्न है । क्योंकि "कनुप्रिया" के आदि से अंत तक आत्मालाप शैली स्वीकृत है । लेकिन शिल्प की दृष्टि से इसकी नवीनता यह है कि कृष्ण इसमें अनुपस्थित है । उसके व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा राधा के माध्यम से हुई है । यह शिल्प का एक नया रूप है । संवादों के वैशिष्ट्य पर ध्यान दें तो राधा द्वारा प्रयुक्त संबोधन अत्यन्त आकर्षणीय हैं -

राधन् ! तुम्हारी शोख चंचल विचुम्बित पलक तो
पगडंडियाँ मात्र हैं [1]

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 27

हाँ चन्दन,
तुम्हारे शिथिल आलिंगन में
मैं ने कितनी बार इन सबको रीताता हुआ पाया है ।[1]

× × × × × × × × ×

वह मैं हूँ मेरे प्रियतम !
वह मैं हूँ
वह मैं हूँ[2]

इन संबोधनों में वैविध्य है । यह विविधता अलग सन्दर्भों का बोध कराती है अतः काव्य की विचार-श्रृंखला में मौलिकता है और यह इसके शिल्प पक्ष की आधुनिकता है ।

"द्रौपदी" काव्य का आधार महाभारत है । महाभारत के एक प्रमुख पात्र द्रौपदी को लेकर उसी के नाम पर लिखे गये खण्डकाव्य में द्रौपदी को पाँडवों की जीवनी-शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है । इसमें प्रतीकात्मक कथा-संयोजन हुआ है । इसमें प्रबन्धात्मकता का अभाव है । यद्यपि द्रौपदी-स्वयंवर से लेकर युद्ध में विजय होने तक के विशाल कथा-विस्तार की अभिव्यक्ति इसमें है तो भी इसके आकार को ध्यान में रखकर स्वयं नरेन्द्र शर्मा ने कहा है - "द्रौपदी एक लघुकाव्य है । इसकी कथा को भला कौन नहीं जानता ।"[3] खण्डकाव्य का कलेवर लघु होने पर यह लघुकाव्य भी खण्डकाव्य के अन्दर आँका जा सकता है । लघुकाव्य होने पर भी द्रौपदी एक महान उद्देश्य

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 27
2. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 42
3. द्रौपदी - वक्तव्य - नरेन्द्र शर्मा

की पूर्ति में सफल है । वह सिर्फ पाँडव पत्नी नहीं, उन पाँडवों की जीवनी-शक्ति है । द्रौपदी को एक गरिमामय व्यक्तित्व प्रदान किया गया है । इस उद्देश्य से भी यह कथाकाव्य संपन्न है । काव्य में सुनियोजित प्रतीक पद्धति के द्वारा स्वत्व, धर्म, कर्म और नारी की मर्यादा का संरक्षण सुस्थिर बना दिया है । स्वयं कवि भी इसका समर्थन करते है - "द्रौपदी ने पाँडव पुरुषों में स्वत्व और सत्व को प्राप्त करने के लिए विचार और कर्म का तेज भरा था, विजय के गौरव-शिखर पर उन्हें भेज जीवन की सबसे बडी सिद्धि उनके हाथों में सौंपी थी ।"[1] यह पाँच सर्गों का काव्य है सर्ग संख्या में खण्डकाव्य के तत्वों का अनुसरण करता है ।

"भस्मांकुर" में नागार्जुन ने परंपरिक "कामदहन" के पौराणिक प्रसंग को आधार बनाकर काम के चिरंतन पक्ष की पुष्टि की है । कुमारसंभवम् के तीसरे और चौथे सर्गों में प्रतिपादित यह प्रसंग भस्मांकुर का मुख्य प्रतिपाद्य है । अतः शिल्पपक्ष का कथ्यगत संगठन कामदेव के जीवन की मार्मिक घटना प्रस्तुत करता है जो अन्य कामदहन संबंधी कथाओं में नवीन भी है । प्रकाशचन्द्र भट्ट इसे खण्डकाव्य ही मानते है - "भस्मांकुर नागार्जुन का सद्यः प्रकाशित खण्डकाव्य है ।"[2] यह सही है कि इस काव्य में खण्डकाव्य के अधिकांश तत्वों का निर्वहण हुआ है । क्योंकि कथा-विन्यास में क्रम, विकास, चरम सीमा और महान उद्देश्य का पूर्ण परिपाक हुआ है । "जयति जयति भस्मांकुर जयति अनंग"[3] कहकर कवि अपने महान उद्देश्य को व्यक्त करते है । "काम"

---

1. द्रौपदी - नरेन्द्र शर्मा - पृ. 110
2. नागार्जुन:जीवन और साहित्य - डॉ.प्रकाशचन्द्र भट्ट - पृ. 104
3. भस्मांकुर - नागार्जुन - पृ. 80

के चिरंतन पक्ष का उद्घाटन ही इस कथाकाव्य का उद्देश्य है । बुझी हुई राख से फिर से अंकुरित कामदेव मानव-मन में स्थित काम-भाव के सनातनत्व को व्यक्त करते है । खण्डकाव्य के लक्षणों के अनुसार काव्य का कलेवर लघु रहता है । कवि का कथन भी इस तथ्य को प्रमाणित करता है - "आज हमारी वह पुरानी अभिलाषा पूर्ण हुई कि बरवै छंद में एक समग्र लघुकाव्य पूर्ण हुआ ।"[1] इसमें सर्ग-विभाजन तो नहीं हुआ है । क्योंकि सर्गबद्धता कभी-कभी अनिवार्य नहीं है । कथा आरंभ से अंत तक क्रम से विकसित होकर निश्चित उद्देश्य की पूर्ति करती है ।

नरेश मेहता का कथाकाव्य "संशय की एक रात" चार सर्गों में रचित है । प्रसिद्ध रामकथा का एक मार्मिक अंश ही है और यह उसकी शिल्प दृष्टि के संबंध में कवि ने कहा है - "संशय की एक रात की शिल्प योजना मूलत: एक खण्डकाव्य की है जिसमें कथोपकथन, एकालाप, वार्तालाप और केवल आत्मविवेचन के माध्यम से पूरी कथावस्तु के साथ नया संदर्भ जुडता चलता है ।"[2] सर्ग का नामकरण उसी सर्ग में प्रतिपादित संदर्भ और घटना के अनुसार "साँझ का विस्तार और बालुतट", "मध्यरात्रि की मंत्रणा और निर्णय" जैसे हुआ है । यह सर्ग की अवधारणा भी नवीनता है । यह भी ध्यान देने की बात है कि कवि ने एकालाप और वार्तालाप के माध्यम से प्रतिपाद्य को संवेद्य बनाया है । कुछ उदाहरण इस प्रकार है -

---

1. भस्मांकुर - भूमिका - नागार्जुन - पृ. 12
2. संशय की एक रात - शिल्प दृष्टि - नरेश मेहता - पृ. 13

अनुखन सालता है
क्या सोचते होंगे जनकजी ?
बन्धु-बान्धव और
पुरवासी सभी क्या कह रहे होंगे ?
स्वयं सीता
सोचती होंगी
क्या ? ?[1]

xxx xxx xxx

मुझे प्रश्नों शपथों में घिरा छोड़
चला गया लक्ष्मण
चला गया ।[2]

संवाद शैली का उपयोग भी सन्दर्भानुकूल है -

छाया:

राम !
मुझे तुम्हारी ही प्रतीक्षा थी
इन आवाज़ों से कह दो
चली जाएँ ।
केवल तुम
आओ
मेरे पीछे पीछे आओ ।

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 7
2. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 29

डरो नहीं राघव !
मेरे पीछे पीछे आओ ।

जामवन्तः

प्रभु ! यह छलना है
रावण की ।

राम

तुम लोग
नीचे बाँध पर प्रतीक्षा करो ।[1]

ऊपर विवेचित एकालाप और चार्तालाप के उदाहरण राम के विराटत्व या रामत्व के बदले मानवीकरण की गरिमा प्रस्तुत करने के लिए प्रयुक्त है । इतिहास के संदर्भ से संशयी व्यक्तित्व की प्रश्नाकुलता को उभारकर एक नये शिल्प की तलाश की है । प्राचीन और नवीन का पूर्ण कलात्मक योग इसमें हुआ है । अतः संशय की एक रात नरेश मेहता का खण्डकाव्य है जिसमें एक आधुनिक व्यक्ति की संदेहग्रस्तता के विभिन्न आयाम मिलते है ।

महाभारत की ही कथा के आधार पर लिखित "महाप्रस्थान" में खण्डकाव्य के तत्वों की स्वीकृति है । यह खण्डकाव्य सर्गबद्ध है । महाभारत के समान पर्व खण्ड का प्रयोग हुआ है जैसे यात्रापर्व, स्वाहापर्व और स्वर्गपर्व नामक तीन पर्वों में विभक्त है । महाभारत युद्ध में विजयी होने के बाद पाँडवों द्वारा स्वर्गारोहण के लिए महाप्रस्थान की मुख्य घटना को लेकर अंत तक आते आते करुणा एवं सहानुभूति के भावसमुद्र को उभारते है । यह

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 40-41

कथा का क्रमिक विकास है । इसलिए कथा-संगठन सफल है । युधिष्ठिर काव्य-नायक है । कथा संदर्भों को आकर्षक बनाने के लिए नाटकीयता प्रदान की गई है -

अर्जुन: बन्धु ।
व्यक्ति के पुरुषार्थ और संकल्प का
तब कोई अर्थ नहीं ?

युधिष्ठिर
क्या तुम्हें अब भी लगती है ?
अर्जुन । इस वैचारिक चक्रव्यूह में
तुम व्यक्ति के
संकल्प और पुरुषार्थ तक ही
क्यों रुक जाते हो ।[1]

"महाप्रस्थान" में कथा-तत्व विरल हैं । स्वर्गारोहण के इस अभियान में कवि ने द्रौपदी, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि की स्मृतियों के माध्यम से महाभार की घटनाओं को विश्लेषित किया है । स्मृतियों के माध्यम से प्रमुख घटनाओं का संकेत करके कथानक को संक्षिप्त कर दिया है । पर इसका आन्तरिक कथाभाग विस्तृत है । यह इसका एक नयापन है ।

नरेश मेहता द्वारा प्रणीत "शबरी" का आधार वाल्मीकी रामायण है । शबरी की कथा रामायण में अप्रमुख रही । लेकिन खण्डका

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 10।

प्रमुख-अप्रमुख की बात नहीं, अप्रमुख पात्र को भी प्रमुख पात्र के रूप में अंकित कर सकते है । इसलिए "शबरी" कथाविन्यास खण्डकाव्य के तत्वों के बाहर नहीं है । पाँच सर्गों में विभक्त करके सर्गों की संख्या सीमित किया है । त्रेता, पम्पासर, तपस्या, परीक्षा, दर्शन आदि सर्ग उनमें प्रतिपाद्य घटना के आधार पर वर्गीकृत है । यह काव्य आधुनिक युग के एक महान समस्या का समाधान प्रस्तुत करता है । कवि का मूल संकेत यह है कि वर्ण-व्यवस्था से ऊपर उठकर कोई भी व्यक्ति आध्यात्मिक स्वत्व पा सकता है । नरेश मेहता का काव्य "शबरी" इस महान सन्देश की पूर्ति करता है । मोटे तौर पर देखें तो यह कथन तो ठीक ही है - "शबरी" अधिक वैचारिक होते हुए भी एक सहज भावोच्छ्वल खण्डकाव्य है ।"[1]

"प्रवादपर्व" भी नरेश मेहता का एक कथाकाव्य है जिसमें खण्डकाव्य के लक्षण स्वीकृत है । यह कथाकाव्य पाँच सर्गों - इतिहास और प्रति इतिहास, प्रति इतिहास और तंत्र, शक्ति एक संबंध एक साक्षात, प्रति इतिहास और निर्णय और निर्वेद विदा - में विभक्त रामायण सन्दर्भ को लेकर लिखा गया है । प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना के उद्देश्य से कवि ने इसकी रचना की है । यह एक समस्या मूलक आधुनिक कथाकाव्य है जो खण्डकाव्य के तत्वों का अनुसरण करता है ।

"आत्मजयी" कठोपनिषद् के नचिकेता के प्रसंग पर आधारित कुँवर नारायण का कथाकाव्य है । नचिकेता ऐसा एक पात्र है जो मृत्यु के

---

1. नरेश मेहता का काव्य विमर्श और मूल्यांकन - प्रभाकर शर्मा - पृ. 135

रहस्य की खोज करता है । वह आधुनिक व्यक्ति का प्रतीक है । इसकी कथा के चयन के संबंध में कवि का कथन है - "आत्मजयी मूलत: जीवन की सृजनात्मक संभावनाओं में आस्था के पुनर्लाभ की कहानी है ।"[1] इसका उद्देश्य भी यही है । नायक नचिकेता सार्थकता से जीना चाहता है । इसलिए इसका महान उद्देश्य सार्थक जीवन की तलाश है । यह कथाकाव्य मुक्त छंद में कई शीर्षकों में लिखा गया है । इसमें प्रबन्धात्मकता है जो खण्डकाव्य के लिए अप्रासंगिक नहीं है । कथा की तंत्री कभी टूटती नहीं, कथा धीरे-धीरे विकसित होती है । अत: इसकी कथा का गठन खण्डकाव्य के अनुयोज्य ही है ।

प्रकृति के तेजस्वी पुरुष "सूर्य" की सूर्य छाया कथा पर रचित "विश्वकर्मा" प्रभाकर माचवे का एक कथाकाव्य है । यह लघुकाव्य खण्डकाव्य के समान ही है । "यह छोटा-सा काव्य एक पुराण कथा को आधुनिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में पुनर्व्याख्यायित करने का यत्न है ।"[2] कई काल-खण्डों में यह विभक्त है । कथ्यगत सारी घटनाओं का उल्लेखन सूर्योदय से लेकर सूर्यस्तवन तक के विविध पहलुओं के अन्तर्गत रखा गया है । देवताओं का एक दिन कल्प-कल्पान्तर का बड़ा होता है । सूर्योदय, मध्याह्न, अपराह्न, सूर्यास्त, प्रभा, निशा, उषा आदि एक ही दिन के कई आयामों की संकल्पना माचवे की शिल्प-कुशलता का प्रमाण है । सूर्योदय का चित्र कवि की कल्पना में -

पूरब में पौ फटी ।
दिशाएँ गुलाबी हुई ।

---

1. आत्मजयी - भूमिका - कुँवर नारायण - पृ. 8
2. विश्वकर्मा - भूमिका - प्रभाकर माचवे ।

घोंसलों में चहचहाहट
दिन निकला । अंधेरे से कहा - "हट"
धीरे धीरे सूर्य बिंब
क्षितिज पर अर्द्ध-गोल ।[1]

सूर्य की पौराणिकता का समर्थन करते हुए माचवे कहते है - "इस सूर्य के रूप-गुण का वर्णन ऋग्वेद में और अन्य वेदों में भी बहुत है, उसी पर इस काव्य का प्रथम अध्याय रचा गया है ।"[2] इससे यह मालूम हो जाता है कि "विश्वकर्मा" का कथानक वैदिक कथा-प्रसंग पर आधारित है जिसमें अंधकार से प्रकाश की ओर जाने की प्रेरणा है । अत: "तमसो मा ज्योतिर्गमय" का सन्देश इस काव्य को अधिक आकर्षक बनाता है । काव्य की रचना के पीछे कवि का उद्देश्य यही है ।

बलदेव वंशी का "आत्मदान" भी कनुप्रिया के समान आत्मालाप शैली में रचित आधुनिक कथाकाव्य है जिसके मूल में खण्डकाव्य के तत्व परिलक्षित हैं । "बलदेव वंशी का "आत्मदान" कनुप्रिया (धर्मवीर भारती) के समान एक नये अर्थ में नई शैली का खण्डकाव्य है ।"[3] आत्मालाप शैली खण्डकाव्य में स्वीकृत एक कविता-क्रम है । इस कथाकाव्य को कवि ने "इन्द्रराग "इन्द्र मिलन", "मिलन उपरान्त", "भविष्य आशंका" जैसे तेरह शीर्षकों में विभाजित किया है । अहल्या की कथा प्राचीन है । इसमें कवि ने वाल्मीकि रामायण का अहल्या संबंधी वृत्तान्त स्वीकार किया है । इसलिए इसकी

---

1. विश्वकर्मा - प्रभाकर माचवे - पृ. 17
2. विश्वकर्मा - भूमिका - प्रभाकर माचवे - पृ. 9
3. हिन्दी के खण्डकाव्य - शिवप्रसाद गोयल - पृ. 120-121

कथावस्तु पुराणसम्मत है । आत्मालाप शैली का इसमें भरपूर प्रयोग किया है -

"नहीं, यह बिखराव नहीं
देह - मन का
आत्म-साक्षात्कार है !
आत्मन् !
मुझे नहीं है पश्चाताप
इस क्षण ।"[1]

राम !
तुम साक्षी हो
यह मेरा आत्मदान था
वर्षों का अविरत तप था[2]

"सूर्यपुत्र" महाभारत कथा के कर्ण के जीवन को एक नये रूप में प्रस्तुत करता है । "सूर्यपुत्र" की रचना कई अनुक्रमों में हुई हैं । ये अनुक्रम कविता खंड ही है । शिल्प की दृष्टि से "सूर्यपुत्र" एक खण्डकाव्य है जो बीच-बीच में संवाद, आत्म-कथ्य आदि के द्वारा मुक्तछंद में एक ही लय आद्यन्त प्रस्तुत करता है । संवाद शैली उनकी कथा के विन्यास को और भी आकर्षक बनाती है -

"मैं न लड़ूँगा इस महासमर में उस क्षण तक पितामह !
जब तक आप रहेंगे सक्रिय युद्ध में"[3]

---

1. आत्मदान - बलदेव वंशी - पृ. 11
2. आत्मदान - बलदेव वंशी - पृ. 45
3. सूर्यपुत्र - जगदीश चतुर्वेदी - पृ. 56

कर्ण की इस प्रतिज्ञा के उत्तर में दुर्योधन कहता है -

युद्ध न करो तुम पितामह के रहते हुए
तुम्हारी यह प्रतिज्ञा मुझे है स्वीकार
पर तुम रहना सदैव मेरे समक्ष
गुप्त मंत्रणाओं में
सहभागी मेरे बनना
जय या पराजय में ।[1]

कुछ कथाकाव्यों को कवियों ने लघुकाव्य की संज्ञा दी है । "शम्बूक" का आधार "रामायण" में वर्णित शम्बूक-वध है । यह एक लघुकाव्य है जो खण्डकाव्य से मिलता जुलता है । आकार में लघु है । कवि ने कहा है - "शम्बूक को मैं खण्डकाव्य की जगह लघुकाव्य कहना अधिक पसन्द करूँगा क्योंकि खण्डकाव्य शब्द मेरे मन को किसी टूटा हुई वस्तु का बोध कराता है । इसी तरह "राजद्वार" आदि को मैं सर्ग की जगह "अंश" कहना अधिक संगत समझता हूँ ।"[2] लेकिन नये शब्द-विन्यास के बावजूद लघुकाव्य खण्डकाव्य की श्रेणी में आनेवाली रचना ही है ।

उपरोक्त विश्लेषण से यह विदित होता है कि आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में अधिकतर रचनायें खण्डकाव्य के तत्वों के आधार पर रचित हैं । प्रत्येक काव्य महान उद्देश्य से लिखा गया है । यद्यपि उनमें

---

1. सूर्यपुत्र - जगदीश चतुर्वेदी - पृ. 57-58
2. शम्बूक - कविकथन - जगदीश गुप्त - पृ. 12-13

खण्डकाव्य की सैद्धान्तिकता उपलब्ध हैं तो भी कथा की प्रबलता और उसकी आधुनिक संवेदना उन्हें आधुनिक कथाकाव्य के अन्तर्गत स्थान प्रदान करती है ।

खण्डकाव्येतर रचनाएँ

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में अंधायुग, उर्वशी, एक कंठ विषपायी, एक पुरुष और, अग्निलीक आदि ऐसे कथाकाव्य है जिनमें खण्डकाव्य के तत्वों का निर्वहण नहीं हुआ है । इसलिए उक्त कथाकाव्यों को खण्डकाव्येतर रचनाओं की कोटि में रखा जा सकता है । इनमें काव्य के पौराणिक आख्यान नितांत नूतन रूप धारण करते हैं । नूतनता का यह आग्रह रूप परक मात्र नहीं है । आधुनिक कथाकाव्यों की आख्यान रीति की अपनी विशिष्टताएँ हैं और अपना जोश भी है । उन विशिष्टताओं के अनुकूल कथाकाव्यों ने नया रूप ग्रहण किया है । अतः इस कथा की नाटकीयता मात्र उसकी अभिव्यक्ति घटना नहीं है । नाटकीयता के माध्यम से आख्यान का कोई नया भावबोध प्रकट होता है । इस प्रकार अनेक नूतन संकेत कथाकाव्य की रचना प्रक्रिया में संलग्न है ।

नाट्यकाव्य

नाट्यकाव्य में नाटकीयता की प्रधानता है । कई अंशों में इसमें नाटक के बाह्य विधान को स्वीकार किया जाता है । लेकिन काव्य की भंगिमा बनाये रखने की चेष्टा भी विद्यमान है ।

"अंधायुग" धर्मवीर भारती का प्रसिद्ध नाट्यकाव्य है जिसमें महाभारत के अठारहवाँ दिन की संध्या से लेकर प्रभास-तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक की कथा वर्णित है । कथा पाँच अंकों में विभक्त किया गया है । काव्य के आरंभ में "स्थापना" और अंत में "समापन" ये दोनों नये तत्व हैं । इन दोनों में मंगलाचरण तथा कथा-गायन भी प्रस्तुत है । इसके कथा-गायन यवन काव्यों में प्राप्त कोरस के पात्रों के समान है । "मरडर इन दि कत्तीड्रल" के कोरस के संबंध में नेविल कोहिल ने भूमिका में कहा है - "वे कान्टरबेरी की चिन्तित और दिशाहीन नारियाँ हैं जो अब अपनी अध-जिए ज़िन्दगी के आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन के लिए पुकार रही है । उनके अन्दर कालचक्र की खिन्न-अंधकारमयी परिक्रमाएँ समाहित हैं, मृत्युकारी हेतन्त है, विनाशकारी वसन्त है, दुर्भाग्यकारी ग्रीष्म है, और बाँस शरद है जो उनके विलाप को भी मलिन बनाता है और वे दिसंबर की प्रतीक्षा करते हैं । क्योंकि दिसंबर में मनुष्य-पुत्र का जन्म हुआ था ।"[1] इसमें कान्टरबरी की तत्कालीन व्यवस्था और लोगों पर व्याप्त अंधकारमयी मानसिकता का एक सच्चा चित्र उपलब्ध है । यह प्राचीन नाट्य शैली के नये प्रयोग के उदाहरण है । कथा-गायक और प्रहरी

---

1. They are the wistful, leaderless woman of conterbury calling for spiritual guidance in their half-lived lives. They too inhabit the gloomy cycles of time; death bringing winter, ruinrous spring, disastrous summer and barren autumn make sombre then opening lament, that looks to a December happy only because in December the son of mam was born.

   (Murder in the Cathedral - T.S.Eliot, introduction by Navill Cochill; p - 16)

के द्वारा कथा की अधिकांश घटनाओं को व्यंजित करना नया प्रयोग है । कथा-गायन के इस संदर्भ कथा-काव्य के रचना-संदर्भ को व्यक्त करने में पर्याप्त है -

यह महायुद्ध का अंतिम दिन की संध्या
है छाई चारों ओर उदासी गहरी
कौरव के महलों का सूना गलियारा
है घूम रहे केवल दो बूढ़े प्रहरी ।[1]

इस तरह के कथा-गायन और संवादों के कारण आदि से अंत तक एक नाटकीय गतिशीलता प्राप्त होती है । अतः अंधायुग को नाट्यकाव्य कहना उचित लगता है । "इस नाट्य कविता में नाटक की नवीनता की खोज बार बार हुई है ।"[2] वास्तव में इस नाट्यकाव्य में प्रख्यात और उत्पाद्य दोनों प्रकार के पात्र उपलब्ध है जो नाट्यकाव्य के लिए अपेक्षित है । प्रमुख पात्रों के अलावा जो प्रहरी और वृद्ध याचक है वे दोनों कल्पित पात्र हैं । कृष्ण का वध करनेवाले व्याक्त का नाम प्राचीन कथाओं में जरा था, लेकिन भारती ने उसे वृद्ध याचक कहा है । यहाँ वृद्ध एक साधारण व्यक्ति है जो कृष्ण की मृत्यु का साक्षी बनता है । प्रहरी और वृद्ध के कथन इस नाट्यकाव्य के नवीन तत्व हैं जिससे काव्यनाटक का उपक्रम प्रस्तुत किया गया है । इस तरह कथानक का आधार पौराणिक होते हुए भी कवि ने अपनी कल्पना तथा नवीन शिल्प-रचना का परिचय दिया है ।

पुरूरवा और उर्वशी के पौराणिक आख्यान पर आधारित "उर्वशी" एक सशक्त नाट्य काव्य है । दोनों के प्रणय प्रसंग की पृष्ठभूमि में

---

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. ।।
2. मिथक और आधुनिक कविता - शंभुनाथ सिंह - पृ. 205

कवि ने अपनी कथावस्तु का चयन किया है । दिनकर ने मानव मन की "काम" भावना का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करके पुरुषार्थ के काम-पक्ष की गरिमा का संकेत दिया है । पाँच अंकों में विभक्त "उर्वशी" में नाटकीय आरंभ के समान दृश्य विधान है । "उर्वशी" के आरंभ में कोष्ठक विवरण है -

"§ राजा पुरूरवा की राजधानी, प्रतिष्ठानपुर के समीप एकान्त पुष्प-कानन, शुक्ल पक्ष की रात, नटी और सूत्रधार चाँदनी में प्रकृति की शोभा का पान कर रहे हैं §।"[1] यह दृश्य विधान नाट्यकाव्य का दृष्टांत है । नटी और सूत्रधार के संवाद द्वारा उर्वशी की प्रेमकथा का आरंभ वर्णित है । अप्सराओं के पृथ्वी पर उतरने के संबंध में दोनों संवाद कर रहे हैं -

नटी

फूलों की सखियाँ हैं ये या विधु की प्रेयसियाँ हैं ?

सूत्रधार:

देवों की रण-क्लान्ति मदिर नयनों से हरनेवाली
स्वर्ग लोक की अप्सरियाँ, कामना काम के मन की[2]

दैत्यों से उर्वशी की रक्षा, राजा के स्वप्न देखने की घटना और राजा का सन्यास लेना और अपने पुत्र आयु को राज्य सौंपना आदि कवि की मौलिक कल्पना है । गंधमादन पर्वत पर पुरूरवा और उर्वशी के बीच का संवाद उन दोनों के प्रणय की चरम सीमा का द्योतक है -

---

1. उर्वशी - दिनकर - पृ. 5
2. उर्वशी - दिनकर - पृ. 7

पुरूरवा:

जब से हम तुम मिले, न जाने कितने अभिसारों में
रजनी कर श्रृंगार सितारिन नभ में घूम चुकी है ;

उर्वशी:

जब से हम तुम मिले, न जानें क्या हो गया समय को,
लय होता जा रहा मरूद्गति से अतीत-गह्वर में ।[1]

बीच बीच में अवान्तर कथाएँ भी मिलती है जिनके कारण कथानक थोडा विस्तृत हो गया है । औशीनरी च्यवन-सुकन्या, पुरूरवा के स्वप्न आदि ऐसी अवान्तर कथाएँ हैं ।

काव्यनाटक

"काव्यनाटक" का तात्पर्य पद्यबद्ध नाटक से है । "पद्य नाट्य शब्द से स्पष्ट है, वे सभी नाटक जिनका माध्यम पद्य हो इस विधा के अन्तर्गत आते है ।"[2] अर्थात् नाटकीय तत्वों के साथ साथ काव्यात्मकता भी अनिवार्य है । नाटकीयता उसके दृश्य-विधान और संवादों में व्यक्त होती है । काव्यनाटक का कथानक पौराणिक, प्रख्यात और काल्पनिक होता है ।

दुष्यन्तकुमार का "एक कंठ विषपायी" चार अंकों में विभक्त एक काव्यनाटक है । कवि ने कहा है - "एक कंठ विषपायी" मेरा पहला

---

1. उर्वशी - दिनकर - पृ. 40
2. आधुनिक हिन्दी काव्य रूप और संरचना निर्मला जैन - पृ. 309

काव्यनाटक है ।"[1] इसके काव्य-पक्ष और नाटक-पक्ष दोनों समृद्ध है । पात्रों का परिचय, स्थान की अवतारणा आदि एक नाटकीय रंगमंच का आयोजन उपस्थित करते है । काव्यनाटक के आरंभ में दक्ष के कक्ष आयोजन इस प्रकार हुआ है -

"§स्थान: प्रजापति दक्ष का राजकीय गौरव के अनुरूप सुसज्जित निजी कक्ष जहाँ वे अपनी पत्नी वीरिणी के साथ किसी अत्यन्त गंभीर प्रश्न पर विचार विमर्श कर रहे हैं ।§"[2] संवाद को नाटकोचित ढंग से प्रस्तुत किया जाता है -

स्वामी !
हम को इच्छा के विरुद्ध भी
ऐसा बहुत कार्य करने पड़ते हैं
जिनसे
लौकिक मर्यादाओं का पालन होता है
शंकर अपने जामाता है ।[3]

"अग्निलीक" भी एक काव्यनाटक है । भूमिका में नेमीचन्द्र जैन ने इसे काव्यनाटक बता दिया है । "भारत भूषण अग्रवाल के इस काव्यनाटक के बारे में ये प्रारंभिक दो शब्द मैं बहुत भारी मन से लिख रहा हूँ क्योंकि इसके साथ उनके जीवन के अन्तिम सप्ताहों की ऐसी स्मृति मेरे मन में है जो मुझे कचोटती रहती है ।"[4] इसमें कुल तीन दृश्य हैं । इन तीनों दृश्यों के

---

1. एक कंठ विषपायी - आभारकथा - दुष्यन्तकुमार
2. एक कंठ विषपायी - दुष्यंतकुमार - पृ. ।।
3. एक कंठ विषपायी - दुष्यन्तकुमार - पृ. ।।
4. अग्निलीक - भूमिका - नेमीचन्द्र जैन

प्रस्तुतीकरण में नाटकीय रंगमंच की अवतारणा करके कथा को विकासित किया गया है । काव्य के आरंभ में कहा है - "परदा खुलने पर एक रथ धीरे धीरे रुकता दिखायी देता है ।"[1] यहाँ कोष्ठकबद्ध विवरण से दृश्यात्मकता का निर्वाह हुआ है । दृश्य चयन के उदाहरण इस प्रकार है -

"वाल्मीकि आश्रम का एक कोना । रात का आखिरी पहर है । वाल्मीकि किसी उधेड-बुन में चक्कर काट रहे हैं । बीच बीच में रुककर नेपथ्य की ओर कान लगाने लग जाते है ।

सीता (नेपथ्य से)
नहीं, नहीं,
मैं कहीं नहीं जाऊंगी ।[2]

× × × × × ×

"नहीं मैं रो नहीं रहा हूँ
भीतर ही भीतर टूट रहा हूँ
मेरे प्राणों के टुकडे हो रहे हैं
और मैं उन्हें पूरे मनोबल से कस रहा हूँ
क्योंकि ये सचमुच ही टूट गये
तो मेरा जीवन ही खड्ड बन जायेगा ।

फिर आँखें बन्द कर सोचने लगते है । थोडी देर बाद वाल्मीकि की ओर देखकर....."[3] यह कविता का नाटकीय रूप ही है । "मैं कहीं नहीं जाऊँगी" कहकर चिल्लानेवाली अवस्था सीता का चित्र स्पष्ट है । उसी प्रकार

---

1. अग्निलीक - नेमीचन्द्र जैन - पृ. 9
2. अग्निलीक - भरत भूषण अग्रवाल - पृ. 38
3. अग्निलीक - भरत भूषण अग्रवाल - पृ. 57

दूसरे उदाहरण में भीतर ही भीतर टूटे हुए राम का रूप भी उदात्त है ।

प्रबन्धकाव्य की प्रबन्धात्मकता

पद्य के "प्रबन्ध" और "मुक्तक" दो रूप बताते हुए प्रबन्ध को महाकाव्य और खण्डकाव्य के रूप में तथा मुक्तक को "पाठ्य" और "प्रगीत" के रूप में पुनर्विभक्त किया है ।[1] "प्रबन्धकाव्य" में जो बन्धन है वह कथा का बन्धन है । अतः कथा में क्रमबद्धता होनी चाहिए । कथा की गंभीरता उसकी भाव-व्यंजना के साथ प्रबन्धात्मक रूप में होती है ।

"एक पुरुष और" डॉ. विनय का कथाकाव्य है जिसमें कवि अस्तित्व के संकट की समस्या को विश्वामित्र और मेनका की पुराकथा के माध्यम से प्रस्तुत करते है । शिल्प पक्ष की दृष्टि से देखें तो "एक पुरुष और" प्रबन्धकाव्य है । इसमें प्रबन्धात्मकता कथा को लेकर है । लेकिन काव्य के हर पात्र विभिन्न आधुनिक मानसिकता के संकेत से युक्त है । "एक नया अनुभव" से लेकर "पूर्णबोध" तक के सत्रह शीर्षकों में यह काव्य विभक्त है । शिल्प के संबंध में यह कथन ठीक ही है - "उसमें न तो छायावाद जैसी रोमानियत है, न प्रगतिवाद जैसी नग्नता और न प्रयोगवाद जैसा चमत्कार, वह सचमुच प्रगति और प्रयोग की समन्वित अवधारणाओं को ढोनेवाली शुद्ध नयी कविता की भाषा है और उसका शिल्प पूरी तरह नयी कविता का शिल्प ।" इसलिए यदि यह कहा जायें कि "एक पुरुष और" नयी कविता के प्रबन्धकाव्यों में सात्त्विक उपलब्धि है तो अतिशयोक्ति न होगी ।"[2] ये ऐसे प्रसंग है जहाँ प्रबन्धात्मकता (कथा संदर्भ में)

---

1. काव्य के रूप - गुलाबराय - पृ. 21
2. नयी कविता की प्रबंध चेतना - महावीर सिंह चौहान - पृ. 135

अनिवार्य है । लेकिन आधुनिक कविता की भाव व्यंजना के कई अच्छे नमूने भी मिलते हैं । मेनका की यंत्रणा प्रत्येक युग की नारी की है -

> सिर्फ जीना भी एक स्थिति है
> लेकिन झाँकना चाहती हूँ
> इससे भी दूर
> जहाँ जीना केवल जीना नहीं
> सही और सार्थक जीना है ।[1]

अपने स्वतंत्र अस्तित्व से परिचित होकर अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए व्यवस्था के खिलाफ़ प्रवृत्त होनेवाली मेनका आज की नारी का प्रतिनिधान करती है ।

खण्डकाव्य के तत्वों के बहिष्कार करनेवाले आधुनिक पौराणिक कथाकाव्य अधिकतर नाटकीय तत्वों को आत्मसात् करनेवाले है । उन काव्यों का आन्तरिक मंचीय संकल्प बृहद् है । जीवन के जिस बृहद् पक्ष को लेकर वे चलते हैं उसके लिए नाटकीय परिदृश्य की परिकल्पना बहुत ही प्रासंगिक है । उसी प्रकार नाटकीय तत्वों के बिना रचे गये पौराणिक काव्य में कथा की प्रदीर्घता को प्रबन्धतत्व के साथ प्रस्तुत किया गया है जिससे नई कविता की नाटक पृष्ठभूमि का पता चलता है । ये काव्य अपनी विशिष्ट शिल्प संरचना के कारण समृद्ध है ।

---

१. एक पुरुष और - डॉ. विनय - पृ. 58

मिथकीय तत्व

आधुनिक कविता में मिथक का प्रयोग प्रचुर है । जैसे जैसे आधुनिक हिन्दी कविता की सर्जनात्मक शक्ति और क्षमता बढती हुई वैसे वैसे मिथक और साहित्य के बीच की दूरी कम हो गयी । "मिथक केवल आदिम युग की वस्तु न होकर वर्तमान की भी धरोहर होते हैं ।"[1] अब मिथकीय प्रयोगों द्वारा मनुष्य की मूल चेतना को आँकने का जो प्रयास होता है वह आधुनिक कविता की नयी प्रवृत्तियों में एक है । यह कथन तो सांदर्भिक है "आधुनिक कवियों ने मिथकों में आधुनिक मूल्यारोपण करके उन्हें जीवन की समकालीन धारा से जोडने का यत्न किया । अपने अतीत के सार्थक हिस्से से उन्होंने एक खुला सरोकार बनाया ।"[2] पहले मिथक शब्द के प्रयोग से किसी पुराणकथा की याद आ जाती थी । परन्तु अब रचनाकार नये भावबोध को नये संदर्भ में प्रस्तुत करने के लिए इसका प्रयोग करते हैं । सभी आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में मिथक का एक आयाम है ।

आधुनिक पौराणिक काव्यों का आधार अधिकतर महाभारत और रामायण है । "कहना न होगा कि भारतीय भौगोलिकता का सिंचन जिस प्रकार मुख्य रूप से हिमालय विन्ध्य और सह्याद्रि पुत्रियों से ही होता है उसी प्रकार भारतीय मानसिकता का सिंचन पल्लवन रामायण-महाभारत आदि आकर - क्षेत्रों से ही संभव है ।"[3] हर युग में इन पुराण कथाओं ने कवियों को आकर्षित किया । आधुनिक कविता में इनके कुछ मूल तत्व आधुनिक तनाव के लिए प्रयुक्त है । इस अर्थ में वे मिथक के उदाहरण बन जाते है ।

---

1. भाषा (त्रैमासिक) मार्च 1984 - संपादक जगदीश चतुर्वेदी
2. मिथक और आधुनिक कविता - शंभुनाथ - पृ. 21
3. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 15

पुराण-कथा और पौराणिक पात्रों की नई व्याख्या और नई अवतारणा के माध्यम से आज के मनुष्य के संघर्ष को प्रतिफलित करने में आधुनिक कवि सफल निकले है । "मानवता के पैरों तले की धरती खिसकती जा रही है और संपन्नता के क्षणों में विनाश के बादल सारी संस्कृति को डुबा देने के लिए उठ रहे हैं - इस स्थिति की तुलना पुराण कथाओं के मात्र एक प्रसंग से ही की जा सकती है । वह प्रसंग है भारतीय युद्ध का ।"[1] महाभारत कथा के सूक्ष्मातिसूक्ष्म चरित्र नयी मानवीय भावछटा प्रदान करने में समर्थ है । इसी तरह रामायण, औपनिषदीय कथाएँ भी आधुनिक काव्यों के आधार बन गयी है ।

अस्तित्व संकट का मिथक

आधुनिक युग का मनुष्य संकट का सामना कर रहा है । यह संकटग्रस्त स्थिति उसे आस्थाहीन बना देती है । यह अनास्था हर एक व्यक्ति के मन में अपने अस्तित्व के प्रति सजग होने की प्रेरणा देती है । इस सजग-चेतना का स्वाभाविक परिणाम आधुनिक कविता में अस्तित्व-संकट की अवस्था के रूप में अभिव्यक्त है । व्यक्ति के इस आत्म-संकट स्थिति की अवतारणा नई कविता की एक प्रवृत्ति है जिसमें वैयक्तिक चेतना प्रबल होती है । "नवीनता के आग्रह और आधुनिक भावबोध की दृष्टि से इस युग के सभी कवि परंपरा के विरोधी और नवीन मानवीय संभावनाओं के अन्वेषक है ।"[2] अतः आधुनिक काव्य में अस्तित्वसंबंधी सार्थकता की खोज ज़ारी रही

---

1. व्यासपर्व - दुर्गाभागवत (अनुवादक - वसन्तदेव) - पृ. 2
2. अस्तित्ववाद और साहित्य - श्यामसुन्दर मिश्र - पृ. 127

"आत्मजयी" वास्तव में अस्तित्ववादी दर्शन के परिप्रेक्ष्य में कठोपनिषदीय पात्र नचिकेता की कथा की प्रस्तुति है । अपने सार्थक जीवन की तलाश करनेवाला नचिकेता में अस्तित्व को पाने की तडप व्यंजित है । मृत्यु की अनिवार्यता, मृत्यु से मुक्ति आदि अस्तित्ववादी चिंतन के परिप्रेक्ष्य में परिकल्पित है । "कुँवर नारायण "आत्मजयी" में उपनिषद् के एक चरित्र नचिकेता के माध्यम से जीवन की निरर्थकता, संसार की निस्सारता के सनातन अनुभव को, गहन और सार्थक जीवनमूल्यों की खोज में संबद्ध करते हैं ।"[1] अस्तित्व का यह संकट और जीवन का द्वैध आदि मानवीय इतिहास के अंग है । इतिहास के हर युग में मनुष्य ने इस संकट का सामना किया है । नचिकेता के इस नये प्रसंग में मानव मात्र के संकट को प्रस्तुत किया गया है जो कि एक मिथकीय वृत्त को अधिक गहरानेवाला है । काव्य की प्रबंधता के प्रबन्धत्व के कारण मिथक का सही उपयोग हुआ है । डॉ. नगेन्द्र का कथन है - "आख्यान रूप होने कारण मिथक का प्रबन्धकाव्य के साथ निश्चय ही घनिष्ठ संबंध है ।"[2] अत: आत्मजयी के नचिकेता अस्तित्व संकट का मिथक है ।

मानवीय त्रासदी का मिथक

महाभारत की विभिन्न कथाएँ मानवीय त्रासदी के उदाहरण है । जिस हिन्दी कवि ने महाभारत की कथा को विषय बनाया है उसकी रचना में त्रासदी का एक पक्ष मिलता है । धर्मवीर भारती के "अंधायुग" में मानवीय त्रासदी का अंकन ही नहीं है बल्कि त्रासद पक्ष को मिथकीय आयाम देने का कार्य किया गया है ।

---

1. कुँवर नारायण और उनका साहित्य - अनिल मेहरोत्रा - पृ. 58
2. मिथक और साहित्य - डॉ. नगेन्द्र - पृ. 45

मानवीय त्रासदी का प्रत्यक्ष चित्रण सब से पहले प्रहरियों की बातचीत के माध्यम से उपलब्ध है -

प्रहरी।:

थके हुए है हम,
पर घूम घूम कर पहरा देते है ।
इस सूने गलियारे में

प्रहरी 2

अर्थ नहीं था
कुछ भी अर्थ नहीं था
जीवन के अर्थहीन
सूने गलियारे में
पहरा दे-देकर
अब थके हुए हम ।[1]

इसमें महाभारत युद्ध के पश्चात् की शासन-व्यवस्था का यथार्थ है जो उस विनाशकारक युद्ध का परिणाम है । युद्ध को कवि ने अनेक कोनों से प्रस्तुत किया है । एक गूँगे सैनिक को भी भारती ने दिखाया है जो युद्ध की भीषणता भोगनेवाला है -

युयुत्सु — (गूँगे के पास जाकर)
गोद में रखो सर
मुँह खोलो
ऐसे हाँ,
खोलो आँखें

---

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 12-13

§गूँगा आँख खोलता है, पानी मुँह से लगाता है । सहसा वह चीख उठता है । गिरता-पडता हुआ, घिसकता हुआ भागता है ।§[1] घायल सैनिक का चित्र युद्ध के नृशंस रूप को उद्घाटित करने में पर्याप्त है । युद्ध की नृशंसता के फलस्वरूप प्रतिशोध की भावना भी स्वाभाविक है । अश्वत्थामा के शब्दों में प्रतिशोध की ज्वाला जलती है -

सुनते हो पिता
मैं इस प्रतिहिंसा में
बिलकुल अकेला हूँ
तुमको मारा धृष्टद्युम्न ने अधर्म से
भीम ने दुर्योधन को मारा अधर्म से
दुनिया की सारी मर्यादाबुद्धि
केवल इस निपट अनाथ अश्वत्थामा पर ही
लादी जाती है ।[2]

"अंधायुग" का युद्ध कुरुक्षेत्र में घटित युद्ध नहीं है । यह युद्ध आधुनिक व्यक्ति के भीतर घटित है । इसीलिए संत्रास का बोध है । युद्ध के मिथक को लगातार गहराते रहने के कारण त्रासदी का मिथक काव्य को आधुनिक संदर्भ प्रदान करता है ।

सनातन प्रेम का मिथक

धर्मवीर भारती की "कनुप्रिया" सनातन प्रेम का मिथक काव्य है । कनुप्रिया की प्रेम-भावना के संबंध में कवि का कथन है - "कनुप्रिया का प्रश्न

---

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 46-47
2. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 51

और आग्रह उसकी प्रारंभिक कौशौर्य-सुलभ मन:स्थितियों से ही उपजकर धीरे धीरे विकसित होता गया है ।[1] कनुप्रिया के प्रथम तीन अनुक्रमों में राधा की मन:स्थातयों का विकास है । कनुप्रिया में प्रेम भावना अपनी सारी सीमाओं को लाँघकर गहरी अनुभूति में परिवर्तित होती है । पूर्वराग में उल्लिखित पाँचों गीतों के माध्यम से राधा-कृष्ण के प्रेम की व्यंजना चरम स्थिति तक पहुँचती है । इस काव्य में राधा कल्पनामयी, प्रेममयी और क्षणभोगी है । वह प्रकृति के कण-कण में कनु की छवि देखती है

क्या तुम समझते हो कि मैं
इस भाँति अपने को देखती हूँ
नहीं मेरे साँवरे !
यमुना के नीले जल में
मेरा यह बेतसलता-सा काँपता तन-बिम्ब
और उसके चारों ओर साँवली गहराई का अथाह प्रसार,
जानते हो कैसा लगता है.....[2]

राधा का प्रेम सर्वविदित कथा प्रसंग है । उसे प्रेम के सीमित परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना कवि का लक्ष्य नहीं है । प्रेम इस काव्य में एक मूल्य बन जाता है । वह जीवन की गहरी पहचान का पर्याय है । राधा की हर उक्ति में, उसके हर सन्देह में, उसके हर सवाल में प्रेम ही वास्तव में अभिव्यक्त होता है । लेकिन समानान्तर ढंग से जीवन संबंधी कुछ पक्ष भी अनावृत होते हैं । इस प्रकार प्रेम का सनातन मिथक इसमें व्यंजित है । प्रेम का सनातन भाव और उससे जुड़े

---

1. कनुप्रिया - भूमिका - धर्मवीर भारती
2. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 16

त्रासद भाव यहाँ सभी सीमाओं को लाँघता है । इसीलिए काव्य में मिथक का रूपायन संभव हुआ है ।

राधा का प्रेम विकासोन्मुखी है । पहले "जन्म जन्मान्तर की रहस्यमयी लीला की एकांत संगिनी"[1] कहनेवाली राधा बाद में पगडण्डी के कठिनतम मोड पर कृष्ण की प्रतीक्षा कर रही है -

जन्मान्तरों की पगडंडी के
कठिनतम मोड पर खडी होकर
तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ[2]

प्रतीक्षा की इस आतुरता में व्यक्ति प्रेम की तीव्रता में बदकर प्रेमतत्व की मिथकीयता को व्यंजित है । "हिन्दी काव्य में तो राधा भक्ति प्रेम और मानवीय उदात्तता का पावन प्रतीक ही रही है - जिसे विद्यापति से लेकर छायावाद और छायावादोत्तर काव्य तक में प्रतिष्ठित किया गया ।"[3] लेकिन कनुप्रिया की राधा परंपरागत राधा-संबंधी कथाओं की राधा से भिन्न है । "कनुप्रिया" की राधा आधुनिक राधा है । उसे प्राचीन राधा के समान प्रेममुग्ध राधा के समान ही प्रस्तुत किया गया है । पर उसकी अनेक सन्देह-ग्रस्तता को प्रस्तुत करके उसे सिर्फ आधुनिक रूप प्रदान करने का कार्य ही किया नहीं बल्कि प्रेमतत्व के माध्यम से जीवनोन्मुखी दिशा को खोजने का कार्य भी हुआ है । अतः इसमें प्रेमतत्व मिथक तत्व में परिणत होता है ।

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 21
2. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 78
3. भारतीय साहित्य में राधा -कल्याणमल लोढा - उपोद्घात ।

प्रतीक कल्पना

"प्रतीक" शब्द का सामान्य अर्थ है चिह्न, प्रतिरूप या संकेत । प्रतीक एक संकेत है जिसके माध्यम से अदृश्य या अप्रस्तुत वस्तुओं का बोध कराया जाता है । "प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य (अथवा गोचर) वस्तु के लिए किया जाता है जो किसी अदृश्य (अगोचर या अप्रस्तुत) विषय का प्रतिनिधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है ।"[1] अर्थात् प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य अथवा गोचर वस्तु के लिए किया जाता है जिसके द्वारा अदृश्य का बोध हो जाता है । वास्तव में प्रतीक काव्य की संप्रेषणीयता को सार्थक करते हैं ।

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में भी प्रतीक का सर्वोपरि महत्व है । आधुनिक काल के परिवर्तित परिवेश में इन पुराण काव्यों के प्रतीकात्मक कथा-विधान की काफी संकल्पनाएँ हैं । पौराणिक कथा को आधार बनाकर नये भावबोध को उजागर किया गया है । नयी कविता के विषय वैविध्य और नयी चेतना के कथाकाव्य के प्रतीक-विधान को समृद्ध किया है ।

काम प्रतीक

आधुनिक हिन्दी कथाकाव्य दाम्पत्य-जीवन के प्रतीकों से समृद्ध है । काम एवं प्रेम की उदात्तता दाम्पत्य जीवन के अभिन्न अंग है । "कनुप्रिया", "उर्वशी", "भस्मांकुर", "आत्मदान" जैसे कथाकाव्यों में प्रयुक्त

---

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 - पृ. 515

दाम्पत्य-जीवन पद्धति एक ओर पुरुषार्थ का समर्थन करती है दूसरी ओर तीव्र ऐन्द्रिय आकर्षण की लालसा अभिव्यक्त करती है । "कनुप्रिया" के "पूर्वराग" में घंटों तक स्नान करनेवाली राधा कृष्ण के आलिंगन में आबद्ध होने की कामना, कृष्ण के चन्दन बाँहों में कसाव की आतुरता आदि इसी काम-भावना के उद्दीप्त रूप है । वह कृष्ण के अतिरिक्त और किसी को नहीं देख पाती -

और अगर ये सारे रहस्य मेरे हैं
और तुम्हारा संकल्प मैं हूँ
और तुम्हारी इच्छा मैं हूँ
और इस तमाम सृष्टि में मेरे अतिरिक्त
यदि कोई है तो केवल तुम, केवल तुम, केवल तुम [1]

प्रेम और काम की तीव्र अनुभूति के क्षण तमाम सृष्टियों में राधा केवल कृष्ण को ही देखती है । कृष्ण के सारे संकल्पों और इच्छाओं का अर्थ भी राधा ही है

"उर्वशी" की भूमिका में दिनकर ने कहा है - "मेरी दृष्टि में पुरूरवा सनातन नर का प्रतीक है और उर्वशी सनातन नारी का ।"[2] तात्पर्य यह है कि पुरूरवा और उर्वशी की पुराणकथा की पुनः प्रवृत्ति कवि का लक्ष्य नहीं । दोनों के सनातन पुरुष और सनातन नारी के प्रतीक के रूप में स्वीकार कर कवि ने स्त्री-पुरुष संबंध को सघन एवं गहन कर दिया है -

नारी की मैं कल्पना चरम नर के मन में बरसनेवाली
मैं देश काल से परे चिरंतन नारी हूँ [3]

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 47
2. उर्वशी - भूमिका - दिनकर
3. उर्वशी - दिनकर - पृ. 93

चिरंतन नारीत्व की सार्थकता "उर्वशी" द्वारा संपन्न होती है । दिनकर ने प्रेम के व्यापक अर्थ का प्रयोग किया है -

"तन का काम अमृत लेकिन मन का काम गरल है ।"[1]

"उर्वशी" में जिस काम की व्यंजना हुई है वह वासना तक केन्द्रित नहीं है । वह तो दाम्पत्य जीवन में काम तथा प्रेम के उदात्त सहज भाव को व्यक्त करता है ।

नागार्जुन ने अपने "भस्मांकुर" में काम के महत्व को विषय बनाया है । इसमें शिव-पार्वती प्रसंग की अपेक्षा कामदेव-रति का प्रसंग अधिक मुख्य बन पडा है । कामदहन से शायद कथा समाप्त होनी चाहिए थी । लेकिन नागार्जुन काम के चिरंतन पक्ष का उद्घाटन किया है -

जयति जयति रतिनाथ, कामनाकंद !
जिजीविषा के उत्स, सृष्टि के मूल !
जयति जयति कन्दर्प, अजय-अनंग !
कौन, मदन, तुमको कर सकता नष्ट ![2]

"भस्मांकुर" शीर्षक भी कवि की नवीन दृष्टि का द्योतक है जो भस्म हो चुका है पुनः उसी से अंकुरित होता है । कवि इस सत्य का उद्घाटन करना चाहते है कि काम सनातन है, इसका नाश संभव नहीं है । कवि ने काम-रति के चिरंतन भाव को शाश्वत प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है ।

---

1. उर्वशी - दिनकर - पृ. 81
2. भस्मांकुर - नागार्जुन - पृ. 78

बलदेव वंशी के "आत्मदान" में भी काम प्रतीक प्रमुख है । इन्द्र मिलन में कवि अहल्या इन्द्र मिलन के सन्दर्भ को इसी प्रकार चित्रित किया है -

एक ही निमिष में
निरावृत कर
मुझ में लय हो गये आदित्य
और मैं उन में लयमान.....
मेरी देह को मथ-डाला बाँहों में
राम-रोम में व्याप्त हुए वे
पोंछ डाले[1]

इन्द्र-अहल्या मिलन को कवि ने पुरुष और नारी का शारीरिक मिलन कहा है । उनके मिलन में कोई भी बाधा नहीं पहुँचती है - दोनों की मानसिक स्थिति को अंकित करते हुए कवि कहते है -

घूम गई पृथ्वी कई-कई बार
हमारे साथ
क्रियारत[2]

पुराण कथाकाव्य की अपनी प्रतीक-पद्धति है । लेकिन आधुनिक कवि उसमें नया अर्थ भर देता है । कथा को उसी रूप में स्वीकार कर या परिवर्तित कर प्रतीक-विधान की नयी व्यंजना शक्ति का परिचय कवि देता है जो आधुनिक संवेदना के अनुकूल है ।

---

1. आत्मदान - बलदेव वंशी - पृ. 6
2. आत्मदान - बलदेव वंशी - पृ. 7

प्राकृतिक प्रतीक

प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग कविता में प्राचीन काल से होता आया है । आधुनिक कवियों ने भी इसकी उपेक्षा नहीं की । लेकिन वे प्रकृति में कुछ नये प्रतीकों की खोज करते हैं और जो प्राचीन है उसमें नये अर्थ भर देते हैं । "कनुप्रिया" में यमुना का तट, कदम्ब वृक्ष, आम्र-मंजरी, आम्र वृक्ष सब राधा के लिए एक-एक अनुभूति का प्रतीक है ।

कदम्ब की छाँह में शिथिल, अस्तव्यस्त
अनमनी-सी पड़ी रहती हूँ[1]

आम का वह बौर
मौसम का पहला बौर था
अछूता, ताज़ा, सर्वप्रथम[2]

इसी तरह प्राकृतिक प्रतीक का दृश्य "भस्मांकुर" में भी मिलता है । कामदेव के साथ वसंत के आगमन का चित्र है । वसंत को प्रस्तुत करके कवि शिव-पार्वती के प्रेम-प्रसंग में विस्तार लाते हैं । नागार्जुन ने वसंत का परिचय यों दिया है -

मैं धरती का यौवन मैं शृंगार
ऋतुएँ करती हैं, मेरा मनुहार[3]

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 17
2. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 30
3. भस्मांकुर - नागार्जुन - पृ. 36

प्राकृतिक सुषमा का सब से तेजोदीप्त ऋतु वसंत है । वसंतकाल अपनी वैभव-संपन्नता से वातावरण को अधिक मनमोहक बनाता है । कवि वसंत को "मदन सखा" कहकर काम के साथ श्रृंगार की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं ।

"आत्मदान" में भी पात्र के अनुभवों प्राकृतिक प्रतीकों का योगदान है । प्राकृतिक तत्व व्यक्ति के चिन्तन की प्रेरक-शक्ति भी बन जाती हैं । अहल्या के मन में इन्द्र-मिलन की नैतिकता - अनैतिकता का संघर्ष होता है । इन्द्र-मिलन के पश्चात् के क्षणों की अभिव्यंजना कवि के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त होता है -

आँधी और वर्षा का तूफान
थमने पर
कितना अस्त-व्यस्त हो जाता है दृश्य[1]

प्राकृतिक तत्वों के माध्यम से मानवीय भावों को प्रतीकात्मकता का रूप देकर कथा को सघन करने में कथाकाव्य समर्थ है ।

प्रताड़ित नारी का प्रतीक

"अग्निलीक" की सीता प्रताड़ित नारी का प्रतीक है । भरत भूषण अग्रवाल ने सीता के निष्कासन के करुण प्रसंग को लिया है । "अग्निलीक" में जो राजपुरुष और रथवान है उनके माध्यम से पति से उपेक्षित सीता का करुण भाव दर्शाते है -

---

1. आत्मदान - बलदेव वंशी - पृ. 9

महारानी ने क्या किया था
जो उन्हें इस तरह राज-सुख छोडकर
वन में भटकना पडा ?[1]

सीता का निष्कासन तो होता है । वह वाल्मीकि आश्रम में पलती है । लव-कुश को जन्म देने के बाद पुनः मिलन होता है । इस बार भी वही प्रताडना दुहरायी जाती है । तब सीता के मन में अग्निपरीक्षा की याद आती है । पतिव्रता होने की शुद्धता को समाज के सामने प्रमाणित करना एक पवित्र स्त्री के लिए कितनी व्यथा पहुँचती है । वह स्त्रीत्व के आत्मसम्मान का निषेध है । पुरुष की मेधाशक्ति के सामने तडपनेवाली स्त्री का चित्र भरत भूषण अग्रवाल ने प्रस्तुत किया है -

उसी क्षण मेरे प्यार का महल जैसे टूटा था
मेरा मन जैसे चकनाचूर हुआ था
यह मैं ही जानती हूँ ।[2]

और अब अश्वमेध यज्ञ के संदर्भ में होनेवाली परीक्षा के संबंध में वह यह समझती है -

यह अपमान तो उस परित्याग से भी भयंकर है
इसे मैं सह नहीं पाऊँगी
मैं नहीं जाऊँगी
कहीं नहीं जाऊँगी ।[3]

---

1. अग्निलीक - भरत भूषण अग्रवाल - पृ. 15
2. अग्निलीक - भरत भूषण अग्रवाल - पृ. 54
3. अग्निलीक - भरत भूषण अग्रवाल - पृ. 42

इसमें वेदना से त्रस्त सीता पूरे पाठकों की सहानुभूति के पात्र बन जाती है । सीता को कवि ने प्रताडित नारी प्रतीक के रूप में लिया है । "सीता निश्चय ही उस सामान्य जन की अभिव्यक्ति देती है जो हर तथाकथित स्वर्ण युग में भी ज़िन्दगी का बोझ ढोता आया है ।"[1] वह कहती है "इस विशाल विश्व में अब मुझे कहीं ठौर नहीं है ।"[2] इस विवेचन से निसंदेह से कह सकते है कि "अग्निलीक" की सीता प्रताडित नारी का प्रतीक है ।

दलित चेतना का प्रतीक

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों में दलित-चेतना की अभिव्यक्ति "शम्बूक" और "शबरी" के माध्यम से हुई है । वर्ण-व्यवस्था की समस्या युगों से चलती आ रही है । इसलिए शम्बूक और शबरी की कथा उस दलित मानव चेतना की कथा है जो आज के संदर्भ में प्रासंगिक है ।

"शम्बूक" कथाकाव्य के नायक शम्बूक है । निम्न जाति के होने के कारण वह तप करने की अधिकारी नहीं है । इस काव्य में उच्च वर्ग के प्रतीक बनकर राम शम्बूक पर प्रहार करते हैं । अपनी निम्नवर्गीयता के प्रति सचेत होकर शम्बूक कहता है -

"शूद्र हूँ मैं
लिये काली देह
इसी से मुझ पर
तुम्हें सन्देह"[3]

---

1. भरत भूषण अग्रवाल: कुछ यादें कुछ पर्याएँ (प्रेमशंकर का लेख)-बिन्दु अग्रवाल-पृ. 165
2. अग्निलीक - भरत भूषण अग्रवाल - पृ. 54
3. शम्बूक - जगदीश गुप्त - पृ. 62

शम्बूक इसी दलित चेतना से उद्‌भूत समस्या का समाधान भी कवि चाहता है -

सभी पृथ्वी-पुत्र है तब जन्म से
क्यों भेद माना जाय
जन्मजात समानता के तथ्य पर
क्यों भेद माना जाय ।[1]

नरेश मेहता ने "शबरी" में इसी दलित चेतना की समस्या को प्रस्तुत किया है । शबरी एक अन्त्यजा है । वह संघर्ष करती है । अपने कर्मपथ पर अग्रसर होती है । लेकिन "शबरी" के "पम्पासर" खण्ड में मतंग मुनि के आश्रम में वह अपनी जाति बताने में हिचकती है -

ऋषि की जिज्ञासा - वाणी सुन
भर आये शबरी के लोचन,
कैसे बतलाये अन्त्यज है
शबर जाति की ; दुखमोचन ![2]

यह सन्देह शबरी के मन को झकझोरता है । लेकिन जब अपना परिचय देती है तो मुनि उच्च वर्ग का प्रतीक बनता है -

"क्या कहा, यहाँ सेवा करने
आयी हो मेरे आश्रम में ?
कैसे अछूत स्त्री को मैं
रख सकता अपने आश्रम में ?[3]

---

1. शम्बूक - जगदीश गुप्त - पृ. 49
2. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 17
3. शबरी - नरेश मेहता - पृ. 18

त्रेता युग की शबरी की कथा की प्रासंगिकता आज भी है । क्योंकि वर्ण-व्यवस्था हर युग की समस्या रही । अंत में राम से मिलकर अपने कर्म में सफल होनेवाली शबरी का चित्र शबरी की वैचारिक उच्चता का दृष्टांत है । अतः इन दोनों काव्यों में दलित चेतना के प्रतीक के रूप में शंबूक और शबरी पारकल्पित है ।

पुरुषार्थ के अन्वेषण का प्रतीक

"महाप्रस्थान" का प्रत्येक पात्र के अन्तस में अन्तःसंघर्ष की भरमार है । युधिष्ठिर इस काव्य के नायक है । वे इसमें मानव-मुक्ति के प्रतीक बनकर आये है । लेकिन पुरुषार्थ के अन्वेषक के रूप में अर्जुन का चित्र उजागर हुआ है । फिर भी अन्वेषण में वे असफल निकलते है -

"समस्त व्यक्ति संकल्प और पुरुषार्थ के होते हुए भी
वह नगण्य हो जाता है
क्यों ? ?[1]

उसका वह पराक्रमी गाण्डीव-व्यक्तित्व आज नष्ट हो चुका है । उसका गाण्डीव प्रत्यंचा नहीं चढा पायेंगे । इसलिए अर्जुन पुरुषार्थ की खोज करता है । अतः वह पुरुषार्थ के अन्वेषण का प्रतीक है ।

सत्ताधारी शासक का प्रतीक

"एक पुरुष और" का भानु सत्ताधारी शासक के प्रतीक है ।

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 102

वह अपनी सत्ता और अधिकार का संरक्षक है । इसलिए घोर तपस्या करनेवाले विश्वामित्र के संबंध में सोचते हैं

> यह कैसे हो सकता है कि एक सामान्य पुरुष
> इन्द्र का सिंहासन छीन ले..[1]

एक छोटा-सा संकल्प भी उसके लिए बड़ा आतंककारी बन जाता है । इसीलिए षड्यंत्र करके मेनका को विश्वामित्र के पास भेजने का निश्चय करता है । फिर भी वह सन्देह करता है -

> क्या वह इस निमंत्रण को
> अस्वीकार कर सकता है ?
> नहीं
> यह उसके हाथ में नहीं है[2]

इन्द्र के सत्ता-मोह उसे यह सोचने को प्रेरित करता है कि व्यवस्था के विरुद्ध मेनका क्या विद्रोह कर सकती है ? ऐसा कभी नहीं हो सकता । व्यवस्था सर्वशक्तिमान है । उस सत्ता के विरुद्ध एक सामान्य प्रजा हाथ उठा नहीं सकती । इन्द्र के पक्ष में ही नहीं सभी सत्ताधारी व्यक्ति के पक्ष में भी हमेशा ऐसा ही होता है । अतः इन्द्र सत्ताधारी शासक का प्रतीक है ।

आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों की समृद्ध प्रतीक-पद्धति है । पुराण पात्रों के प्रतीकों का आभास अवश्य दिया है । वे पुराण के

---

1. एक पुरुष और - डॉ. विनय - पृ. 44
2. एक पुरुष और - डॉ. विनय - पृ. 19

प्रतीक हैं । उन्हीं प्रतीकों को आधुनिक कवियों ने अपने समय के साथ जोडकर नयी प्रतीक-पद्धति का परिचय दिया है ।

भाषा

कथाकाव्यों के आकार और विशिष्ट शिल्प-विधान के कारण उसकी भाषा रीति की ही अपनी विशेषता है । यही बात है कि सभी कथाकाव्य अपने भीतर प्रबन्धात्मकता से युक्त है । जिस रचना की भीतरी अन्विति में प्रबन्धात्मक तत्व हो, उसकी भाषा की अपनी रीतियाँ होती हैं । हिन्दी के आधुनिक पौराणिक कथाकाव्यों की भाषा का अध्ययन करते समय यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है इन काव्यों में भाषा का प्रयोग संवेदना के समकक्ष ही है । एक ओर पुराने काव्य रूप के प्रति आकर्षण और दूसरी तरफ़ नयी काव्यरीतियों की आसक्ति के बावजूद कथाकाव्य अपनी भाषा गढित करता है । भाषा की यही संवेदनात्मक सहजता कथाकाव्य को स्तरीयता प्रदान करती है ।

वैयक्तिक भाषा

अनेक कथाकाव्य विविध पौराणिक पात्रों के स्वगत भाषण की अभिव्यक्ति के रूप में है । अपनी द्वैत मानसिक अवस्था के अधीन में ये छटपटाते नज़र आते हैं । ऐसे अवसरों पर काव्यभाषा में वैयक्तिक भावस्तरों के विभिन्न रंग प्राप्त होते हैं । कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

ओ अशोकों की छाँहवाली
जानकी !
जानते भी क्यों गये हम
स्वर्णमृग हित ?

क्यों गये पथ भूल ??
उस वंचक के पदों से
सर्प बन सौमित्र-रेखा
क्यों नहीं लिपटा ?[1]
× × × × × ×

लगता है एक अन्य तूफान की
शुरूआत पंख तौल रही है
भीतर किसी दुर्भाग्य की वाणी
मुँह खोल रही है
प्रश्न ही प्रश्न ही प्रश्न
उठाते आए
बिच्छुओं से
विषैले दंश
लहराते ।[2]
× × × × × ×

क्यों मेरे लीलाबन्धु
क्या वह आकाशगंगा मेरी माँग नहीं है ?
फिर उसके अज्ञात रहस्य
मुझे डराते क्यों हैं ?[3]

---

1. संशय की एक रात - नरेश मेहता - पृ. 6
2. आत्मदान - बलदेव वंशी - पृ. 13
3. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती - पृ. 46

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है भाषा की यह स्थिति संघर्ष की उपज है । लेकिन इस वैयक्तिक भाषा की विशेषता इस बात में है कि भाषा व्यक्ति के नयेपन से पूरी तरह से जुडा नहीं है । वैयक्तिकता की गहराई के साथ साथ उसमें समष्टि की ओर बढने की ताकत भी है । अर्थात् कथाकाव्य की वैयक्तिक भाषा भावुकता के गर्त में बंधी नहीं है ।

भाषा की नाटकीयता

विभिन्न कथाकाव्य नाट्यधर्मी दृष्टि से रचित है । उन्हें काव्यनाटक या नाट्यकाव्य के अन्दर विश्लेषित कर सकते है । इस प्रकार की नाट्यता बहिरंग शिल्प-विधान का स्पष्ट नमूना है जिसके अन्तर्गत मंचीय संकल्पना से लेकर विभिन्न पात्रों के संवाद तथा स्वयं रचनाकार के विवरण आदि आ सकते है । नाटकीयता का यह लक्षित प्रमाण है । लेकिन भाषा की नाट्यता इससे भिन्न है । जब कथाकाव्यों में संघर्ष को बल मिलता है और आधुनिक जीवन के तनाव को प्रश्रय मिलता है तो कथाक्रम का एक नया विन्यास स्वत: निश्चित होता है । रचना के अंदर के स्वयंभूत विकास क्रम को दिखाने के लिए भाषा की नाटकीयता अनिवार्य है -

मैं ने आज देखी द्वन्द्वयुद्ध में
कैसे अधर्मयुक्त वार से
दुर्योधन को नीचे गिरा दिया भीम ने
टूटी जाँघों, टूटी कोहनी, टूटी गर्दनवाले
दुर्योधन के माथे पर रख कर पाँव
पूरा बोझ डाले हुए भीम ने
बाँहें फैला कर पशुवत् घोर नाद किया ।[1]
× × × × × × ×

---

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती - पृ. 51

पाण्डवी -
जर्जरित वस्त्र
रक्त से लथपथ
चिरे कपोल
श्वास अवरुद्ध
घसटती हिम पर
जैसे अग्निरेखा सी ।[1]

इसमें कथा के विन्यास को पढकर काव्य संवेदना का पक्ष नाटकीय क्षणों से युक्त होकर सघन हो गया है ।

क्लासिकीय भाषा का आधुनिक प्रयोग

आधुनिक युग के कथाकाव्य अंशतः प्राचीन काव्य रूप अपनानेवाले है और अंशतः तोडनेवाले है । भाषा के क्लासिकीय रूप का संबंध सामान्य अर्थ में काव्यरूप की लक्षणयुक्तता को लेकर है । लेकिन यहाँ क्लासिकीय भाषा का मतलब कुछ भिन्न है । लक्षणयुक्त छंदोबद्ध भाषा को आधुनिक संदर्भ में क्लासिकीय भाषा के अंतरगत मानते नहीं है । आधुनिक रचना में भाषा की क्लासिकीयता से रचना की बहुआयामी प्रवृत्ति का आभास मिलता है । आधुनिक रचना की तमाम संश्लिष्टता आधुनिक क्लासिकीय भाषा से स्पष्ट होती है । लेकिन यह हर आधुनिक रचना का कोई शर्त नहीं है । वे कथाकाव्यों की भाषा का शर्त है । कथाकाव्यों की संश्लिष्ट मानसिकता इसी क्लासिकीय

---

1. महाप्रस्थान - नरेश मेहता - पृ. 60

भाषा के द्वारा संप्रेषणप्रिय है -

जीवित रहूँ यदि मैं इतिहास के पृष्ठों पर
दानवीर रूप में, तो यह प्रार्थित है अनन्य
नश्वर शरीर का विनाश तो निश्चित है
पर यह अजेय कीर्ति अक्षुण्ण अलौकिक है
कीर्ति ही चिरस्थायी है
शेष सब नश्वर है ।[1]

× × × × × × × ×

असमय अंकुर असमय लतावितान
वृद्ध वनस्पतियों का नव परिधान
असमय मुकुलोद्गम, मधुमय चहुँ ओर
असमय कुसुमविलास, हास-हिलकोर
गुंजित अलिदल कम्पित कलिकाकोर
असमय चंचल दखिन पवन चितचोर
असमय हरियाली का पारावार
असमय पिककुल मुखरित वारंबार[2]

× × × × × × × × ×

अभी केवल देवी की यंत्रणा का ही इतिहास है
उसे देवी के गौरव का स्मारक बना दूँ
ताकि जब जाऊँ तो गर्व से कह सकूँ
चाहे देर ही से सही

---

1. सूर्यपुत्र - जगदीश चतुर्वेदी - पृ. 115
2. भस्मांकुर - नागार्जुन - पृ. 35

पर देवी,
जब मुझे तुम्हारी अग्नि मिल गयी
तो मैं ने उसमें अपने जीवन की आहुति चढायी थी ।[1]

इन प्रसंगों में प्रत्येक काव्य की अपनी आंतरिक भावछवियाँ भाषा की क्लासिकीय प्रवृत्ति के कारण सुलभ हो गयी है ।

यह बताया गया है कि कथा-काव्य के शिल्प विधान की अपनी विशिष्टता है । लेकिन यह विशिष्टता जब तक काव्य की अपनी अर्जित विशिष्टता नहीं रहती तब तक प्रयोग बनकर रह जाती है । सामान्य प्रयोग मौलिक दृष्टि की उपज नहीं है । आधुनिक कथाकाव्यों में से जिन श्रेष्ठ रचनाओं को जिस प्रकरण में प्रतिपाद्य बनाया गया है उनमें शिल्प की अपनी अर्जित विशिष्टता उपलब्ध है । ये रूपात्मक प्रयोग तक प्रयुक्त प्रयोग नहीं है । अतः शिल्प संबंधी यह अध्ययन उक्त रचनाओं की आन्तरिक स्थिति के अनुकूल ही है ।

---

1. अग्निलीक - भरत भूषण अग्रवाल - पृ. 64

उपसंहार

उपसंहार

पुराण का अपना संदर्भ और महत्व हैं । आध्यात्मिक निगूढ़ताओं, दार्शनिक पहेलियों और नैतिक उपदेशों से युक्त पौराणिक कथाओं में मनुष्य के मन को आकर्षित ही नहीं किया है, बल्कि मंथन भी किया है । पौराणिक कथाओं का एक और पक्ष है, वह उसका मानवीय पक्ष है । इस पक्ष ने भक्त के मन को तथा सहृदय मन को सदैव आकर्षित किया है । क्योंकि आध्यात्मिकता, दर्शन और नैतिकता से परे जाकर यह मानवीय पक्ष उसने सर्वाधिक मूल्यवान सिद्ध किया है ।

पुराणों में भक्ति से जुड़ा हुआ अवतारवाद को अधिक प्रचलित किया । कथाओं और उपकथाओं की श्रृंखला में पुराण को अपेक्षा महाकाव्यात्मक आयाम प्रदान किया है । मुख्य कथा ही नहीं, बल्कि उसकी प्रत्येक अवांतर कथा किसी न किसी रूप में मानवीयता से जुड़ी रहती है । भले ही उस कथा का अंत ईश्वरीय उपस्थिति है या उच्च नैतिकतावादी होने के कारण कुछ अस्वाभाविक लगें फिर भी कथा की गति में मानवीयता का संस्पर्श बना रहता है । इसका कारण संभवतः यह हो सकता है साधारण जनता के बीच में प्रचलित होने के हेतु लिखे गये पुराण कथाओं में मानवीय-से लगनेवाले प्रसंग स्वतः जुड़ गये हो । यह भी दृष्टव्य है कि असंख्य पुराण कथाओं में सामान्य संबंधों और उसकी गतिविधियों से समानता रखनेवाली कथाएँ उपलब्ध होती हैं । इसके अंतर्गत पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-भाई का संबंध उल्लेखित है । पुराण का यह प्रसंग उसकी मानवीयता का निदान है ।

पौराणिक कथाओं ने ही नहीं, उसके पहले संकलित औपनिषदिक एवं वैदिक कथाओं ने भी हमारे मन को आकर्षित किया है । इसका कारण भी उन कथाओं में निहित मानवीय चेतना है । समय-समय पर वैदिक कथा से लेकर पुराण कथाओं तक में अनेक अंश जोडे गये हैं । उनमें से कितने अंश प्रामाणिक हैं और कितने अप्रामाणिक हैं यह पक्ष यहाँ विचारणीय नहीं है । विचारणीय सिर्फ इतना है कि वह कितना मानवीय है । इससे दो बातें व्यक्त होती है । एक: पुराण कथाओं का आंतरिक एवं बाह्य विकास होता रहता है । दो: कालांतर में जोडे गये अप्रामाणिक पक्षों ने भी मानवीयता का पक्ष रहता है । जोडनेवाला और कोई नहीं है बल्कि मनुष्य की कल्पनाशक्ति है ।

भारतीय साहित्य में पुराण का प्रभाव सर्वविदित तथ्य है । विभिन्न भाषाओं में रची गयी विभिन्न विधाओं में पुराण के प्रसंग ही नहीं बल्कि पौराणिक कथा ही मिलती है । एक प्रकार से हमारी वाङ्मय संपदा का यह नैरंतरिकता है । आधुनिक साहित्यकार भी कथा का कोई प्रसंग या कोई कथा-पात्र इतना आकर्षक और समयानुकूल लगता है कि वह अपनी इस वाङ्मय विरासत का पुनरवलोकन करता है । पुराण कथाओं की यह भी विशेषता है कि वे बहुआयामी हैं । उनमें कोई भी पाठक, कोई भी रचनाकार गोता लगा सकता है और अपनी अर्जित क्षमता और संस्कार के बल पर कथाओं को पुनर्गठित ही कर सकता है । हमारे साहित्यकारों ने वस्तुत: यही किया है ।

साहित्य के अलग अलग चरण होते हैं । प्रत्येक-युग की अपनी विशेषताएँ भी हैं । इनका प्रभाव रचना के आकार पर ही नहीं हैं, बल्कि उसकी संवेदना पर भी पडता है । इसलिए एक ही पुराण कथा अलग-अलग युग में भिन्न ढंग से परिकल्पित और संप्रेषित हुई है ।

हिन्दी साहित्य में खास तौर पर काव्य के क्षेत्र में पुराण कथाओं की पुनराख्याओं का भरमार है । उनमें युगानुरूप वैशिष्ट्य भी पाये जाते हैं । प्रबंधकाव्यों और खण्डकाव्यों का अपना एक युग था । नवजागरण काल में इन पुराण कथाओं ने कवियों की काफी मदद की है । मैथिलीशरण गुप्त को उपेक्षिताओं की माध्यम से अपने युग में नारी चेतना को जागृत करने का मौका मिला । यही नहीं, अपने समय की माँग के अनुसार कथा में आवश्यक परिवर्तन करते हुए अपनी नयी दृष्टि का परिचय भी वे दे सकें । यद्यपि उन कवियों ने समसामयिक विषयों पर भी काव्य लिखें फिर भी पुराण कथाओं पर आधारित उनके काव्य अधिक श्रेष्ठ सिद्ध है । उसका कारण यह है कि पुराण कथा अपने आप में क्षमता संपन्न और रचनात्मक है ।

आधुनिक युग के कवियों को भी पौराणिक कथाओं ने आकर्षित किया, खासकर महाभारत और रामायण की कथाएँ । क्योंकि ये कथाएँ अधिक मात्रा में मानवीय कथाओं से ओतप्रोत मूलकथा की पंक्तियों के बीच में या उनके विराम चिह्नों के बीच में आधुनिक कवियों ने असंख्य संभावनाएँ दी हैं । लेकिन कथा का विस्तार उनका लक्ष्य नहीं था जहाँ भी

बिलकुल ही आवश्यक है वहीं वे कथा में रमते हैं । जैसे आधुनिक कविता अपनी संश्लिष्टता के लिए प्रसिद्ध है वैसे ही पौराणिक कथाओं की चैन में उनकी संवेदनात्मक दृष्टि का पूरा पूरा परिचय भी मिलता है । पूर्व आधुनिक युग के पौराणिक कथाओं पर आधारित काव्यों की तुलना में आधुनिक युग के काव्य अवश्य भिन्न है । इसका मुख्य कारण उसकी रचनात्मक संश्लिष्टता ही है । और संश्लिष्टता के अनेक स्तरों के कारण भी हैं ।

जैसे सूचित किया गया है कि रामायण और महाभारत की कथाओं के प्रचलन के पीछे कारण यही है कि वह सामान्य जनमानस में प्रतिष्ठित कथाएँ हैं । उस अर्थ में वे कवि मन में भी प्रतिष्ठित है । दूसरा कारण यह है कि दोनों पौराणिक कथाओं में मानवीय संदर्भ की संख्या सर्वाधिक है । उनकी आध्यात्मिकता और नैतिकता से बढकर मानवीयता अधिक मुख्य लगती है । अतः आधुनिक कवियों ने भी इन कथाओं को प्रश्रय दिया है ।

आधुनिक युग में पुराण कथाओं पर आधारित रचे गये काव्यों को पूर्ण रूप से सैद्धान्तिक न होने के कारण कथाकाव्य की संज्ञा दी गयी है । इनमें कथा का विस्तार नहीं, बल्कि कथा की एक अविच्छिन्न गति विद्यमान है जो मानवीय जीवन के समानांतर प्रवाहित भी है ।

कथाकाव्य का स्वरूप आधुनिक रचना के लिए पूर्ण रूप से भले ही अनुकूल न हो, फिर भी आधुनिक रचना की महाकाव्यात्मकता को दर्शाने में सहायक है । इनमें कथा की गहराती हुई स्थितियाँ नहीं, बल्कि जीवन की गहराती स्थितियाँ कथा से जुडकर प्रमुख हो उठती है । यह सही है कि इन कथाकाव्यों में आधुनिक समस्याओं के कुछ परिदृश्य मिलते हैं । लेकिन इन्हें आधुनिक बनानेवाला पक्ष वह नहीं है । उनमें निहित मानवीय अवस्था मुख्य होने के कारण कथा की उपस्थिति के बावजूद उन्हें आधुनिक सिद्ध करती है । संस्कृति और सभ्यता की जैत्रयात्रा में मनुष्य द्वारा निर्णयित मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन आधुनिक युग के इन कथाकाव्यों में सूक्ष्मता के साथ हुआ है । लेकिन इस वैचारिकता ने कविता को उस मात्रा में अभिभूत नहीं किया है कि कविता का अंश लुप्त हो जाय । अतः यह कथाकाव्य उनकी आंतरिक कथा-संपन्नता और काव्यात्मकता के कारण सफल रचनाएँ ही हैं ।

जब किसी काव्य रूप या काव्य प्रकृति के साथ आधुनिक जैसा विशेषण जोडा जाता है तो यह दायित्व बनता है वह आधुनिक कैसे हैं । आधुनिकता हमेशा विवादास्पद विषय रहा है । आधुनिकता की कई परिभाषाएँ और इसके देशी-विदेशी होने के वैचारिक संघर्ष हमारे साहित्य में उपलब्ध है । उन विवादों से मुक्त होकर इतना तो कह दिया जा सकता है कि आधुनिकता का एक विशेष संदर्भ मानवीयता की खोज का है । इसमें विवाद की संभावना नहीं है । यह मानवीयता कोई आरोपित स्थिति नहीं है । हमारे संपूर्ण इतिहास को सामने रखकर संस्कृति और सभ्यता की

गतिविधियों का अध्ययन मनन करती हुई अनावृत आँखों से देखते समय हमारे जीवन का जो भी स्वरूप लक्षित होता है, या हमारे जीवन लक्ष्य की जो भी दिशाएँ दिखायी पडती है उन्हें मानवीयता की श्रेणी में रखें तो विवाद क्यों ? उस दृष्टि से ही आधुनिक कथाकाव्यों की आधुनिकता को देखा गया है ।

पुराण की कथाओं को दुहराने या तिहराने से कोई फायदा नहीं है । कथा का एक विशेष चयन आवश्यक है फिर भी कवि दृष्टि का मूलस्रोत पुराण कथा ही है । उस चयन में भी मानवीय अंशों को प्रमुखता देने के लिए कवि रचना के विन्यास को परिवर्तित कर डालता है । उसकी पहली और प्रमुख समस्या पात्रों की अवतारोचित अभौम रूप है । उसे मानवीय रूप में परिवर्तित करना पडता है । फिर कवि कभी-कभी प्रमुख पौराणिक काव्य की अवांतर कथाओं में डुबकियाँ लगाता है और ऐसी कथाएँ ढूँढ लाता है जो अनदेखी रहने के कारण ही नहीं बल्कि अतिपरिचय के वृत्त में उस अवांतर कथा की अनेक संभावनाएँ अपरिचित रह गयी हैं । लेकिन चयन के इस मौके पर भी कवि दृष्टि मूलरूपेण मानवीय संसक्ति पर ही रहती है । प्रचलित और प्रमुख कथाविन्यास से जब वह अपनी विन्यास रेखा निर्धारित करता है तब भी आधुनिक कवि का लक्ष्य मानवीय विन्यास रहता है । कुलमिलाकर उसकी मानवीय दृष्टि उसे आधुनिक बनाने में सहायता देती है ।

आधुनिक कवि के सामने जीवन संघर्ष के अनेक नमूने हैं साथ ही अनेक पौराणिक प्रसंग भी हैं । उदाहरण के लिए सीता के परित्याग की कथा है, राधा के प्रणय की कथा है, पाँडवों के महाप्रस्थान की कथा है, कर्ण की जिजीविषा है । इन्हीं के समान पुरुष पर आधारित सामाजिक मूल्यों की उपनिवेशवादी दृष्टि है या हमारी सामंतीय दृष्टि है, घृणित एवं अवांछित प्रतियोगिताओं से भरा हुआ आधुनिक जीवन संघर्ष है जिसमें जीवन मूल्यों की हत्या हुई है तथा रागतत्व की समाप्ति से सूखे पडे हुए जीवन की बंजरभूमि है । इन दृश्यों को आमने सामने रखकर कवि अपने कथाकाव्य की दिशा निर्णीत करता है । यह विदित बात है कि उसकी कवि दृष्टि एकयामी नहीं है । अतः राधा और कृष्ण के प्रणय प्रसंग का दृश्य अवतरित करके जब राधा के मुँह से ये प्रश्न उठता है - हे कनु तुम कौन हो ? तो उसका संदर्भ राधा और कृष्ण की प्रेमकथा में निहित सैद्धान्तिक "मान" का उदाहरण नहीं है । उस एक प्रश्न में मूल्यों के रागतत्व की मुक्तिसरणी का दृश्य है । संयोग और वियोग श्रृंगार की प्रचलित धाराओं से कोसों दूर खडे होकर राधा का यह प्रश्न जीवन के उधडेपन के प्रति भी है । इसके साथ कवि ने युद्ध की अमानवीय परिणतियों को भी दर्शाया है । दूरस्थित दृश्यों को निकट में आकर उनमें निहित पाशविकता को दर्शाते समय एक पुराण कथा स्वयमेव आधुनिक परिचय दे डालती है ।

आधुनिक कथाकाव्यों ने विभिन्न ढंग से जीवन की विसंगतियों को शब्दबद्ध किया है । कहीं वे सामाजिकता की ओर उन्मुख

दिखायी पडती है तो कहीं राजनीति की ओर । कभी-कभी वे अपने आत्मसंघर्ष के चलते दृश्य को भी दिखाते हैं । प्रत्येक कथा की जितनी भी संभावनाएँ हैं उनके अनुरूप कथा के यह प्रसंग खोजे गये हैं । कभी-कभी एक ही कथाकाव्य में सामाजिक और राजनीतिक विसंगति को दर्शाने का प्रयत्न किया गया है । पर यह प्रयत्न कृत्रिम नहीं है । किसी कथा में आत्मसंघर्ष की गहराई है तो उसी को वे प्राथमिकता देते हैं । लेकिन कोई भी आत्मसंघर्ष अपने सीमित दायरे में संभव नहीं होता है । कर्ण की कथा इसका उदाहरण है । कर्ण के आत्मसंघर्ष के साथ साथ अनेक सामाजिक एवं राजनैतिक संगतिहीनताओं को कवि ने दर्शाया है । यह क्षमता उस कथा की भी है तथा कवि दृष्टि की भी है ।

युगों को पार करने के पश्चात् भी हमारे समाज में ऐसी बहुत सी सामाजिक विषमताएँ बनी हुई हैं जिनसे हमारा समाज मुक्त नहीं हो सका । जाति-प्रथा या धार्मिक असहिष्णुता इनमें प्रमुख हैं । मध्यकालीन समाज में ऐसी विषमताएँ थीं । लेकिन आज हम कोसों मील दूर आ चुके हैं ; परिवर्तन के विभिन्न पडाव हम देख चुके हैं ; हमारा विवेक बढा है । इन सबके बावजूद हमारी सामाजिक दृष्टि रूढ़ियों में जकडी हुई हैं । यह समस्या इतनी सतही नहीं है कि आधुनिक कवि उसे अनदेखा कर सके । इसलिए कथाकाव्यों के लेखन के दौर में कवियों ने सामाजिक विषमताओं के विभिन्न पहलुओं को प्राचीन कथा-संदर्भ में प्रस्तुत किया । वास्तव में वे वर्तमान को ही उलट-पलटकर देख रहे हैं । इसलिए उनके हर शब्द में

अमानवीकरण की त्रासदी की अनुगूँज है । वे इस सच को हमारे सामने प्रस्तुत कर रहे हैं । युग तो पलट गया लेकिन हमारा समाज बदला नहीं है ।

कहा जाता है कि राजनीति का क्षेत्र अत्यधिक पेचीदा है । लेकिन यह तो मानना ही होगा कि सामान्य जनता का बहिष्कार करके या उनकी आकांक्षाओं को बिखेरकर राजनीति का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता । यंत्र और तंत्र राजनीति के साधन हो सकते हैं । लेकिन उसकी मुख्य वाहकशक्ति जनता है । परंतु हर युग में राजनीति यह बात भूल बैठती है । उसी क्षण स्वयं राजनीतिक तंत्र में तथा बाहर विडंबनाएँ नज़र आने लगती हैं । आधुनिक कथाकाव्यों के प्रतिपाद्य के अन्तर्गत ऐसी विडंबनाओं के कई चिह्न मिलते हैं । आधुनिक कवियों ने मानवीय अवस्था को इन्हीं राजनीतिक प्रकरण में देखा है । इसलिए राम के रामराज्य का, कुरुक्षेत्र युद्ध के बाद के हस्तिनापुर पर अंकुश लगाया गया है । आधुनिक कविता ने अपने विवेक के साथ राजनीति की धड़कन को प्रस्तुत किया है ।

नई कविता के आरंभकाल में व्यक्ति की विभिन्न मानसिक अवस्थाओं का अनुभूत्यात्मक आकलन प्रचुर मात्रा में हुआ है । यह उस समय की विशेषता थी । इस कारण से व्यक्तित्व की तलाश प्रमुख हो उठी है । सवाल यह है इस पक्ष को किस संदर्भ में परखना चाहिए ।

औचित्य इस बात में है कि इसके दोनों पहलुओं को प्रमुखता दी जाय और आत्मसंघर्ष को सही और सार्थक दिशा पहचानना चाहिए । हमारे पुराण में पुरूरवा, कर्ण, परशुराम, भीष्म, जैसे अनेक पात्र हैं जिनको अपने युग में ऐसी स्थिति से गुज़रना पडा है । आधुनिक कवि ने इन पात्रों के माध्यम से आत्मसंघर्ष के असंख्य पहलुओं को प्रस्तुत किया है ।

कथाकाव्य की सफलता इस बात में निहित है कि वह किस प्रकार कथाविन्यास की सामान्यताओं से मुक्त होकर अपनी मिथकीय चेतना के कारण पाठकीय संवेदना को किस हद तक आकर्षित करता है । हर पौराणिक प्रसंग मिथक नहीं है और प्रत्येक प्रसंग पर हम मिथकीयता को आरोपित भी नहीं कर सकते । मिथक वह चेतनाजन्य प्रतीक है जिसमें हमारी बहुत सारी आस्थाएँ गुँथी हुई हैं । आधुनिक युग में लिखे गये विभिन्न कथाकाव्यों ने मिथकीय आभास को संरक्षित करने का कार्य किया है । हमारी वाङ्मय संपदा से ही कवियों ने प्रेम के मिथक को ढूँढ लिया, साथ ही युद्ध के मिथक को प्रस्तुत किया । स्त्री की वास्तविक प्रज्ञा के मिथक को ढूँढ लिया है । आधुनिक कथाकाव्य अंतत: में अपनी मिथकीयता के कारण सार्थक हैं ।

प्रत्येक युग में नयेपन के विभिन्न सूत्र मिलते हैं । आधुनिक युग में ये कथाकाव्य नूतन रचना पद्धति का उदाहरण है । लेकिन अपने रचनातंत्र के भीतर स्वजन की गहराइयों को आत्मसात् करने के कारण यह काव्य प्रासंगिक बन गये हैं । पुराण का यह नूतन प्रतिपादन अतीत-मोह के कारण नहीं बल्कि वर्तमान-मोह के कारण है ।

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

संदर्भ ग्रन्थ - सूची

क: आलोचनात्मक साहित्य

1. अंधायुग एक सृजनात्मक उपलब्धि - सुरेश गौतम
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
1973.

2. अस्तित्ववाद और साहित्य - श्यामसुन्दर मिश्र
पंचशील प्रकाशन, नई दिल्ली
1984.

3. अस्तित्ववाद दार्शनिक तथा साहित्यिक भूमिका - लालचन्द्र गुप्त मंगल
अनुपम प्रकाशन मन्दिर, पाटियाला
1977.

4. आधुनिकता और समकालीन रचना - डॉ. नरेन्द्र मोहन
आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
1973.

5. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
1991.

6. आधुनिक प्रबन्ध काव्य संवेदना के धरातल - विनोद गोदरे
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
1985.

7. आधुनिक हिन्दी काव्य रूप और संरचना - निर्मला जैन
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
1984.

8. आधुनिक हिन्दी काव्य और पुराण कथा - भारती सिंह
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
1985.

9. आधुनिक कविता का मूल्यांकन - इन्द्रनाथ मदान
हिन्दी भवन, जलंधर
1952.

10. कविता के नये प्रतिमान - नामवर सिंह
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
1968.

11. कविता और संघर्ष चेतना - यशगुलारी
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली
1980.

12. कविता यात्रा - रामस्वरूप चतुर्वेदी
दि मैकमिल्लन कंपनी आफ़ इंडिया
1976.

13. काव्य विमर्श - गुलाबराय

14. काव्य के रूप - गुलाबराय
आत्माराम एण्ड संस, लखनउ
1984.

15. काव्य परंपरा और नई कविता की भूमिका - डॉ. (श्रीमती) कमलकुमार
प्रेम प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली
1988.

16. काव्य शास्त्र - भगीरथ मिश्र
विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर
1963.

17. कुँवर नारायण और उनका साहित्य - अनिल मेहरोत्रा
ज्ञानभारती, दिल्ली
1984.

18. धर्मवीर भारती कनुप्रिया तथा अन्य कृतियाँ - ब्रजमोहन शर्मा
भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली
1976.

19. धर्मवीर भारती का साहित्य सृजन के विविध रंग - चन्द्रभानु सोनवणी
पंचशील प्रकाशन, जयपुर
1984.

20. नयी कविता का प्रबन्ध चेतना - महावीर सिंह चौहान
गिरनार प्रकाशन, गुजरात
1981.

21. नयी कविता की नाट्यमुखी भूमिका - हुकुमचन्द्र राजपाल
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
1976.

22. नयी कविता प्रेरणा एवं प्रयोजन - विजय द्विवेदी
प्रगति प्रकाशन, आगरा
1978.

23. नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध - मुक्तिबोध
विश्वभारती प्रकाशन
1977.

24. नयी कविता में मूल्यबोध - शशि सहगल
अभिनव प्रकाशन, दरियागंज
दिल्ली.

25. नई कविता के प्रतिमान - लक्ष्मीकांत वर्मा
भारती प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद

26. नयी कविता के प्रबन्धकाव्य: शिल्प और जीवन दर्शन - उमाकांत गुप्त
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
1985.

27. नवीन भावबोध के प्रबन्धकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना - प्रेमचन्द्र मित्तल
सूर्य प्रकाशन, दिल्ली
1990.

28. नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - मुक्तिबोध
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
1971.

29. नया काव्य नये मूल्य - ललित शुक्ल
दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, दिल्ली
1975.

30. नरेश मेहता का काव्य विमर्श और मूल्यांकन - प्रभाकर शर्मा
पंचशील प्रकाशन, जयपुर
1979.

31. नरेश मेहता कविता की ऊर्ध्वयात्रा - रामकमल राय
लोकभारती
1982.

32. नागार्जुन जीवन और साहित्य - प्रकाशचन्द्र भट्ट
सेवासदन प्रकाशन, रामपुरा, मध्यप्रदेश
1974.

33. निराला आत्महन्ता आस्था - दूधनाथ सिंह
नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद
1972.

34. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि -
कमला प्रसाद पांडेय
रचना प्रकाशन, इलाहाबाद
1972.

35. जगदीश चतुर्वेदी विवादास्पद रचनाकार - कमल किशोर गोयनका
पल्लवी प्रकाशन, दिल्ली
1985.

36. पुराण कथा कोश - रामशरण गौड
विभूति प्रकाशन, दिल्ली
1987.

37. फिलहाल - अशोक वाजपेयी
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पटना
1970.

38. भरत भूषण अग्रवाल कुछ यादें कुछ चर्चाएँ - बिन्दु अग्रवाल
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
1989.

39. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - डॉ. रामरत्न भट्टनागर
किताब महल, इलाहाबाद, बंबई
1950.

40. भारतीय साहित्य में राधा - कल्याणमल लोढा
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
1988.

41. भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार - आशारानी त्योरा
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
1986.

42. मानव मूल्य और साहित्य - धर्मवीर भारती
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी
1960.

43. मिथक एक अनुशीलन - मालतीसिंह
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
1988.

44. मिथक और आधुनिक कविता - शंभूनाथ
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
1985.

45. मिथक और साहित्य - डा. नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
1987.

46. रूपतरंग - राम विलास शर्मा

47. वाद विवाद और संवाद - नामवर सिंह
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
1989.

48. व्यासपर्व - दुर्गाभागवत (वसन्तदेव-अनुवादक)
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली
1986.

49. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
1956.

50. साठोत्तर साहित्य का परिप्रेक्ष्य - हिन्दी विभाग, पूणे विद्यापीठ
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
1987.

51. साहित्य दर्पण - आचार्य विश्वनाथ व परिच्छेद
चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी
1963.

52. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्य - डॉ. बनवारीलाल शर्मा
रामा पाब्लिशिंग हाउस, जयपुर
1972.

53. हिन्दी साहित्य कोश भाग 2
ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी
संवत् 2020.

54. हिन्दी आलोचना पहचान और परख - इन्द्रनाथ मदान
लिपि प्रकाशन, दिल्ली
1974.

ख. सृजनात्मक साहित्य

1. अंधायुग - धर्मवीर भारती
किताब महल, इलाहाबाद
1991.

2. अग्निलीक - भरत भूषण अग्रवाल
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
1986.

3. आत्मदान - बलदेव वंशी
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
1982.

4. आत्मजयी - कुँवर नारायण
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
1990.

5. आँसू जयशंकर प्रसाद
भारती भण्डार, इलाहाबाद
1982.

6. इन्द्रधनु रौंदे हुए - अज्ञेय
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद
1957.

7. उर्वशी - दिनकर
चक्रवाल प्रकाशन, पटना
1961.

8. ऊर्मिला - बालकृष्ण शर्मा नवीन
अत्तरचन्द कपूर एण्ड सन्ज़, नागपूर

9. एकलव्य - रामकुमार वर्मा
भारती भण्डार, इलाहाबाद
संवत् 2015.

10. एक कंठ विषपायी - दुष्यंत कुमार
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
1990.

11. एक पुरुष और - डॉ. विनय
भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली
1992.

12. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,
1984.

13. कहें केदार खरी खरी - अग्रवाल
परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद
1983.

14. कविश्री - नवीन
सेतु प्रकाशन, झाँसी
संवत् 2026.

15. कविश्री - अंचल
सेतु प्रकाशन, झाँसी
संवत् 2026.

16. कामायनी - जयशंकर प्रसाद
भारती भंडार, इलाहाबाद
संवत् 2021.

17. कितनी नावों में कितनी बार - अज्ञेय
भारती ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली
1992.

18. चक्रव्यूह - कुँवर नारायण
राजकमल पब्लिकेशंस लिमिटेड, बंबई
1956.

19. जयद्रथवध - मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, झाँसी
संवत् 2018.

20. तारसप्तक - अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली
1943.

21. द्रौपदी - नरेन्द्र शर्मा
राजकमल प्रकाशन, पटना
1960.

22. पथिक - रामनरेश त्रिपाठी
आदर्श पुस्तक भंडार, वाराणसी

23. परिवर्तन - सुमित्रानंदन पंत - तीन लंबी कविताएँ
लोकभारती प्रकाशन,
1988.

24. पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ - अज्ञेय
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
1976.

25. प्रवादपर्व - नरेश मेहता
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
1985.

26. प्रियप्रवास - हरिऔध
द्वारकादास, हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी
संवत् 2023.

27. बंगाल का काल - बच्चन
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
1992.

28. भस्मांकुर - नागार्जुन
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
1985.

29. भारत दुर्दशा - भारतेन्दु
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
1961.

30. मनुष्यता - मैथिलीशरण गुप्त
प्रकाशन विभाग, केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनन्तपुरम
1990.

31. महाप्रस्थान - नरेश मेहता
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
1981.

32. मैं तुम - त्रिलोचन - ताप के ताए हुए दिन
संभावना प्रकाशन, हापुड़
1983.

33. युगधारा - नागार्जुन
यात्री प्रकाशन, दिल्ली

34. रश्मिरथी - दिनकर
उदयाचल, पटना
1986.

35. राम की शक्तिपूजा - निराला - तीन लंबी कविताएँ
लोकभारती
1988.

36. विश्वकर्मा - प्रभाकर माचवे
भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ
1993.

37. शम्बूक - जगदीश गुप्त
लोकभारती
1977.

38. शबरी - नरेश मेहता
लोकभारती
1977.

39. सतरंगे पंखोंवाली - नागार्जुन
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
1984.

40. संशय की एक रात - नरेश मेहता
लोकभारती प्रकाशन
1991.

41. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त
साकेत प्रकाशन, झाँसी
1983.

42. सात गीत वर्ष - धर्मवीर भारती
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली
1959.

43. सूर्यपुत्र - जगदीश चतुर्वेदी
दि मैकमिलन कंपनी आफ़ इंडिया
1975.

ग. पत्रिकाएँ

1. कल्पना - फरवरी - 1968

2. दक्षिण भारत - त्रैमासिक पत्रिका
अप्रैल-मई-जून 1992, अंक-67

3. संचेतना - महीपसिंह, अंक-42

4. साक्षात्कार - अप्रैल - 1993.

5. भाषा - त्रैमासिक - मार्च 1984.

अंग्रेज़ी पुस्तकें

1. ENCYCLOPAEDIA BRITTANICA - MACROPAEDIA, VOL.12.
WILLIAM BENTON 1943 - 1973.

2. MURDER IN THE CATHEDRAL - T.S. ELIOT
DELHI OXFORD UNIVERSITY PRESS; 1982.

3. RAMAYANA - C. RAJAGOPALACHARI
BHARATIYA VIDYA BHAVAN, BOMBAY - 1987.